विचार
↓
चिंतन
↓
शोध सृजन

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

वर्ष : 11	अंक : 45	अप्रैल - जून, 2026
Year - 11	Volume - 45	April - June, 2026

प्रधान-संपादक

डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक

डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक

डॉ० सुधीर कुमार तिवारी

आलोचन दृष्टि वर्ष-11 अंक-45 अप्रैल - जून, 2026 ISSN : 2455-4219

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

वर्ष - 11	अंक - 45	अप्रैल-जून, 2026
Year - 11	**Volume - 45**	**April-June, 2026**

प्रधान-संपादक

डॉ. सुनील कुमार मानस

संपादक

डॉ. योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक

डॉ. सुधीर कुमार तिवारी

© **प्रकाशक :**

संपादकीय/प्रकाशकीय पता :–

सृजनश्री न्यास,

आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर,

उ0प्र0–212635

ई–मेल : aalochan.p@gmail.com

मुद्रण :– जय ग्राफिक्स एण्ड कान्सट्रक्सन,
आई0टी0आई0 रोड़, फतेहपुर–212601।

सदस्यता शुल्क	एक अंक	वार्षिक	आजीवन
व्यक्तिगत	500	1800	16,000
संस्थागत	600	2000	18,000

संरक्षक एवं सलाहकार मंडल

- **प्रो. गिरीश्वर मिश्र,** शिक्षाविद् एवं पूर्व कुलपति, म. गां. अं. हिं. वि., वर्धा (महाराष्ट्र)।
- **प्रो. कृपाशंकर चौबे,** महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- **प्रो. माधवेन्द्र पाण्डेय,** पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय।
- **प्रो. अरविंद कुमार झा,** इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **प्रो. सच्चिदानंद मिश्र,** काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- **प्रो. दयाशंकर त्रिपाठी,** बी–17, नीलकंठ बंग्लोज, वल्लभ विद्यानगर, आनंद।
- **प्रो. एस. वी. एस. एस.. नारायण राजू,** तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तमिलनाडु।
- **प्रो. सुमन जैन,** काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी।
- **प्रो. शिव प्रसाद शुक्ल,** इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
- **प्रो. अनूप शुक्ल,** रामजानकीपुरम्, सिविल लाइन, फतेहपुर।
- **Shri. Tejendra Sharma,** Harrow & Weealdstone, Middlesex HA3 7AN (U.K.)
- **Mrs. Archana Painyuly,** Islevhusvej, 72 B, 2700, Bronshoj, Copenhagen, Denmark.

संपादक-मंडल

- **डॉ. उदयन मिश्र,** लाल बहादुर शास्त्री पी. जी. कॉलेज, पं. दीनदयाल उपाध्याय नगर, चंदौली (उ. प्र.)।
- **डॉ. बलराम शुक्ल,** दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **डॉ. ऋषभ कुमार मिश्र**, डॉ. बी. आर. अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **डॉ. योगेश कुमार करसनभाई चाडसणिया,** उच्च शिक्षा विभाग, गुजरात सरकार।
- **डॉ. शशिभूषण भट्ट,** नालंदा कॉलेज, बिहार शरीफ, बिहार।
- **डॉ. हरीश पाण्डेय,** महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदू विश्वविद्यालय, वर्धा–महाराष्ट्र।
- **डॉ. अमित दूबे,** आर्य महिला पी. जी. कॉलेज, वाराणसी।
- **डॉ. आनंद कुमार,** राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर, (उ. प्र.)।
- **डॉ. आकांक्षा अग्निहोत्री,** सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बल्लभ विद्यानगर, आनंद–गुजरात।
- **डॉ. वर्षा तिवारी,** पं. शम्भूनाथ शुक्ल विश्वविद्यालय, शहडोल–(म. प्र.)।

विधि-परामर्शदाता

श्री **उमाशंकर त्रिपाठी** (एडवोकेट), सिविल कोर्ट, फतेहपुर उ0प्र0–212601।

नोट : सभी पद अवैतनिक एवं अव्यावसायिक हैं। प्रकाशित शोध–लेखों एवं उसमें दिये गये उद्धरणों के वाद–विवाद संबंधी किसी भी कार्यवाही का शोधकर्ता (लेखक) स्वयं जिम्मेदार होगा। इस तरह के किसी भी विवाद में संपादक, प्रकाशक एवं 'आलोचन दृष्टि' परिवार के किसी भी सदस्य की कोई जवाबदेही नहीं होगी। किसी भी प्रकार के विवाद–संवाद का समाधान फतेहपुर न्यायालय में ही होगा।

संपादकीय

किसी भी विषय–वस्तु को केंद्र में रखकर जब कोई बात कही जाती है, उस पर चर्चा की जाती है अथवा उसका मूल्यांकन किया जाता है, (और यह मूल्यांकन मानवीय मूल्यों के आधार पर होता है) तो उसे हम **आलोचना** के रूप में जानते, समझते एवं व्याख्यायित करते हैं। यह भी स्पष्ट है कि जब भी किसी विषय–वस्तु को केंद्र में रखकर कोई बातचीत की जाती है, तो वह एक तरह की आलोचना ही होती है। आलोचना के भारतीय स्वरूप और पाश्चात्य स्वरूप के बीच एक बड़ा अंतर दिखाई देता है। यदि हम भारतीय परंपरा की ओर जाएँ तो देखते हैं कि 'आलोचना' जैसा कोई विशिष्ट शब्द हमें पारंपरिक रूप से दिखाई नहीं देता। 'लोचन' से जुड़े 'अवलोकन', 'विलोचन' आदि शब्द अवश्य मिलते हैं। आज जिसे हम आलोचना कहते है, भारतीय परंपरा में उसके निकट 'टीका', 'भावार्थ', 'व्याख्या' और 'विवेचना' जैसे शब्द ही अधिक मिलते हैं। भावार्थ, विवेचना और टीका लगभग एक ही वैचारिक धारा से विकसित और प्रतिष्ठित होने वाली समानांतर इकाइयाँ भी रही हैं।

इसके विपरीत, आधुनिक अर्थ में जिस 'आलोचना' को हम देखते हैं, वह मूलतः पश्चिम से आए 'Criticism' का हिंदी रूपांतरण है। धीरे–धीरे यह शब्द लोक–जीवन में एक नकारात्मक अर्थ में भी प्रयुक्त होने लगा। जब किसी रचना की 'आलोचना' की गई, तो सामान्यतः लोगों के मन में यह धारणा बनती कि उसकी बुराई की गई है। जबकि 'आलोचना' का अर्थ चारों ओर से देखना, किसी विषय को विभिन्न कोणों से परखना और उसके विविध पक्षों को समझना–समझाना है। इसी कारण सामान्य समझ के स्तर पर 'आलोचना', 'समालोचना' और 'समीक्षा' जैसे शब्दों का समानांतर प्रयोग किया जाने लगा और यह स्वीकार कर लिया गया कि इन तीनों में कोई विशेष अंतर नहीं है। कहीं–कहीं आलोचना को गुण–दोष के आधार पर किसी विषय को परखने की प्रक्रिया भी माना गया है। किंतु आधुनिक अर्थ में 'Criticism' का जो अभिप्राय है, वह विशेष रूप से विचारों से जुड़ा हुआ है। वे विचार, जो समय के सापेक्ष एक नए दृष्टिकोण को विकसित करने और नए चिंतन के आयाम खोलने का प्रयास करते हैं, उसे आलोचना कहना अधिक समीचीन और महत्त्वपूर्ण हैं।

आलोचना का संबंध वैज्ञानिक दृष्टिकोण की तटस्थता से भी है। किसी विशेष विषय–वस्तु को आधार बनाकर, किसी निश्चित दृष्टिकोण अथवा वैचारिक उपादान के आधार पर जो दृष्टि निर्मित होती है, आलोचना उसी पर अपनी बात रखते हुए नये तरह से या नये तरह के सोचने के आयाम विकसित करती है। यदि हम आलोचना के इस व्यापक स्वरूप को समग्रता में देखें तो उसके चिंतन के विविध दृष्टिकोण अलग–अलग रूपों में दिखाई देते हैं, और रचना भी प्रायः न तो समाज का मात्र दर्पण है और न ही उसका प्रतिबिंब। वह एक अर्थ में समाज की आलोचना भी है (यह बात मैं आधुनिक रचनाओं को केन्द्र में रखकर लिख रहा हूँ)। इसका कारण यह है कि साहित्य समाज को एक दिशा देने का प्रयास करता है और इस प्रयास में रचनाकार का एक व्यापक **विजन** (उद्देश्य) शामिल होता है। रचनाकार अपनी रचना के माध्यम से इसी विजन को अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है। इसलिए रचनाकार के दृष्टिकोण और उसके विजन को केवल 'साहित्य समाज का दर्पण है' जैसी सीमित अवधारणा के माध्यम से नहीं समझा जा सकता।

रचना को देखने के जितने कोण निर्मित होते हैं, उतने ही उसके वैचारिक स्वरूप के आयाम भी सामने आते हैं। इन्हीं स्वरूपों के आधार पर हमारी वैचारिक यात्रा आगे बढ़ती है। इसलिए जब हम अपने पारंपरिक ज्ञान और चिंतन को लेकर चर्चा करते हैं, तब यह आवश्यक नहीं कि वह वार्ता हमेशा आलोचना ही हो। कारण कि तत्त्व की आलोचना नहीं होती, तत्व को तत्व के रूप में ही समझा जाता है। उसके प्रति हमारी दृष्टि अलग–अलग हो सकती है, लेकिन स्वयं तत्त्व अपनी जगह पर बना रहता है। जब कोई रचनाकार आधुनिक परिप्रेक्ष्य में समकालीन चिंतन को अभिव्यक्त करता है, तब उसकी अभिव्यक्ति के पीछे रचनाकार का अपना दृष्टिकोण होता है। उचित–अनुचित, आवश्यक–अनावश्यक और स्वीकार्य–अस्वीकार्य के

संबंध में वह एक विशेष अवधारणा को निरंतर जन्म देता है। इस अर्थ में आलोचना एक प्रकार से विचारों का परिष्कार और परिशोधन करती है। इस परिशोधन की प्रक्रिया से एक महत्त्वपूर्ण बात सामने आती है– हमारे विचार, हमारे दृष्टिकोण और रचनाकारों की रचनाएँ केवल रूढ़ होकर न रह जाएँ, बल्कि उनमें निरंतर संचेतना विकसित होती रहे। वे नवीनता के द्वार खोलती रहें और समय के साथ आगे बढ़ती रहें। यही आलोचना का केन्द्रीय स्वरूप है। यह अलग बात है कि आलोचना के रूप में विकसित समस्त विचार अंततः एक दिन तत्त्व–ज्ञान की मीमांसा के स्वरूप में रूपांतरित होकर अपना अवमूल्यन भी करते हैं। यदि हम तत्व–चिंतन की बात करें तो मनुष्य ने संसार में जन्म लिया है और एक दिन उसे इसी संसार से विदा हो जाना है। यदि मनुष्य के संसार में रहने और संसार से चले जाने के बाद उसके मूल्य की बात करनी हो, तो केवल सांसारिक संदर्भों में उसकी पूरी व्याख्या संभव नहीं, किंतु जब हम उसे उसके विचार के रूप में देखते हैं, तब संसार में उसके रहने की समस्त गतिविधियों को केंद्र में रखते हुए उसके संबंध में चर्चा, विचार, समझ और पुनर्विचार की एक निरंतर प्रक्रिया निर्मित होती रहती है।.....

आज जितनी भी रचनाएँ लिखी जा रही हैं, वे या तो किसी विशेष दृष्टिकोण को व्यवस्थित करने के लिए लिखी जा रही हैं अथवा समकालीन चिंतन की परिस्थितियों को अभिव्यक्त करने के लिए। समकालीन भारतीय समाज में यह बहुतायत देखा जा रहा है। इसका मूल कारण यह है कि भारतीय चिंतन–व्यवस्था लंबे समय तक कृषि–आधारित अर्थव्यवस्था से जुड़ी रही है। जब उसका स्थान उद्योग आधारित अर्थव्यवस्था ने लेना शुरू किया तो दोनों के बीच एक संक्रमण की स्थिति निर्मित हुई। विडंबना यह है कि हमें यह देखना होगा कि उसमें उद्योग–आधारित अर्थव्यवस्था से विकसित विचार कितने हैं और परंपरा से प्राप्त कृषि–आधारित अर्थव्यवस्था के विचार कितने हैं? साथ ही यह भी देखना होगा कि इन दोनों के बीच संक्रमण किस स्तर पर और किस रूप में हो रहा है? कृषि–आधारित अर्थव्यवस्था को ध्यान में रखते हुए यदि हम भारत की बात करें तो आज का भारत उद्योग–आधारित अर्थव्यवस्था को अधिक प्राथमिकता देने लगा है। इसलिए इस परिवर्तन के साथ विकसित हो रहे विचारों और सामाजिक संरचनाओं पर चर्चा आवश्यक हो जाती है।.....

बिना आर्थिक आधार के आज किसी भी संस्था या पत्रिका के प्रकाशन को लंबे समय तक संचालित करना कठिन है। विशेष रूप से किसी दूसरे के सहयोग से पत्रिका का प्रकाशन करना और भी कठिन हो जाता है। इसलिए मैं अपने पाठक मित्रों और लेखक मित्रों से यही कहना चाहूँगा कि एक अच्छी पत्रिका के नियमित प्रकाशन के लिए जितनी आवश्यक धनराशि की आवश्यकता होती है, उसमें यदि आपका थोड़ा–सा सहयोग मिलता रहे तो पत्रिका भी निरंतर आपके समक्ष प्रस्तुत होती रहेगी।...

जहाँ तक संरक्षक और सलाहकार मंडल का प्रश्न है, उसमें पिछले काफी समय से बदलाव की आवश्यकता महसूस की जा रही है। उसे बदलने के प्रयास भी चल रहे हैं, लेकिन इस बार भी पिछले अंक की तरह आगामी अंकों में इसे परिवर्तित करने की परिचर्चा हुई है। अतः अभी व्यवस्था जैसी चल रही है, वैसी ही चलने दी जा रही है। जब एक व्यवस्थित बैठक हो जाएगी और पूरा संपादन मंडल मिलकर किसी निश्चित निर्णय पर पहुँचेगा, तब संरक्षक एवं सलाहकार मंडल में आवश्यक परिवर्तन कर दिए जाएँगे।

उपरोक्त पत्रिका का यह अंक कुल **19 शीर्षकों** में प्रकाशित हो रहा है, जिसमें हिंदी–भाषा के 16 (सोलह, पुस्तक समीक्षा सहित), संस्कृत–भाषा का 1 (एक), और अंग्रेजी–भाषा के 2 (दो) शोध–पत्र शामिल हैं। सभी शोध–पत्र या लेख अपने–अपने क्षेत्र के विद्वानों की महनीय अभिव्यक्तियाँ हैं। इस अंक के संपादन हेतु 'आलोचन–दृष्टि परिवार' को सादर आभार ज्ञापित करता हूँ, जिनके सहयोग और सहकार से ही– पत्रिका का यह अंक अपना स्वरूप ग्रहण कर रहा है। साथ ही, पाठकों–लेखकों के स्नेह एवं लगाव के प्रति भी, कृतज्ञ हूँ।

शेष....

30 जून, 2026।

विषयानुक्रमणिका

- संपादकीय iii-iv
- विषयानुक्रमणिका v-vi

1. पृथ्वीराज रासो की संयोगिता का सामान्य मानुषी-रूप 1-10
प्रो. पूनम कुमारी

2. आधुनिक हिंदी कविता का सौंदर्य-बोध 11-14
प्रो. विजयकुमार रोडे

3. कवि-कर्म में कल्पना एवं अतिशयोक्ति की सृजनात्मक भूमिका 15-21
डॉ. सच्चिदानन्द देव पाण्डेय

4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2023 के परिप्रेक्ष्य... 22-30
डॉ. सर्वेश मौर्य

5. डॉ. नगेन्द्र और उनके यात्रा-संस्मरणः 'तंत्रालोक से यंत्रालोक' एवं :अप्रवासी की यात्राएं' 31-34
डॉ. आनन्द कुमार

6. छत्तीसगढ़ के सुआ गीत : एक सांस्कृतिक एवं सामाजिक अध्ययन 35-39
प्रीति मोदी एवं प्रो. जितेन्द्र कुमार सिंह

7. डॉ. जोराम यालाम नाबम के साहित्य में नारी चेतना : एक अध्ययन 40-43
डॉ. ताना नाय

8. झुमुर : श्रम, संघर्ष और विस्थापन की धुन (असम के चाय जनजाति के विशेष संदर्भ में) 44-49
डॉ. बेबी विश्वकर्मा

9. रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य में राष्ट्रीय तत्त्व : क्रांति, संस्कृति और नव-मानवता... 50-54
सविता

10. असमिया कविता : एक साहित्यिक परिचय 55-58
मनसा नेउग

11. बद्री सिंह भाटिया की कहानियों में दाम्पत्य-जीवन की विविध अर्थ छवियाँ 59-63
गीतांजलि एवं प्रो. चंद्रकांत सिंह

12. शैक्षिक संस्थानों में कार्यान्वित एकीकृत अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम (ITEP) : नीति... 64-71
डॉ. हरीश पाण्डेय, डॉ. सुधीर कुमार तिवारी एवं मो. यासिर अली

13. उच्च शिक्षा संस्थानों के अध्यापकों के व्यावसायिक विकास के हेतु... 72-76
आनन्द साहू एवं डॉ. योगेन्द्र बाबू

14. डिजिटल भारत और ई-शिक्षा का रूपांतरण : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के... 77-84
मनीष कुमार

15. 21वीं सदी के कथा साहित्य में किन्नरों की सामाजिक चुनौतियाँ 85-87
डॉ. गिरजेश कुमार

16. परिवर्तनशील विश्व में भारत की रणनीति (पुस्तक समीक्षा) 88-90
डॉ. रितु तिवारी

17. अद्वैतविशिष्टाद्वैत वेदान्तयोः विभेद : स्वभावः विषयाश्च 91-95
डॉ. शशिभूषण भट्ट

18. **Relevance of the Indian Knowledge System for Life Skills...** 96-102
Dr. Poonam Tiwari

19. **Digital Proficiency in the context of Industry 4.0 (A Comparative...)** 103-110
Deepak Shukla & Dr. Ganesh Datt

ഩ★ന

पृथ्वीराज रासो की संयोगिता का सामान्य मानुषी-रूप

प्रो. पूनम कुमारी*

हम –किसी भी काल में हों,
किसी भी देश में हों,
किसी भी लिंग में हों,
किसी भी वेश में हों,
हम– हैं तो मनुष्य ही।

पृथ्वीराज रासो की संयोगिता कई कारणों से हमारा ध्यान आकर्षित करती है। पिता के परम शत्रु पृथ्वीराज को वरण करने का दुस्साहस, विभिन्न प्रकार के प्रलोभनों और धमकियों के बावजूद प्रतिज्ञा से विमुख न होना, पति के साथ अपने पिता के सैनिकों से लड़ना ये सब संयोगिता के चरित्र की विशेषताएँ हैं। परंतु केवल इन्हीं सब कारणों से वह हमारा ध्यान आकर्षित नहीं करती बल्कि वह ध्यान ज्यादा आकर्षित करती है मनुष्य की तमाम क्षमताओं और संभावनाओं के साथ मनुष्य की स्वभावगत कमजोरियों को धारण करने हेतु। ठीक इसी कारण से संयोगिता राजकुमारी, फिर रानी, अपने सिंहासन से उतरकर सामान्य मनुष्य के आसन पर आ विराजती है, एवम् इस प्रकार साहित्य में सामान्य से विशिष्ट बन जाती है।

भारतीय संस्कृति में गंधर्व विवाह, स्वयंवर आदि की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। दिल्ली के राजा ('पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज को दिल्ली का राजा कहा गया है, यद्यपि ऐतिहासिक तथ्य इसे सही नहीं मानते) से भला कौन राजकुमारी उस समय विवाह नहीं करना चाहती होगी। उस समय पति के ओहदे से ही स्त्रियों की स्थिति तय होती थी। अतः संयोगिता के पृथ्वीराज से विवाह के निर्णय में कोई अनोखी बात नजर नहीं आती। लेकिन पिता के परम शत्रु को पति के रूप में वरण करना अवश्य संयोगिता के स्वतंत्र व्यक्तित्व का परिचायक है। पृथ्वीराज के वरण को लेकर संयोगिता में कोई दुविधा नहीं है। संयोगिता स्पष्ट कहती है

मय मन मझ्झज गुझ्झ गुरूज्जन छंडि स तुम कहउं।
जंपत लज्जइ जीह न अक्षर लहु लहउं।।
षट दह जिहि सामंत सोइ प्रथीराज कोइ।
दान षग्ग भय मानि न मुक्कउ तात सोइ।।[1]

इस पद में संयोगिता स्पष्ट कहती है कि मेरे मन में जो बातें हैं वह किसी अन्य से न कह कर मैं तुमसे कह रही हूँ। यद्यपि इसे कहने में मेरी जिह्वा लज्जा का अनुभव कर रही है और मैं एक अक्षर भी नहीं कह पा रही हूँ। जिसके सोलह या साठ सामंत हैं, वही पृथ्वीराज मेरा वर है। पृथ्वीराज ने मेरे पिता से भय नहीं माना और वह मेरे पिता से युद्ध के लिए तैयार है। संयोगिता पुनः आगे कहती है कि

आ रन्नी अजमेरि धुम्मि धमनी कति मंडि मंडोवर।
मोरी रा मुरमंड दंड दमनो अगिनी उतिठ्ठा कर।
रणा थंभ थिर थंभं सीस अहिरणि जलजिष्टि कालिंजर।
कप्पानं चहुआन जानु घनयो षरनोपि गोरी घर।[2]

उक्त प्रशंसा उसके लिए है, जो संयोगिता के पिता जयचंद का सबसे बड़ा शत्रु है। उक्त पद में पृथ्वीराज की प्रशंसा करते हुए संयोगिता कहती है कि पृथ्वीराज ने अजमेर में धूम मचाई और मंडोवर को काटकर खंडित किया। मरूमंड के मोरी राज को दंडित करके उसका दमन किया और लपटों वाली अग्नि बनकर स्थिर स्तंभ वाले रंथमौर के सिर पर अभिरमण किया और कालिंजर को जलमग्न किया। पृथ्वीराज चौहान की कृपाण गोरी की धरा पर घन की भाँति घहराई अर्थात् गोरी भी पृथ्वीराज से आतंकित था।

***भारतीय भाषा केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।**

निश्चय ही संयोगिता पृथ्वीराज से अभिभूत थी, और ऐसे पराक्रमी तथा शौर्य वाले पृथ्वीराज को वह मन ही मन अपना पति मान चुकी थी।

जयचंद को जब अपनी पुत्री संयोगिता की मंशा का पता चला तो वह अत्यंत क्रोधित हुआ। उसने संयोगिता को समझाने–बुझाने हेतु दूती का प्रबंध किया। दूती तरह–तरह से संयोगिता को समझाने लगी। दूती ने कहा कि

तो जा पुत्तीय मरमठ थट्ट सबले निम्मंचि वइरागर।
करणाटी करवीर नीर गहनो गुंडी गुर गूर्जर।
निर्माली हथमेव मालव धर मेवाड मंडोवर।
जत्तउ तात इति सेव देव नृपयो तत्तानि कि तू वर।[3]

अर्थात् हे संयोगिता। तुम जिसकी पुत्री हो उसने महाराष्ट्र, भट्टा, नीमच और वैरागर को भ्रष्ट किया है अर्थात् रौंदा है। कर्णाट, करवीर, गुंड और गुरु गुर्जर की क्रांति के लिए तुम्हारे पिता ग्रहण बने। तात्पर्य है कि इन सभी स्थानों के राजा तुम्हारे पिता की अधीनता स्वीकार करते हैं। तुम्हारे पिता ने निर्माल्य हाथ में होने की भाँति ही मालव भूमि, मेवाड़ और मैडोवर को हस्तगत किया। उक्त देशों के देव जैसे नृप तुम्हारे पिता के सेवक हैं (ऐसे नामी और यशस्वी तुम्हारे पिता है) तुम इन्हीं राजाओं में से किसी का वरण क्यों नहीं करती।

उक्त पद में जयचंद की वीरता, यश का प्रलोभन देकर दूती संयोगिता का हृदय पृथ्वीराज की तरफ से हटाना चाहती है। लेकिन दूती के कथनों का संयोगिता के हृदय पर रत्ती भर भी असर नहीं होता है। वह अपनी प्रतिज्ञा से टस से मस नहीं होती। वह स्पष्ट शब्दों में कहती है

नमो राजान संवादे नमो गुरूजनागरे।
वर मेकं सयं देह अन्यथा पृथिराज ए।।[4]

मुझे सौ जन्म ग्रहण करना पड़े तब भी मैं पृथ्वीराज का ही वरण करूँगी। बेशक स्वयंवर हेतु राजाओं ने संदेश भेजा है और गुरुजनों ने आदेश दिया है कि मैं उन्हीं राजाओं में से किसी का वरण करूँ, लेकिन मैंने एक बार पृथ्वीराज को वरण करने का निश्चय ले लिया है और अब मैं उस निर्णय को बदल नहीं सकती। जब दूती ने देखा कि पिता का ऐश्वर्य और प्रभाव संयोगिता के निर्णय को नहीं बदल सकता तो उसने एक दूसरी युक्ति का सहारा लिया। दूती ने यौवन तथा यौवनावस्था में काम के आनंद का वर्णन प्रारंभ किया, जिससे संयोगिता कामाभिमुख होकर पृथ्वीराज का इंतजार छोड़ दे और किसी अन्य का वरण कर ले। दूती संयोगिता से कहती है

जाने मंदिर दार चीर चिहुरा वाढंति चित्तानला।
जाता फुल्लित चंपकस्थ कलया मनुकंदर्प दीपा प्रहा।
झंकारे भमरे उडंति बहुला फुल्लानि फुल्लंटिया।
सोयं तोय संजोगि भोग समया प्राप्ते वसंतोत्सवे।।[5]

संयोगिता तुम्हें भोग का समय अर्थात् वसंतोत्सव प्राप्त हुआ है, तुम्हें इस अवसर को व्यर्थ इंतजार में नहीं बिताना चाहिए। इस समय चित्त की अग्नि प्रज्वलित हो उठती है। ऐसे समय में तुम किसी भी राजा का वरण कर कामोत्सव का आनंद ले सकती हो। आगे दूती कहती है कि

थिरू बाले वल्लम मिलन जउ जीवन दिन होइ।
अये जीवन कुब्बन तन सु को मंडइ रति सोइ।।[6]

हे सुंदरि, इस संसार में स्थिर केवल प्रिय से मिलन है। यदि यौवन के दिन हों तो सर्वत्र कद्र होती है। यौवन के चले जाने पर जब तन विकृत हो जाता है, तब कोई नहीं पूछता है। दूती संयोगिता को विभिन्न उपमानों को सामने रखकर बताती है कि

इंदो कि अंदोलिया अमीए चक्कीवं गंगा सिरे।
वच्छी छीर विचार चारू भमरे चिंचीन बंका करे।
तत्स्थाने कर पाद पल्लव वसा वल्ली वसंता हरे।
चतुरे तु चतुराय आनन रसे साजीव मदनावरे।।[7]

अर्थात् इंदु, क्यों इंदु है? इन्दुलेखा (ज्योत्स्ना) के अमृत के कारण। शिव, भी शिव क्यों हैं? गंगा के सिर पर होने के कारण। बछड़े वाली गौ, वत्सिन् क्यों है? भ्रमर, भ्रमर क्यों है? फूलों पर विचरण के कारण। चिंची (एक प्रकार का फल), चिंची क्यों है? अपने फलों के कारण। हस्तिनी, हस्तिनी क्यों है? अपनी सुंदर सूंड़ तथा पल्लव सदृश पैरों के कारण। वल्ली, वल्ली क्यों है? क्योंकि वह वसंत को ग्रहण करती है। इन सारी उद्धृत उपमाओं के समान ही तुम्हारे मुख तथा जिह्वा की जो चतुरता है, वह मदन द्वारा आवृत होने के कारण है। निश्चिय ही दूती के कहने का तात्पर्य है कि तुम्हारे शरीर की उपयोगिता मदन के कारण है, उस मदन को यूँ जाया न करो। किसी राजा का वरण करो और मदन की उपस्थिति को सार्थक करो।

लेकिन दूती के समझाने और उकसाने का संयोगिता पर कोई असर नहीं हुआ। उसका निश्चय अटल था। संयोगिता दूती पर व्यंग्य करती हुई कहती है

तुव सम मात न तात तनु गात सुरत्तरियाहं।
जुव्वनु धन अथ्थिर रहे अंभु कि अंजुरियाहं।।[8]
संवादेव विनोदेव देव देवेन रक्षते।
अन्य प्राणोऽथवा प्राणो प्राणेश दिल्लीश्वरः।।[9]

उक्त दोनों पदों में से प्रथम में संयोगिता दूती पर व्यंग्य करती हुई कहती है कि तुम अत्यंत सुंदर हो, तुम्हारे समान न तो तुम्हारी माता और न ही तुम्हारे पिता के गात (शरीर) सुंदर हैं। लेकिन तुम ये बताओ कि क्या कभी अंजलि में पानी स्थिर रहता है। अर्थात् जैसे अंजलि में पानी स्थिर नहीं रह सकता, उसी प्रकार जिस यौवन के उपभोग की बात तुम कर रही हो, वह भी अस्थिर है। दूसरे पद में संयोगिता कहती है कि मेरे प्राणेश्वर दिल्ली के राजा पृथ्वीराज हैं। चाहे इस प्राण से या किसी अन्य प्राण से, अर्थात् चाहे इस जन्म में या अन्य जन्म में वही मेरे पति होंगे।

संयोगिता की उक्त प्रतिज्ञा की खबर पृथ्वीराज को मिलती है। चंद पृथ्वीराज को बताता है कि तुम्हारे परम शत्रु जयचंद की पुत्री संयोगिता ने तुम्हें वरण करने का निश्चय किया है

तिहि पुत्तिय सुनि गन इतउ तात वचन तजि काज।
कइ वहि गंगहिं संचरउं कइ पानि गहउं पृथ्वीराज।
सुनत राइ अचरिज भयउ हियइ मन्यउ अनुराउ।
नृप वर अनि उर अंगमइ दैवहि अवर स भाउ।।[10]

चंद पृथ्वीराज से कहता है कि उस (जयचंद) की पुत्री (संयोगिता) के संबंध में मैंने सुना है कि संयोगिता अपने पिता के वचन और स्वयंवर का परित्याग कर देगी, वह केवल पृथ्वीराज का ही वरण करेगी, अन्यथा गंगा में डूब कर अपनी जान दे देगी। पृथ्वीराज को संयोगिता के संकल्प की बात सुनकर आश्चर्य हुआ। अपने प्रति संयोगिता के अनुराग और संकल्प का अनुमान करते हुए उसने कहा कि जयचंद संयोगिता के लिए भले ही किसी अन्य वर का निश्चय कर चुका हो, लेकिन ईश्वर ने उसके लिए किसी दूसरे वर को चुना है।

संयोगिता के संकल्प और दृढ़ निश्चय को देखकर जयचंद ने उसे गंगा के किनारे एक अलग महल में रखने का निश्चय किया। जयचंद ने सोचा कि कुछ दिनों तक अलग रहने के पश्चात संयोगिता अपना निर्णय बदल देगी।

तब झुकित राइ गंगह तट त रचिपचि उच्च आवास।
चाहि गहउ चहुआन तकु जु मिट्टइ बाला आस।।[11]

अर्थात् राजा (जयचंद) ने क्रुद्ध होकर गंगा के तट पर एक ऊँचा आवास बनवाया और संयोगिता को उसमें रखा। जयचंद ने सोचा कि इस दौरान वह पृथ्वीराज को पकड़ लेगा और पृथ्वीराज को वरण करने की संयोगिता की अभिलाषा जाती रहेगी। लेकिन पृथ्वीराज के वरण को लेकर संयोगिता का निश्चय दृढ़ था।

संयोगिता के व्यक्तित्व में केवल दृढ़ निश्चय ही नहीं है। संयोगिता अत्यंत सूझ–बूझ वाली भी है। गंगा के किनारे मछलियों को दाना चुगाते हुए जब संयोगिता और उसकी सखियों ने पृथ्वीराज को देखा तो

उसे लेकर सबने तरह–तरह की शंकाएँ व्यक्त कीं। किसी ने पृथ्वीराज को देवता कहा तो किसी ने दानव, किसी ने मुनीन्द्र कहा तो किसी ने शिव, एक ने कहा कि यह तो दिल्ली का राजा पृथ्वीराज है

दिषित सुंदरि दल वलनि चमकि चडंति अवास।
नर कि देव किधु काम हर गंग हसंति निवास।।
एक कहइ दानव देव हइ एक कहइ इंद मुनिंद।
एक कहइ एसे कोटि नर एक कहइ प्रथिराज नरिंद।।[12]

अर्थात् संयोगिता जयचंद की सेना को जाता देखकर महल की छत पर चढ़ गई। संयोगिता गंगा के तट पर पृथ्वीराज को देखकर सखियों से पूछती है कि यह कौन है, जो गंगा के किनारे है यह कोई नर है या कोई देवता है, या मदन है, या शिव है। संयोगिता के प्रश्नों के उत्तर में एक सखि कहती है कि यह दानव या देवता है, एक सखि कहती है कि यह इंद्र या मुनींद्र (कोई बड़ा मुनि) है। एक सखि कहती है कि यह एक सामान्य नर है और ऐसे करोड़ों नर होते हैं। लेकिन इन्हीं सखियों में से एक ने कहा कि यह नरेंद्र पृथ्वीराज है। पृथ्वीराज का नाम सुनते ही संयोगिता उल्लास से भर गई। संयोगिता के उल्लास को देख एक सखि सलाह देती है कि पहले इस बात का निश्चय करें कि यह कौन है

गुरुजन गुरु न निंदरिय सुंदरि।
राजपुत्ति पुछ्छइ न सुंदरि।
अमु पुछ्छइ लउ दुत्ति पठावइ।
गुन अछ्छइ पछ्छइ करिआवइ।[13]

संयोगिता की एक सहचरी ने कहा कि हे सुंदरि इस प्रकार शोर मचा कर आप गुरूजनों और गुरूओं की निंदा मत होने दीजिए, अर्थात् आपके उच्छृंखल व्यवहार से आपके कुल की बदनामी होगी। हे राजकुमारी आप स्वयं द्वंद्व में हैं, तात्पर्य कि आप अभी स्वयं पृथ्वीराज को नहीं पहचानतीं। वह पृथ्वीराज है कि नहीं, यह जानने के लिए आप एक दूती भेजिए। यदि वह सचमुच पृथ्वीराज है तो वह दूती निपुणता से उसे मना कर अर्थात् आपके पक्ष में करके आए।

अब संयोगिता सोचने लगी कि कैसे इस बात की पहचान की जाए कि सामने वाला व्यक्ति पृथ्वीराज ही है। उसने एक युक्ति निकाली। उसने अपनी दूती को मोतियों से भरा हुआ थाल दिया और कहा कि इस थाल को पृथ्वीराज के सामने रखना, यदि वह सचमुच पृथ्वीराज होगा तो वह पूर्ववत मछलियों को मोती का दाना चुगाता रहेगा, मोती कहाँ से आए इस बारे में न पूछेगा

पंगुरा सा पुत्तिय मुत्तिय थार भरि।
यो त्रिय जउ पृथीराज न पुछ्छइ तोहि फिरि।
जउ इन लष्पन सब सहित बिचार न सोइ करि।
हइ व्रत मोहि नि जीव सु लेउं सजीव वरि।[14]

तुम मोतियों के फेंके जाने की चिंता मत करना। यदि वह पृथ्वीराज हुआ तो मैं उसी का वरण करूँगी, इस शरीर से मैं किसी और का वरण नहीं करूँगी। जाहिर है संयोगिता की यह 'युक्ति' मनोवैज्ञानिक है, जो राज व्यवहार के अनुकूल है। एक राजा के मन में, मोती कहाँ से आ रहा है, यह सवाल स्वाभाविक रूप से नहीं उठता। निश्चय ही संयोगिता न केवल राजकुमारी थी, बल्कि उसे राजसी मनोभाव और व्यवहारों की भी गहरी समझ थी।

संयोगिता के निर्देशानुसार दूती पृथ्वीराज के पास जाती है। जैसा कि संयोगिता का अनुमान था पृथ्वीराज यथावत् मछलियों को मोती चुगाता रहता है, वह मोतियों के संदर्भ में कुछ नहीं पूछता। दूती को देख पृथ्वीराज दूती का परिचय और उसके आने का कारण पूछता है। सारी बातें विस्तार से जान पृथ्वीराज संयोगिता के महल पहुँचता है, जहाँ संयोगिता और पृथ्वीराज का परिणय होता है

हउं अछ्छरी नरिंदु नाहि दासि गेह राय पंगुरे।
तास पुत्ति जंम छाडि ढिल्लिनाथ आदरे।
सा जंम सूर चाहुवान मान इंम जानये।
प्रतष्पि हीर जुध धीर यो सुवीर संचही।

वरंतु प्रान मानिनी चलंति देत गंठही।
सुनंत सूर अस्व फेरि तेजि ताम हंकियं।
मनउ दलिद रिद्धि पाय जाय कंठ लग्गियं।
कनक्क कोटि अंग धात रास वास माल ची।
करिस्य कांम कंकनं सु पानिबंध बंधये।
जु भावरी सषी सलज्ज रूंझ तुरंयं वज्जये।
आचारू चारू देव सब्ब दोइ पष्ष जंपही।
अनेक (अनिक्क) सुष्ष मुष्ष सीस जुध्ध साध लग्गियं।
सु कंत कंत अंत ता तमोरि मारि अप्पियं।।[15]

अर्थात् हे राजन, मैं अप्सरा नहीं हूँ, मैं जयचंद के घर की दासी हूँ। जयचंद की पुत्री संयोगिता ने जीवन का मोह त्याग कर दिल्ली के राजा पृथ्वीराज के वरण का निश्चय किया है। उसने यह जीवन ही पृथ्वीराज को वरण करने के लिए धारण किया है, आप ऐसा ही समझिए। जिस राजा की कांति हीरे के समान है, जो युद्ध में वीर और धीर है, संयोगिता उसी पृथ्वीराज की अनुरागी है। पृथ्वीराज के लिए ही वह मानिनी अब तक प्राण धारण कर रही है। उसने चलते समय मुझे कह दिया कि मैं उसका संदेश आपको अवश्य दूँ। यह सब सुनते ही पृथ्वीराज घोड़े को घुमाकर हाँका। इस प्रकार पृथ्वीराज, संयोगिता के पास पहुँच कर उसके गले मिला, उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो किसी द्ररिद्र को ऋद्धि की प्राप्ति हो गई हो। उस समय संयोगिता के अंगों से करोड़ों सोने की आभा निःसृत हो रही थी और अंगों से मालाओं की राशि के समान सुवासित सुगंध आ रही थी। संयोगिता की कलाईयों में जो कंगन पड़े थे, वही पाणि–ग्रहण के काम आए। भाँवरों पर सखियों ने जो मंगल गान गाया, वही तूर्य के समान बजे। ऐसा प्रतीत होता था, मानो दोनों पक्षों से सुंदर आचार का गायन देव गणों द्वारा किया जा रहा हो। परंतु इन सब के बीच पृथ्वीराज के मन में युद्ध की बातें भी चल रही थीं। पृथ्वीराज के मन में चलने वाले भावों को पहचान कर संयोगिता ने अपने कांत (स्वामी) को विदाई के पान अर्पित किए। अर्थात् संयोगिता ने पृथ्वीराज को विदा करते हुए पान खिलाया।

इस प्रकार तमाम अवरोधों और आशंकाओं के पश्चात अंततः संयोगिता को उसका मनचाहा वर मिला। संयोगिता को सहज ही पृथ्वीराज का साथ नहीं मिल गया, उसे इसके लिए संघर्ष करना पड़ा, अनवरत कठिन संघर्ष। लेकिन संयोगिता का संघर्ष यहीं समाप्त नहीं हो जाता, उसे अपने वरेण्य पृथ्वीराज के संग अपने पिता के राज से बाहर निकलना है। इससे पहले पृथ्वीराज के वरण के पश्चात उसे अपने उत्तेजित काम मनोभावों का भी शमन करना है। काम की तरंगें उसके संपूर्ण शरीर और मन–मस्तिक को व्यथित कर रही हैं

पानि परसि अरू दीठ विलग्गिय।
सा सुंदरि कामागनि जग्गिय।
जउ वरू बारि गए तनु मीनउ।।
अंगना अंग सउ चंदनु लावइ।
अरू अंगन लाजन समुझावइ।
दे अंचल चंचल द्विग मुद्दइ।
कुल सभाउ तुरी जिम कुदइ।।[16]

अर्थात् संयोगिता ने पृथ्वीराज के हाथ का स्पर्श किया था और अब वहपृथ्वीराज से मिलने के लिए व्याकुल थी। उस सुन्दरि बाला की कामाग्नि जाग गई थी। उसके शरीर की स्थिति वैसी ही हो रही थी, जैसे जल न रहने पर मछली की होती है। संयोगिता अपनी कामाग्नि शांत करने के लिए अपने अंगों पर चंदन लगाती है। उसे अपने अंगों की उत्तेजना पर स्वयं लज्जा होती है। वह अपने अंगों को समझाती है कि उन्हें आतुरता प्रकट नहीं करनी चाहिए। वह अपने आँचल से अपने नेत्रों को मूँदती है, परंतु उसके चंचल नेत्र ठीक उसी प्रकार उसका कहना नहीं मानते, जिस प्रकार बाँध दिए जाने पर भी घोड़े उछल–कूद जारी रखते है। यहाँ संयोगिता का चित्रण एक सामान्य नवयुवती के रूप में हुआ है, जो अपने पति की कामाग्नि

में अत्यंत व्याकुल है। लेकिन विस्मय तब होता है, अथवा यों कहें कि संयोगिता के व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य तब सामने आता है जब संयोगिता कामाग्नि में जलते हुए भी पृथ्वीराज को देखकर खुश नहीं होती

बहुत जतन संजोगी समवै।
सोम अमृत कमल तुम्ह नु छवै।
इह कहि बाल गवक्षिन पत्तिय।
पति देषत मन महि नहि रत्तिय।[17]

अर्थात् संयोगिता ने अपनी कामाग्नि को शांत करने के लिए अनेक यत्न किए, किंतु उन यत्नों में उसे सफलता नहीं मिली। उसने कहा कि हे चंद्रमा, अमृत और कमल ! तुमसे शीतलता की अपेक्षा करना व्यर्थ है, अतः तुम्हारा स्पर्श करना व्यर्थ है। इतना कहकर संयोगिता खिड़की के पास पहुँची। उसने पृथ्वीराज को आते हुए देखा। जो संयोगिता पृथ्वीराज के लिए इतनी व्याकुल थी, वही युद्ध छोड़कर पृथ्वीराज को अपनी ओर आते देखकर प्रसन्न न हुई।

निश्चय ही संयोगिता प्रिय मिलन के लिए अत्यंत व्याकुल थी, लेकिन इस व्याकुलता को शांत करने के लिए वह पृथ्वीराज को अपने कर्त्तव्य पथ से विमुख नहीं करना चाहती थी। वह चाहती थी कि पृथ्वीराज पहले अपना कर्त्तव्य पूरा करे। इसी क्रम में वह पृथ्वीराज को अपनी ओर आता देखकर सर पीट लेती है

इह कहि सिर धुनि सषिन सउं दिषि संजोगि सुरज्ज।
जिहिं प्रिय तन अंगलि फिरइ तिहिं प्रियजन कहा कज्ज।[18]

राजा को देखकर संयोगिता ने सिर पीटते हुए कहा कि जिस प्रिय की ओर लोगों की उँगलियाँ उठें अर्थात् जिस प्रिय के कार्य को लोग शिकायत भरी नजरों से देखें, उस प्रियजन का क्या कार्य? पृथ्वीराज को अपनी ओर आता देखकर संयोगिता ने अनुमान लगाया कि पृथ्वीराज युद्ध से विरत होकर मुझसे मिलने आ रहे हैं। यही सोच संयोगिता के व्यथा का कारण बना क्योंकि वह नहीं चाहती थी कि उसके ऊपर अपने पति पृथ्वीराज को कर्त्तव्यविमुख करने का लांछन लगे। लेकिन संयोगिता की शंका को निराधार करते हुए एक सामंत ने कहा कि

सुनत सामंतन सत्त कहि पंग पुत्ति धर मंथ।
इहि सथ्यहि सामंत सुभट जवइ ठिल्लहिं गय दंत।[19]

अर्थात् संयोगिता की शंका सुनते ही सामंतों ने संयोगिता से कहा कि है! पंगपुत्री (संयोगिता) पृथ्वीराज धरा का मस्तक हैं, और इसके साथ जो सामंत–सुभट हैं, उनमें इतनी क्षमता है कि वे हाथियों के दाँतों को भी ठेल देते हैं अर्थात् उनमें इतनी क्षमता है कि वे हाथी के दाँत को तोड़ दें। इसलिए तुम यह मत समझना कि पृथ्वीराज युद्ध से भयभीत होकर तुम्हारे पास आया है। पृथ्वीराज की कर्त्तव्य परायणता और वीरता की बात सुनकर संयोगिता हर्ष से भर गई।

सुंदरि सोचि समच्छिम गहगह कंठ भरि।
तबहि प्रान पृथिराज त षंचिअ बाहु करि।
दिय हय पुट्ठिय भार सु सव्व सु लषिनउ।
करति तुरंग सुरंग पुछि ति वछ्छ नउ।[20]

अर्थात् पृथ्वीराज के युद्ध के विषय में सुनकर संयोगिता खुशी से भर गई। उसने आनंद से आह्लादित होकर पृथ्वीराज को गले से लगा लिया। तब संयोगिता के प्राण पृथ्वीराज ने उसकी बाँह खींचकर उसे गले से लगा लिया, और उस सभी गुणों से संपन्न स्त्री को घोड़े की पीठ पर बिठा लिया और वह घोड़ा भी पूँछ तथा छाती के सुंदर खेल करने लगा, अर्थात घोड़ा भी हवा से बातें करने लगा। संयोगिता को घोड़े पर बिठा कर पृथ्वीराज स्वयं जयचंद की सेना से युद्ध करने लगा। युद्ध को अत्यंत विकट और लंबा खिंचता देखकर चंद ने पृथ्वीराज को सलाह दी कि वह संयोगिता को लेकर दिल्ली की ओर कूच करे

मरणा दीजइ पृथिराज हसहि छत्र करि पइठउ।
मीच लग्ग निअ पायि कहइ आइ घरि बइठउ।
पंच घट्ट सो कोस कहइ ढिल्लिय अस कथ्थउ।
इक्कु इक्कु सुरवा पेषि दल वाहत नथ्थउ।

घर धरणि परिण राउ पंगुकी पहुचइ यह वड्डुत्तणउ।
जब लग्गि गंग जल चंद रवि तव लगि चलइ कवित्तणउ।[21]

चंद ने पृथ्वीराज से कहा कि हे पृथ्वीराज यदि क्षत्रिय को मरण दीजिए, तो उसे पाकर वह हँसता है। मृत्यु को क्षत्रिय अपने घर में बिठाना चाहता है। लोग कहते हैं कि यहाँ से सौ में से पाँच कम अर्थात् पंचानबे कोस दिल्ली है। एक–एक शूर युद्ध में शस्त्र चलाते हुए शत्रु की सेना को देखे। बड़प्पन इसी में है कि आप जयचंद की पुत्री को पत्नी के रूप में वरण करके दिल्ली पहुँचें। आपका कृत्य सही है अथवा नहीं, इस विषय पर हमलोग तब तक बातें कर सकते हैं जब तक गंगा में पानी और इस घरती पर चंद्रमा और सूरज रहेंगे। इस प्रकार चंद ने युद्ध की स्थिति को परखते हुए पृथ्वीराज को संयोगिता के साथ दिल्ली भेज दिया। पृथ्वीराज ने दिल्ली पहुँचकर संयोगिता को अपने निवास में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्रदान किया

महिलउ मंडन नृपति ग्रिह कनक कंति ललनानि।
तिहि उप्परि संजोगि नग धरि रष्षउ वर वानि।[22]

अर्थात् महलों के आभूषण, पृथ्वीराज के निवास में कनक कांति वाली अनेक ललनाएँ थीं। पृथ्वीराज ने उन सारी ललनाओं के ऊपर श्रेष्ठ वर्ण वाली संयोगिता को रखा। संयोगिता का सौंदर्य अपूर्व था। वह अप्रतिम सौंदर्य की स्वामिनी थी। चंद ने अपने मुख से संयोगिता के सौंदर्य का वर्णन किया है

संजोगि जोवन जंबनं। सुनि श्रवण दे गुरूराज नं।
तर चरण अरूणति अध्धन। जनु श्रीय श्रीषंड लध्धन।
नष कुंद मिलिय सुभेसन। अधर पक्क सु बिंबन।
सुक सालि आलिन षंडनं। दसन सुत्ति सु नंदनं।
प्रतिभास मुद्दित वंदनं। मधु मधुरया मधु सदया।
कल कंठ कोकिल वद्दया।[23]

अर्थात् चंद ने राजगुरू से कहा कि संयोगिता का सौंदर्य कितना सुंदर है, उसे आप सुनें। संयोगिता के चरण–तल लालिमा से युक्त हैं। ये चरण तल ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो चंदन में रोली लगा दी गई हो। उसके चरणों के नाखून सुंदर और अत्यंत सटे हुए कुंद कमल के सदृश हैं। संयोगिता के अधर ऐसे प्रतीत होते हैं, मानों वे बिंब फल हों। कहीं ऐसा न हो कि शुक–सारिका उसे बिंब फल समझ कर चोंच मार दे। संयोगिता के दाँत मोतियों के सदृश हैं, जो मोती के समान लाल मसूड़ों में पिरो दिए गए हैं। संयोगिता के शब्द मधु के समान मधुर हैं, वह बोलती है तो ऐसा लगता है मानो कोयल बोल रही है। पृथ्वीराज के साथ संयोगिता ऐसी प्रतीत होती है, मानो पृथ्वीराज कामदेव हों और संयोगिता उनके काम का वर्धन करने वाली हो। संयोगिता के इस नख–शिख सौंदर्य वर्णन में चंद ने परंपरागत उपमानों का प्रयोग किया है। संयोगिता के सौंदर्य हेतु चंद ने स्व कल्पना सर्जित नवीन उपमानों का प्रयोग नहीं किया है। ऐसा प्रतीत होता है मानो संयोगिता के नख–शिख सौंदर्य वर्णन के माध्यम से चंद पृथ्वीराज के आगे की कथा की भूमिका बाँध रहे हों। नख–शिख विवरण की अंतिम पंक्तियाँ इसी बात की ओर संकेत करती हैं जिसमें चंद ने कहा है कि संयोगिता का सारा सौंदर्य पृथ्वीराज के काम को बाधित करने वाला है। जाहिर है, पृथ्वीराज संयोगिता के प्रेम में रत होकर दिन–रात भूल गए थे। पृथ्वीराज–संयोगिता के इस रति विलास के अंतर्गत ही चंद ने षड्ऋतुओं का वर्णन किया है। संयोगिता के प्रेममय जीवन में षड्ऋतुओं के विवरण में ग्रीष्म ऋतु का वर्णन चंद ने कुछ इस प्रकार किया है

दीहा दिव्य सदंग कोप अनिला आवर्त्त्त मित्ताकर।
रेन सेन दिसान थान मलिना गोमग्ग आडंबर।
नीरे नीर अपीन छीन छपया तपया तरूणया तनं।
मलया चंदन चंद मंद किरणा सु ग्रीष्म आसेचन।[24]

अर्थात् संयोगिता पृथ्वीराज से कहती है कि इस गर्मी में दिन तपते लोहे के समान प्रतीत हो रहे हैं। हवा चलने की आवाज ऐसी लग रही है, मानो हवा कुपित हो सूर्य की किरणों से मिल कर बवंडर बन उठने लगी है। चारों ओर उठने वाले धूल से दिशा और स्थान का ठीक–ठीक ज्ञान नहीं हो पा रहा है। उठने वाले धूल ऐसे लगते हैं, मानों गायों के चलने पर उठे, उनके खुर से उत्पन्न, धूल ही बवंडर पैदा कर रही

है। इस गर्मी में जहाँ भी पानी था वह कम हो गया है, रात्रि भी छोटी हो गई है। गर्मी अपनी तरूण अवस्था में है, तात्पर्य कि गर्मी अपने पूरे उठान पर है। ऐसी गर्मी में मुरझाते हुए प्राणों को केवल मलय समीर, चंदन और चंद्रमा की मंद किरणें ही राहत दे सकती हैं। संयोगिता ग्रीष्म के विवरण में पृथ्वीराज को लेकर क्या महसूस करती है अथवा अपने पति को लेकर इस ऋतु में उसके मन में कौन–कौन से भाव उत्पन्न हो रहे हैं, इसका उल्लेख चंद ने नहीं किया है। न उसने संयोगावस्था में ग्रीष्म ऋतु के कारण पड़ने वाले व्यवधानों का उल्लेख किया है और न ही इसका संकेत किया है कि नव युगल के लिए, ऋतु चाहे कोई भी हो उनके प्रेम में व्यवधान नहीं पड़ता। आगे शीत ऋतु का वर्णन है

क्षीन वासर स्वास दीघ निसया शीतं जनेतं वने।
यउ बाला तरूणी निवृत्तपत्त नलिणी दीनान जीवा षिणो।
मा कांत हिमवंत मत्त गमने प्रमदा न आलंबने।[25]

अर्थात् बस्तियों और वनों में शीत ऋतु का प्रभाव दीख रहा है, दिन श्वास के समान छोटा होने लगा है और रात बड़ी होने लगी है। तरूणी बाला शीत के कारण पत्रविहीन नलिनी के सदृश अत्यंत दीन हो गई है। ऐसा लगता है मानो वह क्षण भर भी जीवित न रहेगी। हे स्वामी! मध्य हेमंत में प्रस्थान कर कहीं न जाओ क्योंकि यह सुंदर स्त्री (प्रमदा) दीन–हीन हो जाएगी। ग्रीष्म वर्णन के विपरीत यहाँ शीत के कारण प्रिय विहीन संयोगिता की दीन दशा का वर्णन है, लेकिन यहाँ शीत के प्रकोप का प्रकृति पर पड़ने वाले प्रभाव का बिल्कुल अभाव है। कहने का तात्पर्य है कि रासो में संयोगिता की अवस्था और विविध ऋतुओं के विवरण में सामन्जस्य स्थापित नहीं होता। ऐसा प्रतीत होता है मानो मात्र खानापूर्ति के लिए ही संयोगिता के संदर्भ में रासोकार ने षऋतुओं का वर्णन किया है। बहरहाल संयोगिता के प्रेम में पृथ्वीराज इस कदर डूबे हुए थे कि उन्हें राजकाज की बिल्कुल सुध नहीं थी

इह विधि विलसि विलास असार सुसार किअ।
दइ सुष जोग संजोगि सोइ पृथिराज जिय।
अहनिसि सुध्धि न जानहि माननि प्रौढ रति।
गुरू बंधव भृत लोइ भई विपरीत गति।[26]

अर्थात् समस्त विलासों को भोगकर पृथ्वीराज ने अपने सामर्थ्य शक्ति को भुला दिया था। तात्पर्य कि विलासों के अधीन होकर पृथ्वीराज ने अपनी शक्ति को बिसार दिया था। पृथ्वीराज का मन केवल संयोगिता के साथ केलि विलास में लग रहा था। संयोगिता की रति में पड़कर वह दिन–रात भूल चुका था। पृथ्वीराज को यह पता न चलता था कि कब दिन होता है, कब रात। पृथ्वीराज की ऐसी स्थिति देखकर उसके गुरु, बंधु–बांधव और प्रजा उसके विपरीत होने लगे थे। कहने का तात्पर्य कि पृथ्वीराज संयोगिता के साथ रति रंग में इस प्रकार डूब गया था कि उसे राज काज की कोई सुध न थी।

शहाबुद्दीन गोरी के भावी आक्रमण और संभावित संकट को भाँप कर राजगुरु और चंद पृथ्वीराज के पास संयोगिता के महल जाते हैं, जहाँ संयोगिता और पृथ्वीराज का केलि विलास चल रहा था। राजगुरु और चंद ने पृथ्वीराज के पास सदेश भेजा कि

गज्जनेस आयेसु असंभु सह सेन सकल्लिअ।
दियो चारू आदरू अनंद ढिल्लिय दिस मिल्लिअ।
दस हजार वारूणि विलास दस लष्ष तुरंगम।
तहि अनेय भर सुभर भौर गंभीर अभंगम।
अप्पज्ज वान चहुआन सुनि प्रान रषिक प्रारंभ करि।
सा मंत न ही सामंत करि जिनि बोलइ दिल्लिय जुधरि।[27]

अर्थात् शहाबुद्दीन की आज्ञा से उसकी समस्त सेना एकत्रित हो गई है। शहाबुद्दीन ने अपनी सेना का आदर किया है और सेना आदर से प्रसन्न होकर दिल्ली की ओर चल पड़ी है। उस सेना में दस हजार हाथी और दस लाख घोड़े हैं। उस सेना में अनेक वीर योद्धा और अमीर हैं, जो गंभीर तथा अविचलित रहने वाले हैं। हे चौहान ! सुनो, बाण तो तुम्हारे अधीन हैं। यदि तुम और कुछ नहीं कर सकते हो तो अपने बाणों का प्रयोग करके ही अपने प्राणों की रक्षा करो। सामंत नहीं, तो भी ऐसा कोई भी काम मत करो जिससे

दिल्ली की धरा डूब जाए। राजगुरू और चंद के तिरस्कार भरे स्वर को सुन कर पृथ्वीराज की तंद्रा टूटी। निश्चय ही ऐसी बातें किसी भी योद्धा को जागृत करने और कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर करने के लिए पर्याप्त थीं, फिर योद्धा यदि पृथ्वीराज हो तो...। पृथ्वीराज तुरंत अपना तूणीर धारण करता है और महल से निकलने को उन्मुख होता है

सुणि कग्गरू पिट्टउ सुकर धर रष्षइ गुर भट्ट।
तरकि तोन सजियउ स किरि जिमि वेष छंडि सू नट्ट।[28]

अर्थात् पृथ्वीराज ने उस लेख को सुनकर अपना हाथ पीटा और कहा कि राज्य की रक्षा गुरू तथा भट्ट करें और मैं विलासरत रहूँ ऐसा नहीं हो सकता है। पृथ्वीराज ने तुरंत केलि–विलास छोड़कर तूणीर धारण किया। उसे देखकर ऐसा प्रतीत हुआ मानो किसी सुनट ने अपना पहले का वेष छोड़कर नया वेष धारण कर लिया हो। इस पूरे घटनाक्रम के पश्चात् संयोगिता के व्यक्तित्व का एक ऐसा पहलू उभरकर सामने आता है जो उसके पूर्ववर्ती व्यक्तित्व से मेल नहीं खाता। जो संयोगिता परिणय के पश्चात् पृथ्वीराज को अपनी ओर आता देखकर इसलिए निराश हो गई थी कि शत्रुओं को परास्त किए बिना उसका पति उसके पास क्यों आ रहा हैय काम से दग्ध होते हुए भी जो संयोगिता चाहती थी कि पृथ्वीराज पहले अपने शत्रुओं का विनाश करे तब उसके पास आए। लेकिन अब वही संयोगिता वस्तुस्थिति को जानते हुए भी पृथ्वीराज को काम का प्रलोभन देकर भाँति–भाँति से उदाहरण प्रस्तुत कर उसे रोकना चाहती है–

कहु सुप्रियह पउमिनिय कंत धन धरउ तउ न धन।
सुष सुष मार आरोहु असर संसार मरण मन।
दिन दिनियर दिन चंदु रयनि दिन दिन ही आवहि।
जंतु जंतु इह रमनि स्रवन लग्गवि समझावहि।
अरधंग धरा अरधंग हम अरधंगी अरधंग करि।
जस हंस हंस तह हंसनी सर सुक्कइ पंकजन परि।[29]

अर्थात् अपने पति से संयोगिता ने कहा हे स्वामी रखा हुआ धन, धन नहीं होता। तात्पर्य कि यदि धन रखा रह जाए, समय पर खर्च न किया जाए तो वह किस काम का। वही सुख, असली सुख है जिसमें काम का उत्कर्ष हो। काम से रहित संसार मरण है। तात्पर्य कि काम–सुख ही सच्चा सुख है और काम विहीन जीवन मरण के समान है। हर दिन सूर्योदय होता है हर दिन चंद्रोदय होता है। इसी प्रकार रात और दिन भी हर दिन आते हैं, परंतु प्राणी एक दिन संसार से चला जाता है। तात्पर्य यह कि सूर्य और चंद्रमा, रात और दिन क्रमानुसार आते जाते हैं, इनकी सार्थकता तभी तक है जब तक मनुष्य का जीवन है। जीवन नहीं रहने पर इनका कोई महत्त्व नहीं है। संयोगिता पृथ्वीराज के कानों में कहती है कि यह पृथ्वी आपकी अर्धाङ्गिनी है तो मैं भी आपकी अर्धाङ्गिनी हूँ। मुझ अर्धाङ्गिनी को आप अपना आधा अंग दान करें। कहने का आशय है कि यदि धरा के प्रति आपका कर्त्तव्य है तो मेरे प्रति भी आपका कर्त्तव्य है, मेरे प्रति आप अपने कर्त्तव्य का पालन कीजिए। जिस प्रकार हंस होता है उसी प्रकार हंसिनी भी होती है, दोनों जीवन भर साथ–साथ रहते हैं। तालाब सूखता है, तो कमल भी मुरझा जाता है अर्थात् तालाब और पंकज अंत तक साथ निभाते हैं। इस पद में संयोगिता येन केन प्रकारेण अपने पति पृथ्वीराज को रोकना चाहती है। यहाँ संयोगिता यह भूल जाती है कि उसका पति केवल उसका पति ही नहीं है, वह एक राजा भी है और उसे राजा के धर्म का पालन करना चाहिए। संयोगिता के अनुनय का उत्तर पृथ्वीराज निम्न शब्दों में देता है

सुनि प्रिय प्रिय दिष्यौ वदन किय जिय निर्भय पाथ।
वाहूं पुज्जउ वरह तुह कहिस मुध्ध रति नाथ।[30]

अर्थात्, संयोगिता की बातें सुनकर पृथ्वीराज ने अपनी प्रिया का मुख देखा और अपने हृदय को कठोर बना लिया। उसने संयोगिता से कहा, हे श्रेष्ठ स्त्री! तुमने मेरी भुजाओं की पूजा की है और अब वही तुम रतिनाथ अर्थात् काम की बातें कर रही हो। निश्चय ही पृथ्वीराज यहाँ संयोगिता को समझाना चाहता है कि तुम मेरे शौर्य और यश से प्रभावित होकर ही मेरी परिणिता बनी, अब तुम वो कैसे भूल गई?

संयोगिता के रूप में हमें एक ऐसी स्त्री के दर्शन होते हैं जो मनुष्य की तमाम विशिष्टताओं और कमजोरियों का घनीभूत पुंज है। एक ओर संयोगिता में अद्भुत संकल्प शक्ति है तो दूसरी ओर पति के बिना

अस्तित्वविहीन हो जाने का भयानक डर, एक ओर काम पर ऐसी विजय है कि पृथ्वीराज के बिना जीवन भर कुँवारी रहने का संकल्प लेती है, तो दूसरी ओर काम के इतनी अधीन कि पति को कर्त्तव्य पथ पर बढ़ने से भी रोक देना चाहती है, एक ओर पति को पिता से युद्ध के लिए प्रेरित करती है तो दूसरी ओर पति को उसके परम शत्रु शहाबुद्दीन के साथ युद्ध से विमुख करने का प्रयास करती है इस प्रकार पुत्री और पत्नी से अलग संयोगिता का अपना एक अलग व्यक्तित्व है जो उसे पूर्ण मानुषी का दर्जा प्रदान करता है।

संदर्भ–सूची :–

1. पृथ्वीराज रासउ संपादक–डॉ. माता प्रसाद गुप्त साहित्य–सदन, चिर गाँव (झाँसी), प्रथमवृत्ति, 2020 वि. पृ. 35
2. वही, पृ. 36
3. वही, पृ. 37
4. वही, पृ. 37
5. वहीं, पृ. 40
6. वही, पृ. 39
7. वही, पृ. 38
8. वही, पृ. 39
9. वही, पृ. 40
10. वही, पृ. 3
11. वही, पृ. 41
12. वही, पृ. 149–150
13. वही, पृ. 151
14. वही, पृ. 151
15. वही, पृ. 153
16. वही, पृ. 162–163
17. वही, पृ. 164
18. वही, पृ. 165?
19. वही, पृ. 166
20. वही, पृ. 167
21. वही, पृ. 213
22. वही, पृ. 242
23. वही, पृ. 256–257
24. पृ. 246
25. पृ. 249
26. पृ. 245
27. पृ. 266
28. पृ. 267
29. पृ. 267
30. पृ. 169

ఐ★ఆ

आधुनिक हिंदी कविता का सौंदर्य-बोध

प्रो. विजयकुमार रोडे *

शोध सार :– सौंदर्य मानव जीवन की एक मूलभूत अनुभूति है जो कला, साहित्य और संस्कृति के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। हिंदी साहित्य के विकासक्रम में सौंदर्य–बोध की अवधारणा निरंतर परिवर्तित होती रही है। विशेषतः आधुनिक काल में कविता के स्वरूप, विषय–वस्तु और अभिव्यक्ति के साथ–साथ सौंदर्य बोध भी बदल गया है। पारंपरिक काव्य में जहाँ सौंदर्य का आधार प्रकृति, श्रृंगार और आध्यात्मिक भावों में निहित था, वहीं आधुनिक कविता में सौंदर्य का संबंध जीवन की यथार्थपरक स्थितियों, सामाजिक संघर्षो, मानवीय संवेदनाओं और अस्तित्वगत प्रश्नों से जुड़ गया। आधुनिक हिंदी कविता में सौंदर्य का अर्थ केवल रमणीयता नहीं बल्कि जीवन की जटिलताओं, विडम्बनाओं और संघर्ष में भी निहित है।

बीज शब्द :– आधुनिक कविता, सौंदर्य–बोध, संवेदना, शब्द–शिल्प, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, मानवीयता, प्रकृति प्रेम, अनुभूति, श्रृंगार, चेतना, रमणीयता आदि।

प्रस्तावना :– साहित्य मानव जीवन की संवेदनाओं, अनुभूतियों और विचारों की सृजनात्मक अभिव्यक्ति है। साहित्य की प्रत्येक विधा में सौंदर्य–बोध का विशेष महत्व होता है, क्यों कि सौंदर्य ही वह तत्व है जो पाठक के मन में रसात्मक अनुभूति उत्पन्न करता है। कविता को विशेष रूप से सौंदर्य की अभिव्यक्ति का माध्यम माना गया है।

हिंदी साहित्य के इतिहास में सौंदर्य–बोध की अवधारणा समय–समय पर बदलती रही है। प्राचीन और मध्यकालीन काव्य में सौंदर्य का संबंध मुख्यतः श्रृंगार, प्रकृति और भक्ति से था, लेकिन आधुनिक युग में सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण सौंदर्य की अवधारणा में भी परिवर्तन आया है।

आधुनिक कविता में सौंदर्य केवल बाह्य रूप रमणीयता तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उस में जीवन के संघर्ष पीड़ा, विडम्बना, विद्रोह और मानवीय संवेदना भी शामिल हो गयी है। अतः आधुनिक कविता में सौंदर्य का स्वरूप बहुआयामी हो गया है।

विषय वस्तुतः सौंदर्य बोध का अर्थ है– किसी वस्तु, व्यक्ति, घटना या विचार में निहित सौंदर्य को अनुभव करने की क्षमता। साहित्य और कला में सौंदर्य–बोध वह संवेदनात्मक दृष्टि है जिसके माध्यम से कलाकार या साहित्यिक जीवन की घटनाओं को कलात्मक रूप प्रदान करता है। भारतीय काव्यशास्त्र में सौंदर्य की अवधारणा रस, ध्वनि और अलंकार से जुड़ी हुई है। भरतमुनि, आनंदवर्धन और अभिनव गुप्त जैसे आचार्यों ने काव्य में रसात्मक अनुभूति को ही सौंदर्य का आधार माना है।

आधुनिक कविता का आरंभ उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से माना जाता है। इस काल में भारतीय समाज में अनेक परिवर्तन हुए, जैसे– औद्योगिकरण, शिक्षा का प्रसार, राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक सुधार आंदोलनों का उदय। इन परिवर्तनों का प्रभाव आधुनिक कविता में दिखायी देता है। 'आधुनिक कविता के विकास की कहानी सीधी और सपाट नहीं है, उसमें समय–समय पर अनेक परिवर्तन हुए हैं। ये परिवर्तन क्रमिक तो हैं, किंतु आकस्मिक नहीं हैं। अतः यह कविता अनेक शीर्षकों और उपशीर्षकों में विभाजित की गयी है।'[1] आधुनिक कविता के रचना प्रवाह में सौंदर्य बोध का अनुभव हमें कई रूपों में प्राप्त होता है। आधुनिक कविता युगानुरूप बदलती हुई दिखायी देती है। युगीन सामाजिक राजनीतिक, सांस्कृतिक बदलाओं को अपने भीतर समेटती हुई यह कविता विविध स्तरों पर पाठकों को सौंदर्यबोध का अहसास कराती है। आधुनिक कविता ने अपनी अंतर्वस्तु का विस्तार करते हुए अभिव्यक्ति के स्तर पर कई प्रकार के नये–नये प्रयोग किए। शब्द संयोजन, शैली, विषय तथा उसकी प्रासंगिकता को बहुत ही सशक्त बनाया। 'कहने का

***हिंदी विभाग, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे।**

अभिप्राय यह है कि अपनी समृद्ध काव्य परंपरा को जाने बगैर कोई भी कवि अपने समय के मुहावरे और काव्य–वृत्त को समझ नहीं सकता। जिस प्रकार समय गतिशील है, कविता भी निरंतर गतिशील है। समय के साथ भाषा, काव्य रूप, विषय, सौंदर्य चेतना में बदलाव आते रहते हैं। जो कवि अपने पहले के तमाम कवियों के काव्यानुभवों से गुजरते हुए अपनी काव्य चेतना का विस्तार करते हैं, वे ही अपने समय की वास्तविकता का सही अंकन कर पाते हैं।'[2] अतः काव्य सृजन का पहला और अंतिम उद्देश्य पाठकों को विशुद्ध आनंद प्रदान कर उसमें परिवर्तन लाना है। ऐसी स्थिति में कवि अपनी संवेदनशील अनुभूति के द्वारा एक ओर कविता में सौंदर्य के तत्वों को शामिल करने का प्रयास करता है तो दूसरी ओर परिवर्तनशील विचारों की अभिव्यक्ति भी करता है।

वास्तविक रूप में आधुनिक हिंदी कविता के विभिन्न रूपों का परिचय हमें भारतेंदु युगीन कविता से प्राप्त होता है। यह नवजागरण, राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक सुधारों का युग माना जाता है। इस युग की कविता केवल भाव–विलास का माध्यम न बनते हुए वह समाज और राष्ट्र की समस्याओं को अभिव्यक्त करने का साधन बन गयी। भारतेंदु युगीन कविता में सौंदर्य–बोध की अवधारणा भी पारंपरिक दृष्टि से हटकर एक नए रूप में विकसित होती दिखायी देती है। इस युग के काव्य–सौंदर्य का संबध केवल श्रृंगार और प्रकृति से न होकर समाज, राष्ट्र, संस्कृति और यथार्थ जीवन से जुड जाता है। 'बीसवीं सदी की हिंदी कविता किसी दुर्गम पर्वत पर लगातार चढते जाने का अनुभव–संसार है, उसका संवदेनशील और जुझारु चेहरा हमेशा दमकता रहा है। भले उसके रंगोआब में बदलाव आते गए हैं।'[3] भारतेंदु युगीन कविता में सौंदर्यं–बोध एक संक्रमणकालीन स्वरूप प्रस्तुत करता है। इसमें परंपरा और आधुनिकता दोनों तत्व मौजूद है। इस युग की कविता का सौंदर्य आधार–राष्ट्रीय चेतना सामाजिक सुधार, यथार्थ जीवन तथा सांस्कृतिक गौरव रहा है। इस युग की कविता का सौंदर्य केवल 'सुंदरता' तक सीमित न रहा, बल्कि वह उपयोगिता, जागरण, सामाजिक चेतना तथा समन्वय के साथ जुड़ जाता है। 'मनुष्य सौंदर्य–नियमों के अनुसार जो रचना करता है वह स्वयं मनुष्य की सौंदर्य–चेतना और सौंदर्य–ग्रहण की क्षमता को विकसित करती है।' 'सौंदर्यबोध के बिना सौंदर्य–सृष्टि नहीं हो सकती। हम कलात्मक रूप का सृजन करते हैं। इस सृजन के जरिए अपने से बाहर की तमाम चीजों को सौंदर्यपूर्ण ढंग से अभिव्यंजक बनाते हैं।'[4] इस युग के कवियों ने राष्ट्रप्रेम को ही सौदर्यं का रूप माना। देश की दुर्दशा का चित्रण भी उनके लिए सौंदर्यपूर्ण अभिव्यक्ति का माध्यम बन गया। इस युग के कवियों ने समाज की बुराइयों को उजागर करते हुए सुधार की प्रेरणा दी। अतरू इस युग की कविता में सत्य और यथार्थ का उद्‌घाटन ही सौंदर्य का आधार बन गया। यहाँ सौंदर्य केवल सुखद नहीं, बल्कि कटू यथार्थ में भी निहित है। 'मनुष्य ने शनैरू शनैरू यह अनुभव किया और जाना कि वस्तु में उपयोगिता के साथ–साथ और भी कुछ होता है और इसे 'और भी कुछ' का संबंध सौंदर्य तत्व और सौंदर्यबोध से उत्पन्न आनंद से है।'[5] अतः यह कहा जा सकता है कि भारतेंदु युगीन कविता में सौंदर्य बोध एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का संकेत देता है।

आधुनिक हिंदी कविता में भारतेंदु युग के बाद छायावाद युग काव्य सौंदर्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण युग माना जाता है। छायावाद को हिंदी कविता का स्वर्ण युग भी कहा जाता है। इस काल में कविता में प्रकृति, प्रेम, सौंदर्य और आत्मानुभूति को सशक्त ढंग से अभिव्यक्त किया गया। छायावादी कवियों ने सौंदर्य को अत्यंत कोमल और भावात्मक रूप में प्रस्तुत किया। प्रकृति उनके लिए केवल दृश्य नहीं बल्कि संवेदना का स्रोत थी। छायावाद के कवियों ने जीवन और प्रकृति के रहस्यों को सौंदर्यं के रूप में देखा। 'छायावादी कवि वैयक्तिक अनुभूति के कवि होते हुए भी व्यक्तिवादी नहीं थे। उनकी अनुभूति का प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष संबंध इतिहास, राजनीति और सामाजिक यथार्थ से था।'[6] छायावाद का मूल उत्स भारतीय स्वाधीनता संघर्ष में है। 'छायावादी कविता का सौंदर्यबोध अपनी सामान्यता में नहीं, विशिष्टता में ध्यान आकर्षित करता है।'[7] इस बात को स्वीकारना होगा कि छायावादी कवियों ने अपने समय में एक–साथ कई विषयों को आधार बनाकर काव्य निर्मिती का प्रयास किया। उनकी कविताओं में पाठकों को प्रकृति सौंदर्य, प्रेम और करुणा, रहस्य और आध्यात्मिकता आदि तत्व प्राप्त होते हैं। परंतु इन सभी तत्वों में से सौंदर्य तत्व मुख्यरूप से हमें अवगत कराता है।

आधुनिक कविता क्रम में छायावाद के बाद प्रयोगवादी कविता का दौर कई अर्थों में महत्वपूर्ण माना जाता है। हिंदी साहित्य में प्रगतिवाद एक महत्वपूर्ण काव्य आंदोलन के रूप में उभरता है। प्रगतिवादी काव्य में सौंदर्य बोध की अवधारणा पारंपरिक काव्य दृष्टि से भिन्न है। यहाँ सौंदर्य केवल प्रकृति, श्रृंगार या आध्यात्मिकता तक सीमित न होकर जीवन के यथार्थ संघर्ष और श्रमशील मनुष्य में निहित है। प्रगतिवादी कवियों की दृष्टि में सौंदर्य का अर्थ 'सुंदरता' मात्र नहीं है, बल्कि वह जीवन की सच्चाई, संघर्ष और परिवर्तन की चेतना से जुड़ा हुआ है।

प्रगतिवादी कवियों के कवि दायित्व के बारे में यह कहा जाता है कि 'आदर्श के तरल वायुमंडल में निकलकर यथार्थ की पक्की जमीन पर आते ही प्रगतिवादी कवियों ने जन–जीवन को देखा, हृदयंगम किया और काविताबध्द किया। इस प्रक्रिया में जन–जीवन की भीतरी और बाहरी दोनों ही तसवीरें उभरकर सामने आयी हैं। सामाजिक उन्नति और नव निर्माण के दौरान सबसे पहले रुढियों पर प्रहार किया गया। वे आर्थिक और नैतिक मान्यताएँ ताक में रख दी गयी जो युगों से चली आ रही थीं। शोषितों और पीडितों के करुण गायक इन कवियों ने एक ओर मानवतावादी भावना का प्रसार किया, तो दूसरी ओर शोषक वर्ग के प्रति उपेक्षा भाव भी दिखाया।'[8] प्रगतिवादी कवियों की नजर में सौंदर्य पीड़ा में है, सौंदर्य संघर्ष में है, सौंदर्य श्रम में है और सौंदर्य विद्रोह में भी है। क्योंकि प्रगतिवाद का उदय मूलतः सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप ही हुआ है।

प्रगतिवादी कविता का समग्र रूप में अवलोकन करने के बाद हमें उस कविता में सामाजिक प्रतिबद्धता, आस्था प्रेरित मानवता, राष्ट्रीय चेतना, देश–प्रेम, लोक चेतना, व्यंग्यात्मकता, वर्ग–संघर्ष, क्रांति की भावना, प्रकृति सौंदर्य, प्रेमानुभूति आदि तत्व विद्यमान होते दिखायी देते हैं। प्रगतिवादी काव्य का सौंदर्यबोध हिंदी काव्य साहित्य में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का द्योतक है। इसके सौदर्यं को पारंपरिक सीमाओं से मुक्त कर जनजीवन, श्रम, संघर्ष और सामाजिक यथार्थ से जोड दिया है।

हिंदी काव्य आंदोलनों में प्रगतिवाद के बाद प्रयोगवाद एक महत्वपूर्ण आंदोलन माना जाता है। प्रयोगवादी कविता में सौंदर्य का आधार नयापन है। कवि पारंपरिक छंद, भाषा और विषयों से हटकर, नए प्रयोग करता है। इस युग के कवियों द्वारा सौंदर्य अब केवल श्सुंदरश में नहीं, बल्कि 'अलग' 'नया' भी देखा जाता है। इस युग के कवियों ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों, भावनाओं और चेतना को महत्व दिया है। इनके सौंदर्य का केंद्र बाहरी दुनिया से हटकर आंतरिक अनुभूति बन जाता है। 'प्रयोगवाद एक ओर व्यक्तिगत अनुभूति को समष्टि अनुभूति तक उत्सर्ग करने का प्रयास है, तो दूसरी ओर वह रूढि का विरोधी और अन्वेषण का समर्थक भी है। प्रयोगवाद व्यक्ति–अनुभूति की शक्ति को मानते हुए समष्टि की संपूर्णता तक पहुँचने का प्रयास है।'[9] प्रयोगवादी कविता में भावनाओं के साथ–साथ विचार और चिंतन भी महत्वपूर्ण होते हैं। यहाँ सौंदर्य केवल भावुकता में नहीं, बल्कि विचारों की गहराई में भी निहित है। प्रयोगवादी कविता में कवि अपनी बात सीधे न कहकर प्रतीकों और बिंबों के माध्यम से अपनी बात व्यक्त करता है। इससे कविता में गूढ़ता और बहुस्तरीय अर्थ पैदा होता है, जो सौंदर्य को और समृद्ध करता है। प्रयोगवादी कविता में आधुनिक जीवन की जटिलता, तनाव और विडंबनाएँ भी सौंदर्य का हिस्सा हैं।

कहना होगा कि प्रयोगवादी कविता का सौंदर्यबोध पारंपरिक 'रमणीयता' से आगे बढ़कर नवीनता व्यक्तित्व, बौद्धिकता और यथार्थ को अपनाता है। इसमें सौंदर्य केवल रखने या महसूस करने की चीज नहीं, बल्कि सोचने और समझने की प्रक्रिया है। नयी कविता के बीज प्रयोगवाद में ही निहित है। सन 1951 के बाद की नयी कविता का प्रारंभ माना जा सकता है। इस कविता में जीवन के यथार्थ व्यक्ति की संवेदना तथा आधुनिकता की जटिलताओं को नए ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। नयी कविता के सौंदर्य का आधार जीवन का यथार्थ है। नयी कविता में गरीबी, संघर्ष, अकेलापन, शहरी, जीवन की समस्याएं सौंदर्य का हिस्सा बनती हैं। तात्पर्य सौंदर्य केवल सुखद नहीं, बल्कि वह कटू सत्य में भी निहित है।

निष्कर्षः आधुनिक हिंदी कविता का, सौंदर्य–बोध परंपरागत काव्य–दृष्टि से एक निर्णायक मोड का संकेत देता है। जहाँ आरंभ में सौंदर्य का संबंध मुख्यतः प्रकृति, प्रेम, माधुर्य और अलंकारिकता से जोडा जाता

था, वहीं आधुनिक कविता ने इस सीमित दायरे को तोड़कर जीवन के व्यापक और जटिल यथार्थ को अपने भीतर समाहित किया। इस प्रकार आधुनिक कविता में सौंदर्य की अवधारणा अधिक विस्तृत, बहुआयामी और गतिशील बन जाती है। आधुनिक कविता का सौंदर्य बोध केवल रमणीयता तक सीमित न रहते हुए वह जीवन की कटूता, विडंबना, संघर्ष, अकेलापन और अस्तित्वगत संकट को भी अपने में व्यापता है।

आधुनिक कवि यह मानता है कि सच्चा सौंदर्य जीवन की वास्तविकता को ईमानदारी से व्यक्त करने में हैं– चाहे वह सुखद हो या असुखद। इस दृष्टि से आधुनिक कविता का सौंदर्य–बोध यथार्थवादी और सत्यनिष्ठ है। अंततः आधुनिक कविता का सौंदर्य–बोध यह स्थापित करता है कि सौंदर्य कोई स्थिर या निश्चित तत्व नहीं है, बल्कि यह समय, समाज और व्यक्ति की चेतना के साथ बदलनेवाली प्रक्रिया है। आधुनिक कवि ने सौंदर्य को जीवन के हर पहलू में खोजने का प्रयास किया है– चाहे वह उज्ज्वल हो या अंधकारमय। इस प्रकार आधुनिक कविता का सौंदर्य–बोध हमें यथार्थपरक, संवदेनशील चिंतनशील और व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है, जो जीवन की संपूर्णता को समझने में सहायक होता है।

संदर्भ–सूची :–

1. डॉ. हरिचरण शर्मा, आधुनिक हिंदी कविता का इतिहास, मलिक एण्ड कंपनी, चौडा रस्ता, जयपुर–302003, प्र. सं. 2010, पृ.12।
2. रवींद्र कालिया, स्वगत, वागर्थ, अप्रैल 2004, पृ. 8–9।
3. सं. शंभुनाथ, हिंदी साहित्य ज्ञानकोश– भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता–700017, प्र. सं. 2015, पृ. 489।
4. अजय तिवारी, सौंदर्यशास्त्र के प्रश्न, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली 110002, प्र. सं. 2015, पृ. 24।
5. सं. ज्ञानरंजन, मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली 110002, प्र. सं. 2019, पृ. 176।
6. सं. शंभुनाथ, हिंदी साहित्य ज्ञानकोश, भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता–700017, प्र. सं. 2015, पृ.469।
7. डॉ. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, प्र. सं. 2009, पृ.153।
8. डॉ. हरिचरण शर्मा, आधुनिक हिंदी कविता का इतिहास, मलिक एंण्ड कंपनी, जयपुर, 302003, प्र.सं. 2010, पृ.73–74।
9. डॉ. हरिचरण शर्मा, आधुनिक हिंदी कविता का इतिहास, मलिक एंण्ड कंपनी, जयपुर, 302003, प्र.सं. 2010, पृ.73–74।
10. डॉ. हरिचरण शर्मा, आधुनिक हिंदी कविता का इतिहास, मलिक एंण्ड कंपनी, जयपुर, 302003, प्र.सं. 2010, पृ.85।

ꕤ★ꕤ

कवि-कर्म में कल्पना एवं अतिशयोक्ति की सृजनात्मक भूमिका

डॉ. सच्चिदानन्द देव पाण्डेय *

कविता अपने मूल रूप में एक रचनात्मक उक्ति है। जिसमें अनुभवात्मक सत्य अपने रमणीय अर्थ में व्यक्त होता है। सृजन की इच्छा, कल्पना का सुन्दर रूप, अभिव्यक्ति की रसात्मकता, जीवन और जगत के प्रति रागात्मक सम्बन्धों की मधुरता सब मिलकर किसी उक्ति को काव्य की मनोरम संज्ञा प्रदान करते हैं। प्राचीन आचार्यों के अनुसार काव्यत्व की कसौटियाँ हैं– 'मृदु–ललित पदों का संयोजन, सरलता, जन–मन को सुख देने की क्षमता'[1] शब्द और अर्थ की परस्पर अविच्छिन्न संगति[2], रसात्मकता[3], अर्थ की रमणीयता से युक्त शब्द विधान[5], भावों की अनायासता[5], बिम्ब विधायकता (मूर्ति विधान)[6], कर्म क्षेत्र में प्रवृत्त करने की भावुक प्रेरणा[7], इत्यादि। इन कसौटियों पर उत्कृष्ट ठहरने वाला शब्द विधान कविता और इसका साधक ही कवि कहलाने की पात्रता रखता है।

'जीवन और जगत के मार्मिक अनुभवों की संचित ज्ञानराशि'(आचार्यों ने इसे साहित्य कहा है) के प्रसार और 'स्व' से पृथक शेष सृष्टि से संवाद की आकुलता ही कवि से कविता का सृजन करवाती है। अपनी अनुभूति को दूसरों से बाँटने का संतोष और इसमें प्रच्छन्न यश कामना, उपदेश–सुख के साथ–साथ प्रेरणा का श्रेय प्राप्त करने की लालसा भी काव्यात्मक रचना की आविष्कारक होती है। काव्य की आत्मा का अनुसंधान करने वाले प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तकारों ने अपने–अपने ढंग से रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि और औचित्य के विधान को कविता का उद्देश्य सिद्ध किया है। आधुनिक चिन्तकों ने हृदय की मुक्तावस्था अर्थात् रसदशा की प्राप्ति के लिए किये गये शब्द विधान में कविता की सार्थकता दिखायी है।[8] किसी ने आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति में पाये गये सत्य के सौन्दर्यपूर्ण प्रकाशन में काव्यत्व का उदय माना है।[9] तो अन्यों ने क्षण विशेष में उभरे हुए भाव को दर्ज कर लिये जाने के प्रयत्न को रचना प्रक्रिया का हेतु माना है। ये सब कविता विधा को समय के साथ अभिव्यक्ति की कला से अनूभूति के प्रकाशन की विधा में बदलते जाने का ऐतिहासिक प्रमाण है।

चूँकि कविता अपने प्रकट रूप में एक सार्थक उक्ति अथवा कथन है। इसलिए उसे सशक्त और प्रभावशाली एवं सफल बनाने के लिए जिन उपकरणों की आवश्यकता होती है। उनमें जितनी अभिव्यंजना कौशल की बाह्यकलाकारी उतनी ही अनुभूति एवं कल्पना की आन्तरिक शक्ति, दोनों का महत्वपूर्ण और पारस्परिक चारु–प्रतिस्पर्धी योगदान होता है। दोनों के विकास में कुछ जो सहायक उपकरण हैं, जैसे– अलंकार (अतिशयोक्ति, अन्योक्ति, वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति इत्यादि)। वे कविता को एक उक्तिविशेष (विशेषीकृत उक्ति) के रूप में देखने का संकेत करते हैं।

वक्रोक्ति (उक्ति की वक्रता) कथन की भंगिमा का निर्धारण करती है। कवि की समूची विदग्धता इस के संधान में पहचानी जा सकती है। ध्वनि के स्तर से लेकर शब्द, पद और वाक्य, अर्थ, प्रकरण इत्यादि हर स्तर पर वक्रोक्ति–रचना कथन को अनूठा बनाने की एक व्यापक योजना है। इसी कारण से इसे कुछ आचार्यों ने सब अलंकारों और काव्यों का मूलतत्व भी कहा है। ("सैषा सर्वत्र वक्रोक्ति अनयार्थो विभाव्यते/यत्नोस्याःकविना कार्यः कोलंकारोनया बिना।।[10]") भले ही इसे अर्थालंकार के एक प्रकार के रूप में भी स्वीकार किया गया है। किन्तु यह अभिव्यक्ति की एक सम्पूर्ण सामर्थ्यवान कला है। यह वाक्य के स्तर पर अर्थ को संपूर्णता देती है। अतिशयोक्ति भी वाक्य की वक्रता को साधने का एक ऐसा ही सहायक उपकरण है। वह वाक्य के भीतर से अर्थ की ऐसी उछाल उत्पन्न करती है कि दृश्य का विस्तार कवि की

***असिस्टेंट प्रोफेसर –हिन्दी, राष्ट्रीय पी. जी. कालेज जमुहाई, जौनपुर।**

निरीक्षण शक्ति की सीमा तक जा पहुँचता है। और सहृदय, श्रोता और पाठक के लिए कवि की मूल अनुभूति को अधिक तीव्रता से साक्षात्कार करने योग्य वातावरण तैयार होता है।

भौतिकी का एक सिद्धान्त है कि यदि किसी प्रक्षेप्य वस्तु को अधिक ऊँचाई तक अथवा अधिक दूरी तक भेज देना हो तो उसे क्षैतिज रेखा से कुछ ऊँचा ६०° या ४०° के कोण से उठाकर प्रक्षेपित किया जाना चाहिए।[11] इसी तरह कवि की काव्यानुभूति को श्रोता या पाठक के हृदय की सुदूर गहराई तक अथवा उसके संवेदना के उच्चतम तल पर, अनुभव क्षेत्र के विस्तृत क्षेत्रफल में पहुँचाना हो तो कवि को अपनी उक्ति में किंचित अतिशयता और कल्पना की उड़ान भरनी पड़ती है। हालांकि इसका उचित उपयोग काव्यकला के शुभप्रभाव को ध्यान में रखकर किये जाने में ही कवि कौशल की सिद्धि मानी जायेगी।

कल्पना रचनात्मिका शक्ति है। वह कवि की साधारण अनुभूति को विलक्षण ढंग से कहने योग्य बिंब विधान निर्मित करती है। यह अंतःकरण की विधायिका है। इसके बिना किसी भी कवि की प्रतिभा अशक्त और अनुपयोगी बनकर रह जाती है। इसलिए इसे एक प्रकार से प्रतिभा का पर्याय ही माना जाता रहा है। प्राचीन आचार्यों ने प्रतिभा में ही कल्पना शक्ति को अंतर्भुक्त करके प्रतिभा या शक्ति पर जो विमर्श किया है। उससे इस कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा के संश्लेष में ही कल्पना का अस्तित्व हमें प्राप्त होता है। इस तरह रचना और विस्तार, कल्पना और अतिशयोक्ति का परस्पर संपूरक सम्बन्ध बनता है।

अतिशयोक्ति केवल एक अलंकार मात्र नहीं है। यह काव्य रचना प्रक्रिया का एक आवश्यक गुण है। जो छोटी चीजों को बड़ा करने में या सीधी चीजों को उलटने या किसी वस्तु को भिन्न दृष्टिकोणों से दिखाने का उपक्रम रचता है। सामान्य अर्थ में **अतिशयोक्ति** से "अधिक कह देने", "बढ़ा– चढ़ा कर बोलने" का तात्पर्य ग्रहण किया जाता है। किन्तु इस शब्द की गहराई में प्रवेश करने पर ज्ञात होता है कि यह कवि की अनुभूति को व्यापकता प्रदान करने वाला उपयोगी भाषिक कौशल है। कवि के भीतर की कल्पना, विस्तारित भाषिक रूप में अभिव्यक्त होकर अतिशयोक्ति बन जाती है। यह कवि के शिल्प कर्म की विशेषता बन जाती है। जिस कवि की कल्पना शक्ति जितनी प्रबल होगी उसकी अतिशयोक्ति उतनी ही जीवन्त होगी।

अतिशयोक्ति शब्द– 'अति +शय(शीङ धातु)+उक्ति' से बना हुआ है। इसका अर्थ है– विस्तार करना, वृद्धि करना, श्रेष्ठ या उत्कृष्ट बनाना।[12] अर्थात् किसी उक्ति को भाषा की सीमा से आगे तक विस्तृत करके उत्कृष्टतर बना देना। इस गुण के कारण अतिशयोक्ति नये कवि के लिए काव्य के शिल्प की प्रारम्भिक अर्हता साबित होती है। जहाँ किसी वस्तु का वर्णन लोकसीमा का अतिक्रमण करके, उसके स्वाभाविक रूप से अधिक बढ़ाकर किया जाय वहाँ अतिशयोक्ति होगी।[13] अर्थात् असम्भव को भी जहाँ सम्भव रूप में प्रस्तुत किया जाय वहाँ अतिशयोक्ति होती है। यह कल्पना की चरम सीमा तक पहुँचती है।

काव्य मर्मज्ञों ने अतिशयोक्ति को रसोत्कर्ष का साधन माना है। जहाँ कोई कथन सामान्य लोक व्यवहार से परे (असंभव) होते हुए भी रस युक्त होने के कारण ग्राह्य हो। वहीं अतिशयोक्ति होती है। सुन्दर अतिशयोक्ति के लिए कवि के पास अच्छी कल्पना शक्ति होनी आवश्यक है।

कल्पना शब्द की व्युत्पत्ति– "क्लृप" धातु में **ल्युट** प्रत्यय लगाने पर होती है। जिसका अर्थ है– रचना करना, निर्माण करना, व्यवस्थित करना, मानसिक सृजन आदि।[14] अर्थात् कल्पना कवि के मन के भीतर स्थित सृजन शक्ति है जो कवि के अनुभवों को इकट्ठा करके उनसे भव्य शब्द–दृश्यों की रचना करती है। प्राचीन आचार्यों ने कवि के भीतर प्रतिभा, शक्ति, या विभावना (संभावना) अथवा उत्प्रेक्षा आदि के अर्थ में इसका परिचय कराया है।

आचार्य मम्मट के अनुसार– "कवित्व हेतुर्भूतः विशेषो बुद्धि वृत्तिः प्रतिभा।"अर्थात् कवित्व की हेतु (कारक) कहलाने वाली विशेष बुद्धि ही प्रतिभा(कल्पना) है।

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार यह उत्प्रेक्षा है–"यत्र वस्तुनि अन्यधर्म कल्पना" (जहाँ किसी वस्तु में अन्य वस्तु के गुणों की कल्पना की जाय)

"कवेरभिप्राय विशेषजन्या अर्थ कल्पना।"–– "कवित्व शक्ति,विभावना।" (कवि के विशेष अभिप्राय से उत्पन्न अर्थ रचना ही विभावना (कल्पना) है।)

–"असंभवस्यापि काव्ये सम्भावना कल्पनया क्रियते।"(असंभव के भी संभव होने की शक्ति काव्य में कल्पना से आती है।)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अलंकार मात्र को (अतिशयोक्ति को भी)भाव की तीव्रता का स्वाभाविक परिणाम माना है।[15] और कल्पना को इस अनुभूति को रूप प्रदान करने वाली विधायिका शक्ति।[16] जिसमें अनुभव, स्मृति, संवेदना और बुद्धि कौशल सम्मिलित होता है।

उपर्युक्त का सार है कि कल्पना असंभव को संभव बनाने वाली मानसिक शक्ति है और अतिशयोक्ति इस शक्ति का भाषिक विस्तार। यह अतिशयोक्ति कृत्रिम अतिरंजना नहीं बल्कि कथन का सौन्दर्यवर्धक कलात्मक रूप है।

प्रेमचन्द ने कहा है कि कला का उद्देश्य सत्य का चित्रण करना नही है बल्कि उसे प्रभावपूर्ण बनाना है।[17] कोई वस्तु बहुत सुन्दर होने पर भी अरुचिकर हो जाती है जब तक कि उस में कुछ नवीनता न लायी जाय।[18] मनुष्य की सहानुभूति साधारण स्थिति में तब तक जागरित नही होती, जब तक कि उसके लिए उसपर विशेष रुप से आघात न किया जाय। हमारे हृदय के अन्तरतम भाव साधारण दशाओं में आन्दोलित नही होते। इसके लिए ऐसी घटनाओं की कल्पना करनी होती है। जो हमारा दिल हिला दें, जो हमारे भावों की गहराई तक पहुँच जायें![19]"

कवि की बहुवस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा उसकी निरीक्षण क्षमता को निखारती है। भावुकता अनुभूतियों में बल भरती है। और उसकी निरीक्षण क्षमता उसको शब्दकोश का, दृश्य वर्णन क्षमता का धनी बनाती है। दृ श्यों में रमने वाली कवि दृष्टि कविता में अलंकृति और बिम्ब विधान की सजगता स्वतः विकसित कर लेती है।

अतिशयोक्ति की कला का सबसे प्रमुख प्रेरक आधार प्रकृति का विस्तृत प्रांगण है। यह प्रकृति के विशाल प्रसार में उपमानों को चुनकर अपनी सार्थकता पा लेती है। कृत्रिम श्रृंगार और आभरणों से इसका प्रकृत रूप नहीं खिल पाता। जैसे कालिदास ने लिखा है "संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ "(चलती हुई दीपशिखा की भाँति)[20] यद्यपि चलने वाली दीपशिखा नही होती। फिर भी कवि ने उसे उक्ति में साक्षात् किया है। और भी उक्तियाँ जैसे– "शकुंतला का रूप चन्द्रमा से रचा जाना।" "फूल से भी अधिक सुन्दर देह" "सूर्य के रथ को रोक लेने की क्षमता" "बादलों को दूत बनाकर भेज देना" इत्यादि उदाहरण ऐसे हैं जिसमें कवि ने अतिशयता के लिए प्रकृति के अंगीभूत घटकों का अधिक उपयोग किया है। प्रकृति का यही व्यापक प्रसार "अतिशयोक्ति" के भीतर छिपे "अतिशय" का समीचीन लक्षण है।

अतिशयोक्ति को जिस तरह सामान्य लोक जन झूठ या अवैधता वाली उक्ति मानकर प्रचारित करते हैं। उस तरह से कोई कवि, वचन–कला–कौशल से युक्त विद्वान या सभा चतुर वाग्विदग्ध कभी नहीं कर सकता। अतिशयोक्ति कोई गप्प, झूठ, या अवास्तविक उक्ति मात्र नहीं। बल्कि उपमेय और उपमान के लोकोत्तर सम्बन्ध से उपजी वाणी की एक अद्भुत शिल्पकला है। यह कवि के शब्दों की चित्रकारी है।

अतिशयोक्ति पूर्ण कथन का अभ्यास अथवा कल्पना की छोटी छोटी उड़ानों का प्रयत्न मात्र ही किसी बालक की शुरुआती उम्र में कवित्व प्रतिभा सम्पन्न होने का लक्षण माना जाता है। अधिकांश कवि अपनी प्रारम्भिक कविताओं में या तो छोटी छोटी अतिशयोक्तियों का कौशल दिखाते या अनगढ़ कल्पनाओं की उड़ान का प्रयत्न करते देखे गये हैं। आधुनिक कविता के महत्वपूर्ण कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी बाल्यावस्था में एक दोहा बनाकर अपने पिता से कवि होने का स्नेहाशीष पाया था। वह दोहा है– "ले ब्यौड़ा ठाढ़े भये श्री अनिरुद्ध सुजान/बाणासुर की सेन को हनन लगे भगवान।।"[21] इसमें ब्यौड़ा जैसे छोटे काष्ठ दण्ड से बाणासुर जैसे महामायावी और शक्तिशाली असुर की सेना का संहार करने की बालकल्पना में वही प्रारम्भिक प्रतिभा दिखती है जो कथन को कल्पना या अतिशयोक्ति का नमूना बनाने में सार्थक हो रही है।

ऐसे ही महाकवि बाणभट्ट के पुत्र की भी कथा है। जब वे अपनी अधूरी रचना को पूरी करने का दायित्व अपने पुत्रों को सौंप रहे थे तो उन्होंने उनसे "सामने के ठूँठ वृक्ष " का वर्णन करने को कहा। जिसमें एक पुत्र ने –"शुष्कः काष्ठः तिष्ठति अग्रे" कहा और दूसरे ने "नीरस तरुरिह विलसति पुरतः"। इस पर दूसरे पुत्र की वाक्य रचना में बाण ने अपने अधूरी रचना को पूरा करन वाले कवि का आश्वासन पाया था।[22]

पुराने विद्वान ये मानते रहे हैं कि साधारण शब्दों में कवित्व नहीं होता। शब्दों की प्रभावशीलता बढ़ाने, बिम्ब को साक्षात् खड़ा करने में अतिशयोक्ति पूर्ण कल्पना अर्थ का सुन्दर विस्तारक बन जाती है। एवं उस कवि के रचनात्मकता की कसौटी भी। प्रेमचन्द ने भी कहा है कि साधारण शब्दों से हमारी भावना प्रेरित नही होती।[23]

संस्कृत काव्यों से लेकर हिन्दी कविता तक समस्यापूर्तियों की परम्परा इसी तरह के कवि कौशल का एक रचनात्मक परीक्षण हुआ करती थी। बहुत से कवियों की आरम्भिक काव्य प्रतिभा समस्यापूर्तियों से ही पहचान में आयी थी। समस्यापूर्ति के द्वारा कविता के मार्ग पर चलने वाले कवि हृदय की कल्पनाशीलता और उनकी उक्ति में व्यापक निरीक्षण क्षमता का पता लगाया जाता था।

कालिदास के जीवन से जुड़ी समस्यापूर्तियों ने हिन्दी कवियों का ध्यान भी इस कौशल की ओर आकृष्ट कराया है। एक बार कालिदास सिंहल द्वीप (लंका) में भ्रमण कर रहे थे। उन्होने किसी दासी के भवन की दीवार पर लिखा देखा– "कमले कमलोत्पत्ति श्रूयते न तु दृश्यते।" (कमल में कमल की उत्पत्ति सुनी गयी है लेकिन देखी नही गयी।) इस पंक्ति को पढ़ते ही कालिदास ने इसके पास दूसरी पंक्ति लिखी– "बाले! तव मुखाम्भोजे कथमिन्दीवरद्वयम्।" (बाले! तेरे मुखकमल पर ये दो–दो नेत्रकमल कैसे शोभित हैं)।[24] समस्यापूर्तियाँ कवि की भाषिक क्षमता और आशुबुद्धि के सुन्दर समन्वय का परिचय देती हैं।

हिन्दी के आधुनिक काल के कवियों में भी समस्यापूर्ति के प्रति गहरा लगाव देखनेको मिलता है– भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की, अम्बिकादत्त व्यास की, प्रतापनारायण मिश्र की समस्यापूर्तियाँ इस का अच्छा उदाहरण हैं। जिसमें कवि ने कल्पना के सहारे उक्ति में अतिशयता का समावेश कर काव्य सौन्दर्य को निखरे रूप में प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार से कवि की भाषा कितनी सक्षम है इसका सुन्दर निदर्शन अतिशयोक्ति पूर्ण कथन के भीतर देखने को मिलता है। जहाँ यह कवि के प्राकृतिक निरीक्षण शक्ति को प्रकट करती है वहाँ अपने सुन्दर रूप में आती है। जहाँ वस्तु वर्णन में घिर कर अत्युक्ति मात्र बन जाती है वहाँ अपना सौन्दर्य खोकर जड़ हो जाती है।

मध्यकाल अथवा रीतिकाल से लेकर छायावाद तक इस कला का विकास स्थूल से सूक्ष्म की ओर चलता दिखाई देता है। जहाँ पहले यह कवि के भाषिक कौशल के रूप में दृश्य वर्णनों का विस्तार दिखाया करती थी वहीं आगे चलकर अनुभूति की मार्मिकता के रूप में ढलने लगी।

मध्यकालीन कवि गंग का एक कवित्त है–
"बैठी थी सखिन संग पिय को गवन सुन्यौ, सुख के समूह में वियोग आगि भरकी।
गंग कहैं त्रिविध सुगंध कै पवन बह्यो, लागत ही ता के तन भ ई बिथा जर की।
प्यारी को परसि पौन गयो मानसर कहँ, लागत ही औरे गति भ ई मानसर की
जलचर जरे और सेवार जरि छार भयो, तल जरि गयो पंक सूख्यो भूमि दरकी।।"[25]

(वियोगिन के शरीर से स्पर्श होकर जो पवन चला वह इतना गर्म हो गया कि जैसे ग्रीष्म की तप्त लू। उसके स्पर्श से मानसर के भूतल का पानी–पंक सूख गया। शैवाल जल के राख हो गये। जमीन दरक गयी। वियोग के समीर से ये परिस्थिति उत्पन्न होने में भले सत्य की संगति न बैठे, शब्दार्थ का यथार्थ चाहे न घटित हो रहा हो। किन्तु कवि का निरीक्षण यथार्थ है। ग्रीष्म के ये दृश्य सुलभ हैं। कारण और कार्य में अतिशयता हो भले। किन्तु यह जमीन दरकने का दृश्य प्रकृति के प्रांगण में कवि ने सूक्ष्म दृष्टि से देखा है यह स्पष्ट दिख रहा।

ऐसे ही रहीमदास का एक छप्पय है–

"चकित भँवर रहि गयो गमन नहि करत कमल वन,
अहिफन मनि नहि लेत तेज नहि बहत सघन बन।
....
खलभलित सेस कवि गंग भन अमित तेज रवि रथ खस्यो।
खानान खान बैरम सुवन जबहिं क्रोध करि तंग कस्यो।[26]

इन पंक्तियों की अतिशयोक्ति आत्मीयता, प्रीति, मैत्री प्रेमपूर्ण सम्बन्धों में स्नेहिल हास्य एवं ब्याजस्तुति का सरस साधन बन गयी है। कवि की बानी में अघटित घटनाएँ घट रही। प्रकृति में परिवर्तनजन्य प्रभाव डालने की क्षमता वाला शौर्य और वीरता का वर्णन किया जा रहा। रहीम जैसे महाकवि, उदार और सुहृद मित्र की मात्र प्रीतिजन्य प्रशंसा के लिए, शुभकामनाओं की अभिव्यक्ति में कवित्व का यह प्रयोग अपनी काव्यात्मक भूमिका का निर्वाह करता दिखाई पड़ रहा।

काव्य की रीति का परिपालन करने के साथ ही लोकजीवन का अनुभव भी रीतिकाल की कवित्व परिपाटी का प्रधान लक्षण है। इन कवियों ने लोक जीवन के अनुभव को अन्योक्ति और अतिशयोक्ति में ढालकर काव्यभाषा की सामर्थ्य से जीवन की समीक्षा भी की है। यही कारण है कि अंग्रेजी में Satire (सटायर) की तरह हिन्दी में 'उपहासकाव्य' में अतिशयोक्ति का मनोरंजक प्रयोग किया गया है। बेनीबंदीजन के भड़ौवे रीतिकाल में बहुत लोकप्रिय रहे। उपहार में छोटे छोटे आम भेजने वाले किसी साहु की कंजूसी पर कटाक्ष करते हुए इन्होंने उसकी अच्छी खबर ली है–

"चींटी को चलावै को? मसा के मुख आपु जाय, स्वास को पवन लागे कोसन भगत है।
ऐनक लगाये मरु मरु के निहारे जात, अनु परमानु की समानता खगत है।
बेनी कवि कहै हाल कहाँ लौ बखान करौं, मेरी जान ब्रह्म को बिचारिबो सुगत है।
ऐसो आम दीन्हें दयाराम मन मोद करि, जाके आगे सरसों सुमेरु सो लगत है।।[27]

अतिशयोक्ति हास्य से लेकर करुण तक सभी भावों के उत्कर्ष का सहज उपकरण बन सकता है। इतना बहुमुखी काव्यांग शायद ही कोई और हो। व्यंग्य और विडम्बना से लेकर प्रशंसा और आलोचना तक इसके लक्ष्य हो सकते हैं। कल्पना की समाहार शक्ति और भाषा की समाहार शक्ति जिसकी अधिक होती है। वह उतना सफल मुक्तक कवि होता है।

भारतेन्दु की कृति– "अन्धेर नगरी, चौपट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा।।" एक काल्पनिक व्यंग्य ही है। एक अतिशयोक्ति पूर्ण बिम्ब की कल्पना करता हुआ सजग कवि राजदरबार के बहाने शासन व्यवस्था की विकट विमूढ़ता का रूपक खड़ा करता है। पाठक/श्रोता/दर्शक को यह महसूस करा देना कि यथार्थ में ऐसा होना भले मुश्किल हो फिर भी ऐसा ही कुछ होता दिख रहा है। कवि की विदग्धता का सच्चा प्रमाण है।

अम्बिकादत्तव्यास की– "पूरी अमी की कटोरिया सी चिरजीवौ अरी विक्टोरिया रानी।।"[28] में "अमी की कटोरिया" एक अतिशयतापूर्ण कथन है। जिसमें विक्टोरिया और कटोरिया का तुक साम्य और हास्य और प्रशंसा का रूपक एक साथ गठित हुआ है।

शार्ङ्गधर के हम्मीर रासों में जैसे वीर हम्मीर की वीरोचित महिमा गायी गयी है–

"चलत वीर हम्मीर पाअभर मेइणि कंप इ, दिगमगणह अंधार धूलि सुररह आच्छाइहि।।"[29]

हम्मीर के चलने से धरती काँपती है। दिशाओं में अंधकार छा जाता है, उसके सेना की पगधूलि से आकाश ढँक जाता है। कवि की भावना सच्चे वीर की प्रशंसा में अतिशयोक्ति की सीमा का विस्तार धरती से आकाश तक कर लेती है।

इसी तरह भूषण की कविता में भी वीर रस की अतिशयोक्तियाँ इतनी अच्छी बन पड़ी हैं। कि वे सहृदय राष्ट्रप्रेमी को सच्ची सी लगने लगती हैं।–

"इन्द्र निज हेरत फिरत गजेन्द्र अरु, इन्द्र को अनुज हेरैं दुगधनदीश कौं।
भूषण भनत सुरसरिता को हंस हेरैं, विधि हेरैं हंस को चकोर रजनीश कौं।
साहि तनै सिवराज करनी करी है तैं जु होत है अचम्भो देव कोटि तैंतीस कौं।
पावत न हेरे तेरे जस में हिराने निज गिरि को गिरीश हेरैं गिरिजा गिरीश कौं।।"[30]

शिवाजी के जस के धवल प्रभाव में समस्त धवल चीजों जैसे– दुग्ध सागर, हंस, चन्द्रमा, हिमालय और कर्पूरगौरं शिव का हिरा जाना और कवि का सबको एक ही क्रमिक लड़ी में गूँथ देना काव्य की भाषिक क्षमता का अतिक्रमण कर गया है। कवि के कल्पना की विशिष्टता और अतिशयोक्ति का अनूठापन सहृदयों को सहज ही मुग्ध कर लेता है।

सौन्दर्य और शृंगार की अतिशयोक्तियाँ कविवर बिहारी के यहाँ खूब देखी जा सकती हैं–

"पत्रा ही तिथि पाइये वा घर के चहुँ पास। ।
नितप्रति पून्यौई ही रहत आनन ओप उजास।।"[31]

–नायिका के घर के आसपास पंचांग से ही तिथि का निर्णय हो पाता है। क्योंकि कमनीय मुख का उजाला इतना अधिक है कि पूर्णिमा के चाँद जितना प्रकाश हमेशा रहता है।

आलम की वियोगात्मक अभिव्यक्ति में– "नैनन में नित जो रहते तिन की अब कान कहानी सुनौ करे।।× × " केधौं मोर सोर तजि गये री अनत भाजि/केधौं उत दादुर न बोलत हैं ए द ई।।"[32] एवं घनानन्द की– "बहुत दिनान की अवधि आसपास परे/खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान को/''अधर लगे हैं आनि करि के पयान प्रान/चाहत चलन ये संदेशो लै सुजान को।।[33]" इत्यादि उक्तियों कल्पना में "रूप का स्मरण" एवं "प्राणों का मानवीकरण" करते हुए कल्पना की सुन्दर रचनात्मकता का मर्मस्पर्शी नमूना प्रस्तुत किया गया है।

आधुनिक कविता में छायावादी कवियों ने कल्पना की शक्ति का बहुत सूक्ष्म और भावमय उपयोग किया है। यहाँ आकर अतिशयोक्ति मात्र अभिव्यक्ति का कौशल न रही बल्कि अनूभूति की गहराई और मार्मिकता की उद्‌भाविका हो गयी। जयशंकर प्रसाद की कविताओं मे इसका निदर्शन बड़ी मात्रा में मिलता है– '"चंचला स्नान कर आवै चन्द्रिका पर्व में जैसी। उस पावन तन की शोभा आलोक मधुर थी ऐसी।।"[34] बिजली का चाँदनी में स्नान करके आना। उत्प्रेक्षा कल्पना का चरम सौन्दर्य है। तन की शोभा का ऐसा मानवीकरण कवि की कल्पना का मनोहर रूप दिखाता है। रीतिकाल में जिस करुण रस की अभिव्यक्ति अधिकतर विरह व्यथा के उदगार तक सीमित थी। छायावाद तक आते आते वह सामाजिक और व्यक्तिगत दुख और मानवता की व्यापक पीड़ा से जुड़ गया।

महादेवी वर्मा ने– "विरह का जलजात जीवन विरह का जलजात/वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास।"[35] कहकर सूचित किया कि विरह का खिला कमल,जिसका जन्म ही वेदना में हुआ हो और जिसका रहना करुणा में हो रहा हो। उसके आसपास दुख का कितना विराट तानाबाना होगा इसकी कल्पना नही की जा सकती। यह अतिशयोक्ति कल्पना से भावना का विस्तार दिखाती है। अनूभूति को सघन करती है। जीवन की सुदीर्घ समयावधि को –'कल और आज' में समेट लेना, इस विशेष भाषिक कौशल की ही क्षमता है– "परिचय इतना इतिहास यही, उमड़ी कल थी मिट आज चली।/मै नीर भरी दुख की बदली।"

यद्यपि अतिशयोक्ति की कला और कल्पना की शक्ति कवि मात्र की नैसर्गिक योग्यता होती है। हर युग, हर काल में इससे कवि प्रतिभा की प्रारम्भिक विशेषताओं की पहचान की जाती रही है।तथापि रीतिकाल से लेकर छायावाद तक का कालखण्ड इस कला के विकास के लिये विशेष अनुकूल प्रतीत होता है। इस कालखण्ड में देशकाल की परिस्थितियाँ, काव्य का वातावरण, उसके बदलते उद्देश्य, और आलम्बनों की

अनेकविध आवश्यकताएँ इन्हें प्राथमिक कवि वृत्ति अथवा कौशल माने जाने के लिये अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त पायी गयी।

संदर्भ–सूची :–

1. "मृदुललितपदाढ्यं गूढ़शब्दार्थहीनं जनपद सुखबोध्यं युक्तिमन्नृत्ययोज्यम्"–– भरत मुनि, काव्यशास्त्र, डॉ.भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, सं०–2010 ई०, पृष्ठ–6
2. "शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्"–भामह, वहीं, पृष्ठ –6
3. "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"–विश्वनाथ, वहीं, पृष्ठ–9
4. "रमणीयार्थः प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्"––पं. जगन्नाथ, वहीं पृष्ठ–10
5. Spontaneous Overflow of Powerful Feelings–Wordsworth, वहीं पृष्ठ– 12
6. कविता की भाषा– कविता क्या है!––चिन्तामणि, रामचन्द्र शुक्ल, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, सं०–1991 ई०, पृष्ठ– 120
7. "काव्य और व्यवहार"––कविता क्या है ! चिन्तामणि––रामचन्द्र शुक्ल,वहीं, पृष्ठ–109
8. वहीं, पृष्ठ– 97
9. काव्यशास्त्र, डॉ.भगीरथ मिश्र,विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, सं०–2010, पृष्ठ–17
10. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा हिन्दी आलोचना– डॉ. रामचन्द्र तिवारी, संजय बुक सेन्टर, गोलघर वाराणसी, सं०–2000 ई० पृष्ठ––23
11. "प्रक्षेप्य का पथ परवलयाकर होता है। "––नूतन माध्यमिक भौतिकी, भाग–1, जी एल मित्तल,नगीन प्रकाशन प्रा०लि० वैस्टर्न कचहरी रोड मेरठ, सं०–2009, पृष्ठ–69–70
12. संस्कृत हिन्दी कोश–वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास, जवाहर नगर, न ई दिल्ली, सं०– 1966, पृष्ठ– 19
13. काव्यशास्त्र, डॉ. भगीरथ मिश्र,विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, सं०–2010, पृष्ठ–173
14. लघु सिद्धान्त कौमुदी, उत्तर कृदन्त प्रकरण,भैमी व्याख्या,भीमसेन शास्त्री,भैमी प्रकाशन लाजपत नगर दिल्ली, सं०–2008, पृष्ठ 237
15. अलंकार–कविता क्या है!––चिन्तामणि, रामचन्द्र शुक्ल, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, सं०–1991 ई०, पृष्ठदृ 124
16. भावना या कल्पना वहीं, पृष्ठ–111
17. "काव्य और साहित्य का उद्देश्य हमारी अनुभूतियों की तीव्रता को बढ़ाना है"–प्रेमचन्द : कुछ विचार, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं०–2011, पृष्ठ –7
18. वही पृष्ठ –34
19. वही पृष्ठ –64
20. रघुवंश, षष्ठ सर्ग, श्लोक 67, कालिदास ग्रन्थावली– रेवा प्रसाद द्विवेदी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रकाशन, सं०–1986, पृष्ठ––194
21. भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी का सचित्र जीवन चरित्र– श्री राधाकृष्ण दास, तारा प्रकाशन बनारस, सं०–1960 वि०(190४ई०), पृष्ठ––47
22. संस्कृत सुकवि समीक्षा– बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, सं०–2015, पृष्ठ 265
23. प्रेमचन्द : कुछ विचार, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं०–2011, पृष्ठ–64
24. संस्कृत सुकवि समीक्षा– बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, सं०–2015, पृष्ठ –64
25. गंग, भक्तिकाल, हिन्दी साहित्य का इतिहास,––रामचन्द्र शुक्ल, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, सं०–2013, पृष्ठ 131
26. रहीम भक्तिकाल, हिन्दी साहित्य का इतिहास,– रामचन्द्र शुक्ल, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, सं०–2013, पृष्ठ 131
27. बेनी बंदीजन, रीतिकाल प्रकरण–2, हिन्दी साहित्य का इतिहास,–रामचन्द्र शुक्ल, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, सं०–2013, पृष्ठ–195
28. भारतेन्दु युग, हिन्दी साहित्य का इतिहास, संपा०–डॉ नगेन्द्र, एवं हरदयाल, मयूर पेपर बैक्स इंदिरापुरम, सं०–2016, पृष्ठ –447।
29. आदिकाल, प्रकरण–1 पृष्ठ –2, हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, सं०–2013।
30. https://kavitakosh.org//kk/%E0%A4%87%E0%A4%82%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%B0_%E0%A4%A8%E0%A4%BF%E0%A4%9C_%E0%A4%B9%E0%A5%87%E0%A4%B0%E0%A4%A4_%E0%A4%AB%E0%A4%BF%E0%A4%B0%E0%A4%A4_%E0%A4%97%E0%A4%9C_%E0%A4%87%E0%A4%82%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%B0_%E0%A4%85%E0%A4%B0%E0%A5%81_/%E0%A4%AD%E0%A5%82%E0%A4%B7%E0%A4%A3
31. रीति काव्यधारा, डॉ. रामचन्द्र तिवारी, विश्विद्यालय प्रकाशन वाराणसी, सं०–2013 ई०, पृष्ठ–46
32. वहीं, पृष्ठ–137।
33. वहीं पृष्ठ–156।
34. आँसू – जयशंकर प्रसाद।
35. यामा– महादेवी वर्मा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं०–2006 पृष्ठ–92।
36. वहीं, पृष्ठ–129।

೨★೧

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2023 के परिप्रेक्ष्य में कक्षा 6 की हिंदी पाठ्यपुस्तक 'मल्हार' की पाठ्यचर्या डिजाइन और शिक्षण-अधिगम प्रक्रियाओं का विश्लेषण

डॉ. सर्वेश मौर्य*

सारांश :– यह शोध आलेख राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2023 के संदर्भ में कक्षा 6 की हिंदी पाठ्यपुस्तक 'मल्हार' का गहन अध्ययन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह अध्ययन विश्लेषण पाठ्यपुस्तक की पाठ्यचर्या डिजाइन, शिक्षण–अधिगम प्रक्रियाओं, मूल्यांकन रणनीतियों और समावेशी दृष्टिकोण की जांच करता है। मुख्य निष्कर्ष दर्शाते हैं कि 'मल्हार' पाठ्यपुस्तक राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 व राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2023 के साथ पूर्ण संरेखण में है और समग्र विकास के सिद्धांतों को प्रभावी रूप से कार्यान्वित करती है। पुस्तक में दस प्रकार की विविध गतिविधियां, बहुभाषिकता, समावेशन, और भारतीय ज्ञान परंपरा का गहरा समावेश है। यह आलेख शिक्षकों, पाठ्यचर्या विशेषज्ञों, नीति निर्माताओं और शैक्षणिक शोधकर्ताओं के लिए मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करेगा।

मुख्य शब्द :– पाठ्यचर्या डिजाइन, बहुभाषिकता, समावेशी शिक्षा, शिक्षण–अधिगम प्रक्रियाएं, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2023, भारतीय ज्ञान परंपरा।

1. प्रस्तावना :– भारतीय शिक्षा प्रणाली में 2020 एक ऐतिहासिक वर्ष था जब राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को मंजूरी दी गई। यह नीति 1986 के बाद भारतीय शिक्षा में सबसे महत्वपूर्ण सुधार थी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का मूल दर्शन भारत को ज्ञान शक्ति के रूप में स्थापित करना था, जबकि 'भारत को केंद्र में रखते हुए' सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों को बनाए रखा जाए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के कार्यान्वयन के लिए, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2023 का विकास किया। इस व्यापक संदर्भ में, कक्षा 6 की हिंदी पाठ्यपुस्तक 'मल्हार' एक महत्वपूर्ण पाठ्यचर्या संसाधन है। यह शोध आलेख निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर देता है:

1. क्या 'मल्हार' पाठ्यपुस्तक राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 व राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2023 के मूल सिद्धांतों को प्रतिफलित करती है?
2. पाठ्यपुस्तक की पाठ्यचर्या डिजाइन कितनी प्रभावी है?
3. शिक्षण–अधिगम प्रक्रियाएं कितनी समावेशी और विविधतापूर्ण हैं?
4. मूल्यांकन रणनीति कितनी रचनात्मक और विकासशील है?

2. अनुसंधान विधि

2.2 अनुसंधान का प्रकार और डिजाइन :– यह अनुसंधान गुणात्मक (Qualitative) प्रकृति का है और दस्तावेज विश्लेषण (Document Analysis) पद्धति का उपयोग करता है। शोधकर्ता ने 'मल्हार' पाठ्यपुस्तक का गहराई से अध्ययन किया है और निम्नलिखित विश्लेषणात्मक मानदंडों का उपयोग किया है:

- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के सिद्धांतों के साथ संरेखण
- NCF 2023 की अनुशंसाओं का कार्यान्वयन
- पाठ्यचर्या डिजाइन की प्रभावशीलता

***असिस्टेंट प्रोफेसर, समाज विज्ञान और मानविकी शिक्षा विभाग, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान ,एनसीईआरटी, भुवनेश्वर–751022**

- शिक्षण–अधिगम प्रक्रियाओं की विविधता
- समावेशी और सुलभ डिजाइन
- मूल्यांकन की रचनात्मक प्रकृति

2.3 डेटा संग्रह और विश्लेषण :– अनुसंधान के लिए डेटा संग्रह के स्रोत इस प्रकार हैं–

- 'मल्हार' पाठ्यपुस्तक का सम्पूर्ण पाठ
- पाठ्यपुस्तक के साथ प्रकाशित पाठ्यचर्या दस्तावेज और शिक्षण निर्देश
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 व राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2023 के आधिकारिक दस्तावेज
- एनसीईआरटी के पाठ्यचर्या विकास के सिद्धांत

विश्लेषण की प्रक्रिया विषय–वस्तु विश्लेषण (Content Analysis) और तुलनात्मक विश्लेषण (Comparative Analysis) के माध्यम से की गई है।

3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के साथ संरेखण

3.1 भारतीय ज्ञान परंपरा का समावेश :– राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अनुशंसाओं में से एक यह है कि भारतीय सभ्यता, संस्कृति और ज्ञान परंपरा को शिक्षा के केंद्र में प्रतिष्ठित किया जाए। नीति स्पष्ट रूप से कहती है कि शिक्षा को ''भारतीय होना चाहिए – अर्थात् वह भारतीय परिवेश, परंपरा, संस्कृति और मूल्यों में गहराई से निहित हो।'' एनसीईआरटी द्वारा माध्यमिक कक्षाओं के लिए निर्मित हिंदी पाठ्यपुस्तक 'मल्हार' इस दृष्टि को विभिन्न स्तरों पर साकार करती है।

3.1.1 साहित्यिक विषय–वस्तु' :– मल्हार' में संकलित रचनाएं भारतीय साहित्य की सुदीर्घ और समृद्ध परंपरा का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस पाठ्यपुस्तक में प्राचीन काल से लेकर समकालीन लेखन तक की विविध विधाओंय कविता, कहानी, निबंध, संस्मरण, नाटक अदि को स्थान दिया गया है। इन रचनाओं में निम्नलिखित मूल्य और विचार प्रतिफलित होते हैं–

3.1.1.1 देशप्रेम और राष्ट्रीय चेतनाः पाठ्यपुस्तक में सम्मिलित रचनाएं छात्रों में राष्ट्रीय गौरव और नागरिक उत्तरदायित्व की भावना जागृत करती हैं। स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े प्रसंग, देश की धरती से जुड़ाव और सामाजिक दायित्व की अभिव्यक्ति इन रचनाओं को राष्ट्रीय चेतना का वाहक बनाती है।

3.1.1.2 सामाजिक मूल्य और नैतिकताः पाठों में ईमानदारी, परिश्रम, करुणा, सहिष्णुता और न्यायप्रियता जैसे सार्वभौमिक मूल्यों को आख्यानात्मक और काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिससे नैतिक शिक्षा प्रत्यक्ष उपदेश के बजाय अनुभव और अनुभूति के माध्यम से संप्रेषित होती है।

3.1.1.3 प्रकृति से जुड़ावः भारतीय साहित्य में प्रकृति केवल पार्श्वभूमि नहीं, बल्कि एक जीवंत सत्ता है। 'मल्हार' में प्रकृति–वर्णन की जो रचनाएं हैं, वे छात्रों को पर्यावरण के प्रति संवेदनशील बनाती हैं तथा मनुष्य और प्रकृति के पारस्परिक संबंध को रेखांकित करती हैं।

3.1.1.4 भारतीय दर्शन और चिंतनः 'मल्हार' में संकलित अनेक रचनाओं में वेदांत, बौद्ध दर्शन, भक्ति परंपरा और लोक–ज्ञान की झलक मिलती है। ये रचनाएं छात्रों को भारतीय चिंतन की गहराई से परिचित कराती हैं।

3.1.2 सांस्कृतिक विविधता :– 'मल्हार' में 'विविधता में एकता' के भारतीय आदर्श को बड़े सुचिंतित ढंग से प्रस्तुत किया गया है। पाठ्यपुस्तक केवल किसी एक क्षेत्र या वर्ग के अनुभव का प्रतिनिधित्व नहीं करती, बल्कि उसमें भारत के विविध भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश की बहुलता दृष्टिगोचर होती है। कुछ उदाहरण नीचे दिए गए हैं–

3.1.2.1 लेखकों की विविधता : पुस्तक में उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम– सभी क्षेत्रों के लेखकों की रचनाएं सम्मिलित हैं। विभिन्न जातीय, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के लेखकों की उपस्थिति यह सुनिश्चित करती है कि कोई भी छात्र स्वयं को पाठ्यक्रम से अलग–थलग न महसूस करे। उदाहरण– रहीम के दोहे–

अब्दुर्रहीम खानखाना, पेड़ की बात– जगदीशचंद्र बसु, सत्रिया और बिहू नृत्य– जया मेहता, गोल– मेजर ध्यानचंद

3.1.2.2 लोककलाओं और परंपराओं का समावेश : भारतीय संगीत, नृत्य, चित्रकला, हस्तशिल्प और स्थापत्य कला से संबंधित सामग्री पाठ्यपुस्तक में यत्र–तत्र विद्यमान है। इससे छात्रों को यह बोध होता है कि ज्ञान केवल पुस्तकों में नहीं, बल्कि कला और लोक–जीवन में भी निहित है। उदाहरण– पहली बूंद असम का सुप्रसिद्ध मूंगा सिल्क पृष्ठ 92

3.1.2.3 त्योहारों और परंपराओं का प्रतिनिधित्वः पाठ्यपुस्तक में भारत के विभिन्न पर्वों और परंपराओं का उल्लेख विविधता में एकता की संस्कृति को पुष्ट करता है। यह दृष्टिकोण छात्रों को 'अपरिचित भारत' से परिचित कराता है और सांस्कृतिक सहिष्णुता का संस्कार देता है। उदाहरण– सत्रिया और बिहू नृत्य, जलाते चलो

3.1.3 भारतीय मूल्य प्रणाली :– 'मल्हार' भारत की उस नैतिक और आध्यात्मिक विरासत को पाठ्यक्रम में जीवंत रखती है जो युगों से इस सभ्यता की पहचान रही है।

3.1.3.1 वसुधैव कुटुम्बकम् की भावनाः महोपनिषद् से आई यह संकल्पना – 'संपूर्ण विश्व एक परिवार है' –'मल्हार' में विभिन्न रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। वैश्विक नागरिकता की यह दृष्टि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की उस भावना के अनुरूप है जो भारत को विश्व–मंच पर एक उत्तरदायी और सहयोगी राष्ट्र के रूप में प्रस्तुत करना चाहती है। उदाहारण– मातृभूमि, पुष्प की अभिलाषा (पढ़ने के लिए)

3.1.3.2 पर्यावरण संरक्षणः भारतीय परंपरा में प्रकृति की पूजा और उसके संरक्षण का विचार सदैव केंद्रीय रहा है। 'मल्हार' में पर्यावरण से संबंधित पाठ इस परंपरागत ज्ञान को आधुनिक पर्यावरणीय चिंताओं से जोड़ते हैं। उदाहारण– पेड़ की बात, हिन्द महासागर में छोटा सा हिन्दुस्तान

3.1.3.3 सामुदायिक जीवन–मूल्यः सहकारिता, सेवा–भाव, बड़ों का सम्मान और कमजोरों के प्रति करुणा – ये भारतीय जीवन के आधारभूत मूल्य हैं, जो पाठ्यपुस्तक की रचनाओं में स्वाभाविक रूप से प्रकट होते हैं। उदाहारण– हार की जीत, परीक्षा, मेरी मां, गोल

3.2 समग्र विकास का दर्शन :– राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने शिक्षा की परिकल्पना केवल ज्ञानार्जन तक सीमित न रखकर मानव–विकास के समग्र आयामों को समाहित की है। इसी क्रम में नीति में पंचकोशीय विकास की अवधारणा का उल्लेख किया गया है, जो तैत्तिरीयोपनिषद् की प्राचीन भारतीय दार्शनिक परंपरा से ली गई है। इस मॉडल के अनुसार मानव व्यक्तित्व के पाँच स्तर हैं – अन्नमय कोश (शारीरिक), प्राणमय कोश (प्राणिक/भावनात्मक), मनोमय कोश (मानसिक) विज्ञानमय कोश (बौद्धिक) और आनंदमय कोश (आध्यात्मिक)। 'मल्हार' इन सभी आयामों को शैक्षणिक गतिविधियों और साहित्यिक सामग्री के माध्यम से संबोधित करती है।

विकास का आयाम	पंचकोश में स्थान	'मल्हार' में कार्यान्वयन
शारीरिक विकास	अन्नमय कोश	खेल–संबंधी पाठ, व्यावहारिक गतिविधियाँ, शरीर और स्वास्थ्य की समझ, कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए शारीरिक अभ्यास
भावनात्मक विकास	प्राणमय कोश	भावनाओं को पहचानने और व्यक्त करने वाले पाठ, मानवीय संबंधों की जटिलताओं को संबोधित करने वाली कहानियाँ, सहानुभूति और संवेदनशीलता का विकास
मानसिक विकास	मनोमय कोश	विश्लेषणात्मक प्रश्न, तर्क–आधारित चर्चा, समस्या–समाधान की गतिविधियाँ, आलोचनात्मक चिंतन को प्रोत्साहन
बौद्धिक/सामाजिक विकास	विज्ञानमय कोश	समूह–कार्य, वाद–विवाद, सामाजिक मुद्दों पर विमर्श, सहयोग और नेतृत्व के अवसर
आध्यात्मिक विकास	आनंदमय कोश	नैतिक प्रश्नों पर चिंतन, जीवन–मूल्यों का अन्वेषण, आत्म–साक्षात्कार को प्रेरित करने वाले पाठ

3.2.1 शारीरिक विकास :— शारीरिक विकास को प्रायः पाठ्यपुस्तकों में उपेक्षित किया जाता रहा है, किंतु 'मल्हार' में खेल, लोक—कलाओं और शारीरिक श्रम से जुड़ी रचनाएं इस आयाम को भाषा—शिक्षण से जोड़ती हैं। छात्र भाषायी कौशल के साथ—साथ यह भी सीखते हैं कि शरीर, मन और आत्मा का संतुलन ही स्वस्थ जीवन की नींव है। नाट्य—अभिनय और वाचन जैसी गतिविधियां शारीरिक भाषा और अभिव्यक्ति के प्रति जागरूकता भी बढ़ाती हैं।

3.2.2 भावनात्मक विकास :— भावनात्मक बुद्धिमत्ता (Emotional Intelligence) को राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में महत्त्वपूर्ण जीवन—कौशल के रूप में मान्यता दी गई है। 'मल्हार' में उपस्थित साहित्यिक रचनाएं — विशेषकर कहानियां और कविताएं— छात्रों को विविध भावनात्मक परिस्थितियों से रूबरू कराती हैं। माँ—बेटे का प्रेम, मित्रता की परीक्षा, विफलता से उबरना, अकेलेपन का सामना — ऐसे विषय छात्रों को अपनी और दूसरों की भावनाओं को समझने और सम्मान करने की क्षमता विकसित करने में सहायक होते हैं।

3.2.3 मानसिक और बौद्धिक विकास :— पाठ्यपुस्तक में दी गई अभ्यास—गतिविधियाँ केवल रटंत स्मृति को परखने तक सीमित नहीं हैं। इनमें पाठ की आलोचनात्मक समीक्षा, तुलनात्मक विश्लेषण, कारण—परिणाम की पहचान, और रचनात्मक लेखन जैसे उच्च—स्तरीय चिंतन—कौशल (Higher Order Thinking Skills — HOTS) को प्रोत्साहित करने वाले प्रश्न सम्मिलित हैं। यह दृष्टिकोण राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की उस नीति के अनुरूप है जो रटंत—शिक्षा से हटकर समझ—आधारित और अनुभव—आधारित अधिगम पर बल देती है।

3.2.4 सामाजिक विकास :— समूह—आधारित गतिविधियाँ, परिचर्चाएं, नाट्य—मंचन और सामुदायिक प्रोजेक्ट छात्रों में सहयोग, संवाद और नेतृत्व के गुण विकसित करते हैं। 'मल्हार' सामाजिक जागरूकता के पाठ भी प्रस्तुत करती है— लिंग—समानता, दिव्यांगजन के प्रति संवेदनशीलता, और हाशिए पर खड़े समुदायों की आवाजें— जो एक न्यायपूर्ण और समावेशी समाज के निर्माण में सहायक हैं।

3.2.5 आध्यात्मिक विकास :— यहाँ 'आध्यात्मिक' का अर्थ किसी एक धर्म की शिक्षा नहीं, बल्कि जीवन के गहन प्रश्नों से साक्षात्कार है— 'मैं कौन हूँ?', 'जीवन का उद्देश्य क्या है?', 'सुख और दुख का स्वरूप क्या है?' 'मल्हार' में दार्शनिक और नैतिक आयाम वाली रचनाएं छात्रों को आत्मचिंतन और आत्म—जागरूकता की ओर प्रेरित करती हैं। भक्ति—काव्य, सूफी परंपरा की रचनाएं, और समकालीन आत्मकथात्मक लेखन इस आध्यात्मिक आयाम को जीवंत बनाते हैं। इस प्रकार 'मल्हार' राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के उस व्यापक दृ ष्टिकोण का साकार रूप है जो शिक्षा को एक समग्र, मानवीय और सांस्कृतिक रूप से जीवंत प्रक्रिया के रूप में देखती है — न कि केवल सूचनाओं के हस्तांतरण के माध्यम के रूप में।

3.3 21वीं सदी के कौशलों का विकास :— राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 आलोचनात्मक चिंतन, रचनात्मकता, सहयोग और संचार कौशलों के विकास पर जोर देती है। श्मल्हारश इन सभी कौशलों को विकसित करती है:

- **विश्लेषणात्मक कौशलः** 'मेरी समझ से', 'सोच—विचार के लिए 'जैसी गतिविधियां— पाठ 02 'गोल' में पृष्ठ संख्या 19, पाठ 04 'हार की जीत' में पृष्ठ संख्या 40, पाठ 09 'मैया मैं नहिं माखन खायो' में पृष्ठ संख्या 101, पाठ 10 'परीक्षा' में पृष्ठ संख्या 117
- **रचनात्मक कौशलः** 'साहित्य की रचना', 'आपकी बात' जैसी गतिविधियां— पाठ 03 'पहली बूंद' में पृष्ठ संख्या 30
- **सहयोग कौशलः** समूह—आधारित गतिविधियां, पाठ 01 'मातृभूमि' में पृष्ठ संख्या 01, पाठ 08 'सत्रिया एवं बिहू नृत्य' में पृष्ठ संख्या 84
- **संचार कौशलः** वाचन, श्रवण, पठन और लेखन कौशल— लगभग सभी पाठों में

4. पाठ्यचर्या के लक्ष्य के साथ संगति :— मध्य स्तर पर विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2023 में भाषा के संदर्भ में निम्नलिखित पाठ्यचर्या लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं—

- पाठ्यचर्या लक्ष्य– 1ः वर्णन, विश्लेषण और प्रतिक्रिया के लिए भाषा कौशल का उपयोग करके प्रभावी संप्रेषण की क्षमता का विकास करना।
- पाठ्यचर्या लक्ष्य – 2ः साहित्यिक उपकरणों के विभिन्न रूपों की खोज करके भाषा और भाषा से संबंधित साहित्यिक और सांस्कृतिक विरासत की सराहना करना।
- पाठ्यचर्या लक्ष्य – 3ः बुनियादी भाषाई पहलुओं ;शब्द और वाक्य संरचनाद्ध को पहचानने की योग्यता का विकास करना और उन्हें मौखिक और लिखित अभिव्यक्ति में उपयोग करने की क्षमता का विकास करना।
- पाठ्यचर्या लक्ष्य – 4ः समीक्षा लिखने की क्षमता विकसित करना और संदर्भ खोजने के लिए लाइब्रेरी का उपयोग करना।
- पाठ्यचर्या लक्ष्य – 5ः किसी विशेष भाषा की विशिष्ट विशेषताओं के प्रति समझ विकसित होती है, जिसमें उसकी वर्णमाला और लिपि, ध्वनियाँ, तुकबंदियाँ, शब्द–क्रीड़ा और उस भाषा के लिए अद्वितीय अन्य शब्द–खेल और खेल शामिल हैं।

इन सभी की संगति पुस्तक के साथ दिखाई पड़ती है.

5. पाठ्यचर्या डिजाइन का विश्लेषण

5.1 विषय–वस्तु का चयन और संगठन :– 'मल्हार' में विषय–वस्तु का चयन निम्नलिखित सिद्धांतों पर आधारित हैः

संतुलित प्रतिनिधित्व

- क्षेत्रीय संतुलनः भारत के विभिन्न क्षेत्रों के साहित्य उदहारण– सत्रिया और बिहू नृत्य
- भाषाई विविधताः हिंदी साहित्य की विभिन्न बोलियां और उनका साहित्य
- युगीन संतुलनः प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक युगीन साहित्य
- लिंग संतुलनः पुरुष और महिला लेखकों का समान प्रतिनिधित्व

प्रासंगिकता और जीवन से संबंध :– सभी पाठ कक्षा 6 के विद्यार्थियों के जीवन और अनुभव से जुड़े हैं। विषय–वस्तु केवल सूचनात्मक नहीं है, बल्कि उनके दैनिक जीवन में अनुप्रयोग्य है। जैसे परीक्षा, हार की जीत कहानियां

आयु–उपयुक्तता :– पाठों की भाषा, विचार और जटिलता कक्षा 6 के विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त है। न तो बहुत सरल है न ही बहुत जटिल, जिससे उपयुक्त चुनौती मिलती है। यहाँ आम बोलचाल की उर्दू का निषेध दिखता है जो थोड़ा खटकता है।

5.2 साहित्यिक विधाओं की विविधता :– पाठ्यपुस्तक में साहित्य की विभिन्न विधाएं शामिल हैंः

विधा	विशेषताएं और लाभ
कविता	भाषाई सौंदर्य, भावनात्मक अभिव्यक्ति, संक्षिप्ततता
कहानी	आख्यान कौशल, संरचना की समझ, चरित्र विश्लेषण
संस्मरण	आख्यान कौशल, संरचना की समझ, चरित्र व घटना विश्लेषण
यात्रावृतांत	आख्यान कौशल, सूचनात्मक ज्ञान, संरचना की समझ
निबंध	विचार प्रस्तुति, तार्किक संरचना, सूचनात्मक ज्ञान
आत्मकथा	आख्यान कौशल, संरचना की समझ, चरित्र विश्लेषण
नाटक	संवाद कौशल, अभिनय, सामूहिक प्रस्तुति
पहेली	भाषाई खेल, स्मृति, तार्किक सोच

6. शिक्षण–अधिगम प्रक्रियाएं (Teaching &Learning Processes)

6.1 गतिविधि–केंद्रित शिक्षा :– 'मल्हार' में प्रत्येक पाठ के बाद मुख्यतः 10 प्रकार की गतिविधियां दी गई हैं। ये गतिविधियां–

- सक्रिय सीखने को प्रोत्साहित करती हैं– विद्यार्थी निष्क्रिय श्रोता नहीं हैं
- विविध कौशलों का विकास करती हैं– सोचना, लिखना, बोलना, सुनना
- ज्ञान का निर्माण करती हैं– विद्यार्थी अपना ज्ञान स्वयं बनाते हैं
- आनंददायक अनुभव देती हैं– सीखना रोचक हो जाता है

6.2 दस गतिविधियों का विश्लेषण

6.2.1 मेरी समझ से :– यह गतिविधि समझ का आकलन करती है लेकिन सीखने का साधन भी है। 2–3 बहुविकल्पी प्रश्न दिए जाते हैं। विशेषता यह है कि विद्यार्थियों को अपने उत्तर के कारण देने होते हैं, जिससे वाद–विवाद और तार्किक चिंतन विकसित होता है।

शैक्षणिक मूल्यः समझ, तार्किक चिंतन, वाचन कौशल, श्रवण कौशल

6.2.2 मिलकर करें मिलान :– पाठ में आए महत्वपूर्ण संदर्भों को उनके अर्थ से मिलाने की गतिविधि। यह शब्दकोश कौशल विकसित करती है और गहन पठन को प्रोत्साहित करती है। विद्यार्थी स्वयं, शिक्षकों, माता–पिता या इंटरनेट की सहायता ले सकते हैं।

शैक्षणिक मूल्यः शब्दकोश कौशल, संदर्भ समझ, स्वतंत्र अधिगम, सहयोग

6.2.3 पंक्तियों पर चर्चा :– पाठ की महत्वपूर्ण पंक्तियों पर समूह चर्चा। विद्यार्थी सुनते हैं, विचार करते हैं और अपने विचार लिखते हैं। यह चार भाषाई कौशल (श्रवण, वाचन, पठन, लेखन) का समन्वय है।

शैक्षणिक मूल्यः गहन पठन, समूह संचार, विचार अभिव्यक्ति, चारों भाषाई कौशल

6.2.4 सोच–विचार के लिए :– विद्यार्थियों को पाठ पर आधारित प्रश्नों पर स्वयं सोचने और अपने उत्तर लिखने के लिए प्रोत्साहित करना। यह आलोचनात्मक चिंतन और स्वतंत्र अभिव्यक्ति विकसित करता है।

शैक्षणिक मूल्यः आलोचनात्मक चिंतन, स्वतंत्र अभिव्यक्ति, विश्लेषण, लेखन कौशल

6.2.5 साहित्य की रचना :– साहित्य की प्रत्येक विधा ;कविता, कहानी, आदिद्ध की संरचनात्मक विशेषताओं को समझना और पहचानना। यह साहित्य सौंदर्य शास्त्र का परिचय देता है और विद्यार्थियों को स्वयं रचनाएं बनाने के लिए प्रेरित करता है।

शैक्षणिक मूल्यः साहित्य की संरचना की समझ, रचनात्मक लेखन, विश्लेषणात्मक कौशल

6.2.6 शब्दों की बात :– शब्दों से संबंधित विविध गतिविधियां – मूल अर्थ, विभिन्न संदर्भों में प्रयोग, संदर्भगत व्याकरण, शब्द परिवार, मुहावरे। यह शब्द–भंडार विकास और भाषा समझ को मजबूत करता है।

शैक्षणिक मूल्यः शब्द–भंडार विकास, संदर्भगत व्याकरण, भाषा समझ

6.2.7 आपकी बात :– विद्यार्थियों को साहित्य को अपने जीवन अनुभवों से जोड़ने के लिए प्रोत्साहित करना। यह सीखने को व्यक्तिगत और अर्थपूर्ण बनाता है। विद्यार्थी अपने अनुभव साझा करते हैं और पाठों से संबंध स्थापित करते हैं।

शैक्षणिक मूल्यः व्यक्तिगत जुड़ाव, सृजनात्मक अभिव्यक्ति, जीवन कौशल

6.2.8 आज की पहेली :– पहेलियां भारतीय मौखिक परंपरा का महत्वपूर्ण अंग हैं। ये गतिविधियां भाषाई खेल कौशल, स्मृति, तर्क को विकसित करती हैं और सांस्कृतिक परंपरा से जुड़ाव बनाती हैं।

शैक्षणिक मूल्यः भाषाई खेल, स्मृति, तार्किक सोच, सांस्कृतिक जुड़ाव, सृजनात्मकता

6.2.9 झरोखे से :– यह अनोखी विशेषता पाठ के प्रति विद्यार्थियों की रुचि को बढ़ाती है और संबंधित अन्य रचनाएं प्रदान करती है। विद्यार्थी साहित्य की विशाल दुनिया का आनंद उठा सकते हैं। पुस्तक की सीमाओं को विस्तारित करता है।

शैक्षणिक मूल्यः जिज्ञासा का विस्तार, स्वतंत्र अधिगम, साहित्य की व्यापक समझ

6.2.10 साझी समझ :– झरोखे की रचनाओं को पढ़ने के बाद समूह में विचार साझा करने की गतिविधि। यह सहयोग, विविध दृष्टिकोणों को समझना और सामूहिक ज्ञान निर्माण को प्रोत्साहित करती है।

शैक्षणिक मूल्यः समूह संचार, विविध दृष्टिकोण, सामूहिक अधिगम, सहयोग

6.3 'मल्हार' की 10 गतिविधियों का तुलनात्मक विश्लेषण

गतिविधि	**प्राथमिक उद्देश्य**	**विकसित कौशल**
मेरी समझ से	समझ का आकलन	तार्किक चिंतन, वाचन, श्रवण
मिलकर करें मिलान	संदर्भ समझ	शब्दकोश कौशल, गहन पठन
पंक्तियों पर चर्चा	गहन विश्लेषण	चारों भाषाई कौशल, समूह संचार
सोच–विचार के लिए	स्वतंत्र चिंतन	आलोचनात्मक चिंतन, लेखन
साहित्य की रचना	संरचना की समझ	साहित्य सौंदर्य, विश्लेषण
शब्दों की बात	शब्द–भंडार विकास	संदर्भगत व्याकरण, भाषा समझ
आपकी बात	व्यक्तिगत जुड़ाव	सृजनात्मक अभिव्यक्ति, जीवन कौशल
आज की पहेली	भाषाई खेल	स्मृति, तर्क, सांस्कृतिक जुड़ाव
झरोखे से	विस्तार और अन्वेषण	स्वतंत्र अधिगम, जिज्ञासा
साझी समझ	सामूहिक विचार	समूह संचार, सहयोग

6.4 बहुआयामी पठन रणनीति :– पुस्तक विभिन्न प्रकार के पठन को प्रोत्साहित करती हैः

- गहन पठन (Close Reading): विस्तृत विश्लेषण के लिए
- सरसरी पठन (Skimming): सामान्य समझ के लिए
- विश्लेषणात्मक पठनः संदर्भ और अर्थ के लिए
- सृजनात्मक पठनः व्यक्तिगत व्याख्या के लिए
- दृश्य पठनः चित्रों, आइकन और चित्रात्मक सामग्री के लिए

7. मूल्यांकन रणनीति

7.1 रचनात्मक मूल्यांकन का दर्शन :– NCF 2023 के अनुसार, मूल्यांकन को 'सीखने का आकलन' (Assessment of Learning) से बदलकर 'सीखने के लिए आकलन' (Assessment for Learning) करना चाहिए। 'मल्हार' इसी दर्शन पर काम करती है।

7.2 मूल्यांकन की विशेषताएं

- अनुकूलनात्मकः गतिविधियां सीखने की प्रक्रिया का हिस्सा हैं, न कि अलग परीक्षा
- प्रतिक्रिया–केंद्रितः विद्यार्थियों को सुधार के लिए प्रतिक्रिया दी जाती है, न कि केवल अंक
- सहायकः हर प्रश्न के साथ संकेत (Hints) दिए गए हैं
- बहु–आयामीः ज्ञान, कौशल, दृष्टिकोण सभी का आकलन
- समावेशीः सभी विद्यार्थियों के लिए विकल्प

7.3 गुणात्मक और परिमाणात्मक आकलन :– पुस्तक दोनों प्रकार के आकलन को शामिल करती हैः

7.3.1 गुणात्मक आकलन

- विद्यार्थियों के विचार और समझ का विश्लेषण
- रचनात्मक अभिव्यक्ति की गुणवत्ता
- सहयोग और सामाजिक कौशल
- आत्मचिंतन और आत्म–जागरूकता

7.3.2 परिमाणात्मक आकलन

- सही उत्तरों की संख्या
- भाषाई सटीकता
- पूर्णता और संगठन

8. समावेशी और सुलभ डिजाइन (Inclusive and Accessible Design)

8.1 दिव्यांग विद्यार्थियों के लिए समावेश :– पुस्तक निम्नलिखित तरीकों से दिव्यांग विद्यार्थियों के लिए समावेशी हैः

- दृश्य समर्थनः चित्र और आइकन कार्य को स्पष्ट करते हैं
- दृष्टिहीन विद्यार्थियों के लिएः देवनागरी का ब्रेल रूप शामिल
- बधिर विद्यार्थियों के लिएः चित्रात्मक कार्य, लिखित निर्देश
- गतिविधियां विविध क्षमताओं के लिए डिजाइन की गई हैं
- समूह कार्य में सभी को शामिल किया जा सकता है
- वैकल्पिक गतिविधियां दी गई हैं

8.2. बहुभाषिकता :– भारत की बहुभाषिक विशेषता को मान्यता देते हुए, पुस्तक में विभिन्न भारतीय भाषाओं का संदर्भ, हिंदी की विभिन्न बोलियां, अनुवाद की गतिविधियां, और भाषाई विविधता को एक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

8.3 जेंडर समानता :– पाठों में महिला और पुरुष दोनों के सकारात्मक चित्रण, महिला लेखकों की रचनाएं, सामाजिक भूमिकाओं के बारे में प्रश्न, और स्वतंत्र चिंतन को प्रोत्साहित करना।

8.4 सांस्कृतिक विविधता :– भारत के विभिन्न क्षेत्रों के लेखकों, कलाओं, त्योहारों और परंपराओं का प्रतिनिधित्व।

9. शोध विश्लेषण के मुख्य निष्कर्ष : इस शोध विश्लेषण के मुख्य निष्कर्ष निम्नलिखित हैंः

9.1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के साथ पूर्ण संरेखण :– 'मल्हार' पाठ्यपुस्तक राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के सभी मुख्य सिद्धांतों के साथ संरेखित है। भारतीय ज्ञान परंपरा, समग्र विकास, 21वीं सदी के कौशल – सभी को प्रभावी रूप से संबोधित किया गया है।

9.1. नवाचारी पाठ्यचर्या डिजाइन :– दस प्रकार की विविध गतिविधियां, संवादात्मक शैली, 'झरोखे से' जैसी अनोखी विशेषताएं – ये सब पुस्तक को नवाचारी बनाती हैं।

9.1. प्रभावी शिक्षण–अधिगम :– गतिविधि–केंद्रित दृष्टिकोण, समूह कार्य, बहुआयामी पठन – ये सब विद्यार्थियों को सक्रिय शिक्षार्थी बनाते हैं।

9.1. रचनात्मक मूल्यांकन :– 'सीखने के लिए आकलन' का दर्शन, विविध मूल्यांकन तरीके, प्रतिक्रिया–केंद्रित दृष्टिकोण – ये मूल्यांकन को विकासशील बनाते हैं।

9.1. समावेशी डिजाइन :– दिव्यांग विद्यार्थियों के लिए विशेष सुविधाएं, बहुभाषिकता, जेंडर समानता, सांस्कृतिक विविधता सभी को समावेशित किया गया है।

10 पाठ्यपुस्तक की विशेषताएं :– नीति–केंद्रित डिजाइनः राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और NCF 2023 के साथ पूर्ण संरेखण

- विविध साहित्यः साहित्य की सभी प्रमुख विधाओं का समावेश
- गतिविधि–केंद्रितः 10 प्रकार की विविध गतिविधियां
- समावेशी डिजाइनः सभी विद्यार्थियों के लिए अनुकूलित
- संवादात्मक शैलीः पाठकों से सीधे संवाद
- संदर्भगत व्याकरणः व्याकरण का जीवन से जुड़ाव
- संस्कृति–संपृक्तः भारतीय संस्कृति का गहरा समावेश

11 अनुशंसित सुझाव

11.1 शिक्षकों के लिए :– पुस्तक के साथ प्रदान किए गए शिक्षण निर्देशों को ध्यान से पढ़ें

- गतिविधियों को लचीलेपन से संचालित करें

- समूह गतिविधियों के लिए पर्याप्त समय आवंटित करें
- विद्यार्थियों की विविध क्षमताओं को मान्यता दें
- बाहरी संसाधनों का उपयोग करें

11.2 शिक्षा नीति निर्माताओं के लिए :– इस पाठ्यपुस्तक का मॉडल अन्य विषयों और कक्षाओं के लिए अनुकूलित किया जा सकता है

- शिक्षकों के लिए व्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम विकसित करें
- पाठ्यपुस्तक के कार्यान्वयन की निगरानी करें
- विद्यार्थियों और शिक्षकों से प्रतिक्रिया लें

11.3 भविष्य के शोध के लिए

- पाठ्यपुस्तक की वास्तविक कक्षा कार्यान्वयन का अध्ययन करें
- विद्यार्थियों के सीखने के परिणामों का मूल्यांकन करें
- शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकताओं का अन्वेषण करें
- अन्य भाषाओं की पाठ्यपुस्तकों से तुलना करें

12 अंतिम विचार :– कक्षा 6 की हिंदी पाठ्यपुस्तक 'मल्हार' एक अत्यंत सुचिंतित और प्रभावी शैक्षणिक संसाधन है जो राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के दृष्टिकोण को व्यावहारिक रूप देता है। यह पुस्तक विद्यार्थियों को केवल हिंदी भाषा सीखने तक सीमित नहीं करती, बल्कि उन्हें समग्र विकास, भारतीय सांस्कृतिक धरोहर, आलोचनात्मक चिंतन और जीवन कौशलों के लिए तैयार करती है। यह पुस्तक एक मॉडल के रूप में काम कर सकती है और अन्य विषयों की पाठ्यपुस्तकों के विकास के लिए प्रेरणा प्रदान कर सकती है। इसके कार्यान्वयन की सफलता शिक्षकों की क्षमता विकास, माता–पिता की सहभागिता, और शैक्षणिक प्रशासकों की प्रतिबद्धता पर निर्भर करती है।

संदर्भ–सूची :–

1. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. नई दिल्लीः शिक्षा मंत्रालय।
2. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) 2023. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखाः स्कूली शिक्षा. नई दिल्लीः NCERT।
3. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) 2024. मल्हारः कक्षा 6 की हिंदी पाठ्यपुस्तक. नई दिल्लीः NCERT।
4. UNESCO. (2005). Guidelines for inclusion: Ensuring access to education for all. Paris: UNESCO.
5. Bloom, B. S. (1956). Taxonomy of educational objectives: The classification of educational goals. Handbook I: Cognitive domain. New York, NY: David McKay Company.
6. Vygotsky, L. S. (1978). Mind in society: The development of higher psychological processes (M. Cole, V. John-Steiner, S. Scribner, & E. Souberman, Eds.). Cambridge, MA: Harvard University Press.
7. Freire, P. (1970). Pedagogy of the oppressed. New York, NY: Continuum.
8. Brown, H. D. (2000). Principles of language learning and teaching (4th ed.). White Plains, NY: Pearson Education.
9. Halliday, M. A. K. (1978). Language as social semiotic: The social interpretation of language and meaning. London, England: Edward Arnold.\
10. Palmer, P. J. (1998). The courage to teach: Exploring the inner landscape of a teacher's life. San Francisco, CA: Jossey-Bass.

ഩ★ര

डॉ. नगेन्द्र और उनके यात्रा-संस्मरणः 'तंत्रालोक से यंत्रालोक' एवं 'अप्रवासी की यात्राएं'

डॉ. आनन्द कुमार*

डॉ. नगेन्द्र ने यद्यपि अपनी कलम आलोचना साहित्य एवं काव्यशास्त्र पर ही चलायी, किन्तु उनका यात्री मन भी उनकी कल्पना में उत्ताल–तरंगे मारता रहा। 'तंत्रलोक से यंत्रलोक' एवं 'अप्रवासी की यात्राएं' उनके इसी यात्री मन की परिणति हैं। 'तंत्रलोक से यंत्रलोक' उनका प्रथम यात्रा–संस्मरण है। इसमें दिल्ली से काठमांडू, दिल्ली से काबुल,काबुल से ताशकंद, ताशकंद से मास्को के यात्रा–वृत्तांत संकलित है। इस पुस्तक के 'निवेदन' में डॉ0 नगेन्द्र ने अपने विचार स्पष्ट करते हुए लिखते है– "प्रस्तुत कृति में मेरी विदेश यात्रा के चार संस्मरण संकलित है। यात्रा–लेख और यात्रा–संस्मरण में एक स्पष्ट अंतर यह है कि पहले का यथार्थ जहाँ प्रायः वस्तुनिष्ठ रहता है, वहाँ दूसरे का यथार्थ अनायास ही कल्पना रंजित हो जाता है। इसी दृ ष्टि से मैने इन निबंधों को यात्रा लेख न कहकर यात्रा संस्मरण कहा है। इनमें लेखक की दृष्टि प्रयत्न करने पर भी वस्तुनिष्ठ नहीं बन पायी। जो काठमांडू मास्कों में भी दिल्ली को नहीं भूल पाया वह यथार्थ का दर्शन और वर्णन आत्म–निर्लित होकर कर सकेगा–यह आशा करना व्यर्थ है। इसे आप द्रष्टा का दोष माने या गुण, पर तथ्य तो यही है।"[1]

'दिल्ली से काठमांडू' उनकी प्रथम विदेश यात्रा का रोचक संस्मरण है। 08 मार्च 1967 को काठमांडू के लिए निकलते डॉ0 नगेन्द्र एवं उनके परिजन का द्वन्द्व देखने लायक है। आज विदेश–यात्राएँ जितनी सहज हैं, तब नहीं थीं। आशंकाओं के सघन मेघों को चीरना प्रथम शर्त थी, लेखक की यह अतंर्यात्रा भी गुदगुदाती है। आप साहित्य–मर्मज्ञ का वृत्तांत पढ़ रहे है, इसका अनुमान तभी होने लगता है जब यात्री का विमान हिमालय–क्षेत्र में पहुँचता है। मंत्रमुग्ध लेखक ने हिमालय को यों देखा– "नेपाल–यात्रा का मेरा सबसे प्रबल आकर्षण था नगाधिराज हिमालय–जिसके साथ भारत की असंख्य पुराकथाएँ और उदात्त कल्पनाएँ लिपटी हुई हैं। कालिदास, प्रसाद, पंत और दिनकर के अनेक काव्य–बिम्ब मेरी चेतना में अनायास ही उद्बुद्ध होने लगे। कालिदास ने पृथ्वी के मानदण्ड के रूप में उसकी विराट कल्पना की है। भगवान शंकर के संबंध में हिमालय के आसंग कालिदास की आनंद–कल्पना के सहज अंग बन गये थे और कवि की भक्ति शत–शत बिम्बों के फूल निरंतर उसके प्रति अर्पित करती रही। प्रसाद ने हिमालय के उस आदि रूप का चित्रण किया है जो प्रलय के उपरांत सर्वप्रथम आविर्भूत हुआ था। उत्तुंग शिखरों से मंडित हिमालय का वह दिगंतव्यापी कलेवर ऐसा लगता था मानो अभी उसकी प्रलय–समाधि भंग नहीं हुई थी– और प्रलय के समुद्र से उन्मग्न पृथ्वी पूरी शक्ति के साथ उसे पकड़े हुए थी जिससे कि कहीं फिर न डूब जाए।"[2] हिमालय–दर्शन में कालिदास, पंत, प्रसाद, दिनकर, शिव, कैलास किसे न याद कर लिया अभिभूत लेखक ने ! हिमालय की भव्यता–दिव्यता है ही इतनी मोहक! कौन मुग्ध न हो। चूँकि इसी मनोदशा के साथ मैंने भी हिमालय को ऊपर–से भी देखा है, कालिदास से लेकर प्रकृति के महान चितेरे छायावादी कवियों ने यदि हिमालय का वैमानिक दृश्य देखा–परखा–महसूसा होता, वर्णन–चित्रण में और भी ज्यादा भव्यता–भाव–विह्वलता न जुड़ जाती! खैर, हिमालय–देखते–देखते यहाँ डॉ0 नगेन्द्र अपने नाम की व्याख्या करना नहीं भूलते। नाम–रहस्य। नागों के उपासक नागाइच वंश में जन्म। नामकरण हुआ नागेन्द्र। शाला में शिक्षक ने नागेन्द्र का उच्चारण कर दिया नगेन्द्र। यही लेखक का परिचय बन गया।

काठमांडू पहुँचकर वहाँ के दर्शनीय स्थलों का यथासंभव दृष्टि लाभ लेते डॉ0 नगेन्द्र का विश्लेषक मन भी निरंतर कार्यरत रहता है। आज नेपाल हिन्दू राष्ट्र नहीं रहा। तब विश्व का एकमात्र हिन्दू राष्ट्र नेपाल ही था। इसपर उनकी अहम टिप्पणी देखिए– "नेपाल शैव–शाक्त और बौद्ध धर्मों का केन्द्र रहा है। इस समय वह विश्व में एकमात्र हिन्दू राज्य है जो न भारत की तरह धर्म निरपेक्ष है और न पाकिस्तान की

***असि. प्रोफेसर हिन्दी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर (उ0प्र0)**

तरह धर्म–प्रतिबद्ध। वह इस बात का प्रमाण है कि हिन्दू धर्म को उसके सहज उदार रूप में स्वीकार कर लेने के बाद धर्म निरपेक्षता उतनी अनिवार्य नहीं रहती। इसीलिए शताब्दियों से वह एक ओर भगवान पशुपतिनाथ और दूसरी ओर तथागत बुद्ध के वरदानों का युगपत् उपभोग करता रहा। जबरदस्त आकलन यह है सचमुच हिन्दू धर्म की यही तो खासियत रही, उदारता।"[3] डॉ0 नगेन्द्र को पढ़ते हुये, ध्यान सन् 1967 से उढ़कर सन् 2017 तक पहुँच ही जाता है, आज ही हिन्दू धर्म की उदारता की दशा–दिशा क्या रह गयी है? विश्व के श्रेष्ठतम धर्मों में शुमार इस धर्म की श्रेष्ठता में तो बेशक कोई शक नहीं है, किन्तु अनुदार समय ने सारा समीकरण बिगाड़ने की भरपूर जुगत अवश्य लगा दी है।

काठमांडू यात्रा में डॉ0 नगेन्द्र ने त्रिभुवन विश्वविद्यालय एवं वहाँ की हिन्दी शिक्षण की स्थिति पर विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला है। वहाँ आयोजित अपने व्याख्यान 'काव्य बिम्ब और काव्य मूल्य' के अर्ध समाधि में लीन भक्तों एवं साधवी–बाला के प्रवचन की बलि बेदिका पर न्यौछावर हो जाने का रोचक चित्र खींचा है। इस संस्मरण का समापन यात्रारंभ में विदेश–यात्रा के संबंध में उपजे द्वन्दों का भी समापन है। जहाँ लेखक स्वीकारता है कि " लौटने के बाद मुझे या मेरे परिजनों को यह नहीं लग रहा था कि मैं परदेश से आया हूँ– और इसके लिए उत्तरदायी था नेपाल का भौगोलिक एवं सांस्कृतिक नैकट्य।"[4]

"विदेश–यात्रा वर्तमान जीवन का विशेष आकर्षण और आधुनिक मनुष्य के व्यक्तित्व का आवश्यक अलंकार है।" यह पंक्ति 'दिल्ली से काबुल' संस्मरण का प्रवेश कराती है, किन्तु लेखक का व्यक्तित्व इसे रत्ती भर भी आत्मसात् नहीं करता। विदेश–यात्राएँ होंगी दूसरों के लिए स्टेटस सिंबल, डॉ0 नगेन्द्र को अपना घर, अपना देश ही रुचता है। 'ताशकन्द से मास्को' की अन्तिम पक्तियाँ भी यही कहती है जब हवाई जहाज पालम अड्डे पर उतरने को होता है–"और, पालम आ गया–वही चिर–परिचित, चिरकांक्षित पालम दिल्ली का सिंह–द्वार जहाँ मेरा विश्वविद्यालय है–मेरा अध्ययन कक्ष है, परिजन–प्रियजन से भरा मेरा आवास है। कितना महान था विदेश, पर कितना प्रिय है मेरा देश।"[5] यायावर अज्ञेय हो, स्थावर नगेन्द्र अथवा विनोद कुमार शुक्ल, 'घर' में ही सबके प्राण बसते है।

'दिल्ली से काबुल यात्रा' में भी आरंभ आकाशीय और कल्पनालोक की उड़ान से ही होता है। मुल्तान के ऊपर पहुँचते ही लेखक का मन पाणिनी, अद्दहमाण, चन्द्रगुप्त से जा मिलता है। काबुल हवाई अड्डे पर पहुँचते ही एक बात तुरन्त ध्यान खींचती है, वह है उनका स्वभाषा प्रयोग। डॉ0 नगेन्द्र दिल्ली और काबुल की तुलना करते हुए कहते है–" काबुल के हवाई अड्डे के दफ्तर यों तो बहुत कुछ वैसे ही है जैसे की 'पालम' के दफ्तर है क्योंकि दोनों की ही इमारतें साज–सज्जा विदेशी ढंग की है, परन्तु एक अंतर बड़ा स्पष्ट है जोकि तुरन्त ही हमारा ध्यान आकृष्ट करता है वह यह कि पालम पर जहाँ 'एयर इण्डिया' और 'इण्डियन एयर लाइंस है वहां'अफगान हवाई सिरकत'का नाम आर्याण' है, यहाँ कि सेवा–सूचना जहाँ विदेशी लहजे के साथ अग्रेजी में और उनका अनुवाद लड़खड़ाती हिन्दी में दिया जाता है, वहाँ अफगान हवाई सिरकत की हर सूचना वहाँ की राजभाषा अफगानी या दरी में, अफगानी व्यक्तित्व के अनुरूप एक खास मर्दाना अन्दाज में की जाती है।[6]

' यह वह विडंबना है, जिससे आज तक हम मुक्त नहीं हुए और आज जो हमारी मानसिकता व राजनीति है, लगता नहीं कि इससे अलहदा कोई भविष्य भी हो सकेगा। यह देश का दुर्भाग्य जरुर है किन्तु यही कटु सत्य भी है। डॉ0 नगेन्द्र के समस्त विदेशी संस्मरण इस बात के गवाह कि हर जगह हिन्दी तब ही पहुँची हुई थी, पठन–पाठन सोत्साह जारी थी। आज यह समस्त विश्व में प्रचार–प्रसार पा रही है, किन्तु दृष्टि जब भारत की ओर जाती है, वर्णित पालम हवाई अड्डे का सच ही सर्वत्र हावी है। बाहर सम्मानित, घर में वही दो फांकी दाल। डॉ0 नगेन्द्र काबुल की जलवायु, उसकी भौगोलिक, सास्कृतिक दशा का वर्णन करते हुए, वहाँ की खासियत को खूबी से उजागर करते हैं। अफगानिस्तान अर्थात् आर्याण में आर्य, बौद्ध, यवन सस्कृति के भग्नावशेष इमारतों, तांगों, बसों, टैक्सियों, कालीन, बाजार, मेवों, फलों, शराब का ब्यौरा देते हुए उक्ति काबुल में मेवा बये, बज्र में बये बबूल को भी बेसाख्ता याद करते हैं। काबुल यात्रा चूँकि सोवियत रुस यात्रा के आरंभिक पढ़ाव–रुप में थी, कुछ ही घंटों तक सीमित, इसलिए यहाँ कोई शैक्षिक–बौद्धिक

गतिविधियों परिलक्षित नहीं होती किन्तु क्षणों में जो देखा यह भी बौद्धिक आकलन, विमर्श की भावभूमि अवश्य सोंप गया। भाषायी तुलना तो हुई ही, लेखक ने काबुल को श्रीनगर के समकक्ष रखकर भी सहज ही तौल लिया। अंत में वे यही कहते पाए गए—सब मिलकर मुझे लगा कि विभाजन से पहले अफगानिस्तान और हिन्दुस्तान का अंतर बहुत कम रहा होगा—उत्तर पश्चिम के शहरों, खासकर पेशावर, क्वेटा आदि के लोग काबुल में अपने को अजनबी महसूस नहीं करते होंगे। आज भी जो कश्मीर में रह चुका है, यह काबुल पहुँचकर यह अनुभव शायद नहीं करेगा कि मैं एकदम विदेश में आ गया हूँ किन्तु एकदम अनजान देश में नहीं हूँ।

अप्रवासी की यात्राएँ :— डॉ. नगेन्द्र के यात्री मन का द्वितीय पुष्प 'अप्रवासी की यात्राएँ' हैं। इस यात्रा—वृत्तान्त में कुल पाँच यात्रा विषयक निबंध हैं। यह पाँच निबन्ध कुछ इस प्रकार है— यूरोप—यात्राः कुछ स्मृति चित्र, टोक्यो का परिदृश्य, अमरीका यात्रा, अमरीकी विश्वविद्यालयों में हिन्दी, लंदन में एक दिन।

इस कृति के सूक्ष्म आमुख में ही उन्होंने बतला दिया है कि संस्मरण वैदेशिक जीवन और शिक्षा पद्धति पर केन्द्रित है। विदेश—यात्राओं के रोचक, ज्ञानप्रद स्मृति संस्कारों का संरक्षण एवं विचार—विवेचन उनका लक्ष्य है। प्रथम लेख यूरोप—यात्राः कुछ स्मृति—चित्र में फ्रेंकफुर्त पहुँचते ही शाकाहारी डॉ0 नगेन्द्र की भोजन—समस्या का रोचक वृत्तान्त प्रस्तुत हुआ है। एकमात्र शाकाहारी होटल में भोजन के नाम पर मिला दही, सलाद और कुछ कच्ची सब्जियाँ। लेखक चकित था, प्रतीक्षा थी कि मुख्य भोजन सामग्री क्यों नहीं आ रही। इस पर उनसे कहा गया— वह तो आपके सामने रखी है। शाकाहारी में तो यही मिलता है। इस पर रहस्य किया जाता है।'' आनंदवर्धन के प्रति काफी श्रद्धा होने पर भी मेरा मन सिद्धाततः इस मन्तव्य का एकांत निषेध नहीं कर पाता कि अभिधा ही तीर की तरह लक्ष्यार्थ व्यग्यार्थ का वेध करने में समर्थ है पर आज यह अभिधावाद मुझे काफी महंगा पड़ा। डॉ0 नगेन्द्र के ऐसे अनुभव प्रत्येक उस भारतीय के निजी कष्ट में शुमार है, जो शाकाहारी हैं। विश्व—दर्शन की अमिट लालसा में आहार बहुधा कष्टप्रद हो जाया करता है।

फ्रेंकफुर्त स्टुटगार्ड, ट्यविंगन, अर्डमान प्रकाशन—ग्रह, जर्मन—हिन्दी में अनुवाद, विश्वविद्यालय, होल्डरलीन स्मारक के विचरण के पश्चात् बर्लिन के ब्यौरे निर्मल वर्मा के यात्रा—संस्मरण की याद दिला बैठते है। द्वितीय विश्व युद्ध। बम वर्षा। काइजर विल्हम गिरजाघर। ध्वस्त व पुनर्निमित बर्लिन के मध्य जर्जर—जला हुआ गिरजाघर, यथावत्। क्यों मार्गदर्शन युवा में बताया कि ऐसा जानबूझकर किया गया है। संसार को यह बताने के लिए कि युद्ध में ईश्वर का स्थान भी सुरक्षित नहीं है।

'टोक्यो' का परिदृश्य मात्र एक दिनी टोक्यो—प्रवास में प्राप्त मणियों का सूक्ष्म—संयोजन है। 01 मई 1971 को पूर्वी मार्ग से संयुक्त राज्य अमरीका की यात्रा को लेखक निकल पड़ते है। छः विश्वविद्यालयों में व्याख्यान के निमंत्रण और दिल्ली विश्वविद्यालय की फोर्ड फाउंडेशन योजना के अन्तर्गत वहाँ के मुख्य हिन्दी शिक्षा—केन्द्रों का निरीक्षण। टोक्यो एक पड़ाव रहा। उन्होंने रेडियो स्टेशन, पचास मंजिला इमारत केइओ प्लाजा होटल, टोक्यो बंदरगाह एवं ऐतिहासिक—विशाल प्रागंण, जहाँ ने शस्त्र समर्पण किया था, का भ्रमण किया। अल्प समय से ही जापान में हिन्दी—शिक्षण का जायजा लेने से वे नहीं चूके। यहाँ उन्हें जापानी लड़कियों का रेलकेन्द्रों, बसों, बाजार—हाटों, उपाहार गृहों में स्फूर्ति से काम करना आकर्षित कर पचास वर्षों में आया अंतर दिखाई दिया। अब भारत में भी यह दृश्य आम हो चुका है।

तृतीय लेख 'अमरीकी—यात्रा' है। टोक्यो के रास्ते लेखक सर्वप्रथम सैन—फ्रांसिस्को पहुँचता है। समय में उलझा लेखक मन चिर—परिचित सूक्ति याद करता दीख पड़ता है— सत्य कल्पना से भी विचित्र होता है— हवाई अड्डा, बर्कली, कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय, पूर्वी भाषा विभाग में हिन्दी विभाग व व्याख्यान भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता। इस क्रम में उस प्रश्नोत्तर का भी जिक्र है, जिसमें भारतीय भाषा—विवाद को लेकर विदेशियों की जिज्ञासा है। वे कहते है— "मुझसे प्रश्न किया गया कि भाषायी प्रतिस्पर्धा के विषय में मुझे क्या कहना है? मेरा उत्तर था कि या प्रतिस्पर्धा राजनीतिज्ञों के अपने स्वार्थों की सृष्टि है— साहित्य के स्तर पर एकता ही सत्य है।"[7] किंतु आज यदि यही प्रश्न डॉ0 नगेन्द्र से किया जाए कि, आज के साहित्यिक परिदृश्य के आकलन में, क्या उपर्युक्त शब्द यथास्थिर रह सकेंगे, चूँकि भाषा में विवाद तो हैं ही, साहित्य में

भी एकता अब कहाँ है ? कई–कई खेमे। कई विभाजन। कई मठ। कई गढ़। अमेरिका यात्रा में उषा प्रियंवदा, हिन्दी–प्राध्यापक डॉ0 जोशी, डॉ0 आहूजा और शिकागो के व्याख्यान का जिक्र है। मात्र दो सप्ताह के अमेरिका प्रवास में छह विश्वविद्यालयों, सात राज्यों और दस प्रसिद्ध नगरों का निरीक्षण करने के बाद लेखक आकलन करता है कि– अमरीका वास्तव में एक महान देश है– सम्पन्न किंतु स्वच्छंद भौतिक उपलब्धियों के लिए निरंतर प्रयत्नशील–आदर्शों के प्रति आस्थावान किंतु स्वार्थ के प्रति प्रबुद्ध। भौतिक सुख–समृद्धि के चरम शिखर पर पहुँचकर का मनुष्य आजकल उससे भिन्न किसी नए सुख की तलाश कर रहा है किंतु इस सुख का स्वरूप अभी स्पष्ट नहीं हो शायद इसलिए वह बेचैन है। आश्चर्य है कि 75 वर्षों में भारत का भी करीब–करीब यही सच नहीं हुआ जा रहा ? उच्च–माध्यम वर्ग तो इस हालात में जा ही पहुँचा है, जो वंचित है, वही रोटी–कपड़ा–मकान के जुगाड़ में है अन्यथा शेष भारत अमेरिका के नक्शे कदम पर ही है। भौतिकवाद ने साधनों की भरमार की, सुख–शांति की खोज जारी रहे।

चतुर्थ संस्मरण 'अमरीकी विश्वविद्यालय में हिन्दी' है जो शीर्षक के अनुरुप यहाँ हिन्दी की दशा, शिक्षण के गुण–दोषों पर ही पूर्णतः केन्द्रित है। लेख में सूक्ष्मतः से अमेरिकी विश्वविद्यालयों में हिन्दी की पड़ताल की गई है। आरंभ में ही डॉ0 नगेन्द्र कहते है कि "अमेरिका में हिन्दी लोकप्रिय है और होती जा रही है इसमें संदेह नहीं। वहाँ के बीस–पच्चीस विश्वविद्यालयों में भिन्न–भिन्न स्तर पर हिन्दी के अध्ययन–अध्यापन की व्यवस्था है। और अनेक विश्वविद्यालयों में उन्नति अध्ययन केन्द्र तथा शोध केन्द्र है जैसे– केलीफोर्नियां विश्वविद्यालय, बर्कले, पैनशिलवेलिया विश्वविद्यालय, फिलाडेलिफिया विश्वविद्यालय आदि। वे बताते है कि अमेरिका में हिन्दी के अध्ययन केन्द्रों एवं विद्यार्थियों की संख्या सर्वाधिक है। हिन्दी शिक्षण के लिए वहाँ नवीन प्रवधियां है। हिन्दी साहित्य के अध्ययन में अंग्रेजी में अनुदित सामग्री को माध्यम बनना लेखक को उचित नहीं लगता। वे लंदन में हिन्दी साहित्य के अध्ययन की दशा अमेरिका से अधिक बेहतर पाते है।"[8] 'लंदन में एक दिन' इस संग्रह का अंतिम संस्मरण है। डॉ0 नगेन्द्र के अनुसार– इग्लैंड के साथ मेरी पीढ़ी के शिक्षित भारतीयों का विचित्र प्रकार का कटु मधुर रागात्मक संबंध रहा है। इग्लैंड जो एक ओर क्लाइव, कर्जन, ओ–डायर का देश है तो दूसरी ओर यह शेक्सपीयर, वर्डसवर्थ, शैले, कीट्स, मैथ्यू आर्नल्ड और आए0ए0 रिचर्डस् का। अमेरिका के नगर विश्वविद्यालय बहुत कुछ अपरिचित से लगते है किंतु कैम्ब्रिज, आक्सफोर्ड, लंदन से न जाने कब का अप्रत्यक्ष संबंध है।

सचमुच यह द्वन्द्व सत्य है, संभवतः कभी न समाप्त होने वाला। लंदन का प्रयास एकदिन का ही था फिर भी लेखक ने टोक्यो की भांति इसे भी पूर्णतः दी। भारतीय मित्र, बीबीसी में वार्ताएं फिर दर्शनीय स्थलों का भ्रमण, गोष्ठियाँ व लंदन में हिन्दी शिक्षण की स्थिति। ब्रिटिश म्यूजियम में उन्हें सर्वाधिक रुचिकर लगा 'साहित्य–कक्ष'। यहाँ उन्होंने कालजयी लेखकों के हस्ताक्षर देखे–" मैने बड़े कौतूहल भाव से अपने प्रिय कवियों के हस्ताक्षर देखे–मिल्टन, कीट्स, वर्डसवर्थ, वायरन, वाल्टर स्कार्ट के। हस्ताक्षरों को देखकर मेरी कल्पना में उन कवियों के चित्र और चित्रों के साथ उनकी काव्य चेतना के अमूर्त स्वर लेख सहसा साकार हो उठे। उनका व्यक्तित्व उनके हस्ताक्षरों में भी प्रतिबिम्बित हो रहा था।

सन्दर्भ सूची :–

1. (निवेदन) तंत्रलोक से यंत्रलोक– डॉ0 नगेन्द्र, नगेन्द्र ग्रन्थावली खण्ड–10 नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज नई दिल्ली, संस्करण1997, पृष्ठ सं0–72
2. तंत्रलोक से यंत्रलोक– डॉ0 नगेन्द्र, नगेन्द्र ग्रन्थावली खण्ड–10 नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज नई दिल्ली, संस्करण1997, पृष्ठ सं0–73
3. वही– पृष्ठ सं0–77
4. वही– पृष्ठ सं0–80
5. वही– पृष्ठ सं0–87
6. वही– पृष्ठ सं0–88
7. ?अप्रवासी की यात्राएँ– डॉ0 नगेन्द्र, नगेन्द्र ग्रन्थावली खण्ड–10 नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज नई दिल्ली, संस्करण1997, पृष्ठ सं0–147
8. वही–पृष्ठ सं0–158

छत्तीसगढ़ के सुआ गीत : एक सांस्कृतिक एवं सामाजिक अध्ययन

प्रीति मोदी*

प्रो. जितेन्द्र कुमार सिंह**

सारांश :– यह शोध–पत्र छत्तीसगढ़ के सुआ गीतों का सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन प्रस्तुत करता है। सुआ गीत छत्तीसगढ़ की लोकसंस्कृति की एक महत्वपूर्ण धरोहर हैं, जो विशेष रूप से ग्रामीण एवं आदिवासी महिलाओं की सामूहिक लोक–अभिव्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इन गीतों में नारी जीवन की संवेदनाएँ, प्रेम, विरह, पारिवारिक संबंध, सामाजिक मान्यताएँ, धार्मिक आस्था तथा कृषि–प्रधान जीवन की विविध छवियाँ सजीव रूप में अभिव्यक्त होती हैं। शोध में सुआ गीतों की उत्पत्ति, प्रस्तुति शैली, सांस्कृतिक स्वरूप तथा लोकजीवन में उनकी भूमिका का विश्लेषण किया गया है। साथ ही, गीतों में निहित प्रकृति चित्रण, नारी चेतना, लोकविश्वास, पौराणिक प्रसंग तथा सामाजिक एकता के तत्वों का विवेचन किया गया है।

बीज शब्द :– सुआ गीत, छत्तीसगढ़, लोकसंस्कृति, लोकगीत, नारी संवेदना, सामाजिक जीवन, सांस्कृतिक परंपरा, लोकसाहित्य।

भारतीय लोकसंस्कृति अपनी विविधता, व्यापकता और जीवंतता के कारण विश्व में विशिष्ट स्थान रखती है। लोकगीत भारतीय संस्कृति की आत्मा माने जाते हैं, क्योंकि इनमें जनजीवन की सहज अभिव्यक्ति, भावनाओं की स्वाभाविकता तथा सामाजिक–सांस्कृतिक परंपराओं का सजीव चित्रण मिलता है। छत्तीसगढ़, जिसे "धान का कटोरा" कहा जाता है, अपनी समृद्ध लोकपरंपराओं और लोकगीतों के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है। यहाँ के लोकगीतों में प्रकृति, श्रम, प्रेम, विरह, आस्था और सामूहिक जीवन के अनेक रूप प्रतिबिंबित होते हैं। इन्हीं लोकगीतों में सुआ गीत का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है, जो न केवल एक सांगीतिक परंपरा है, बल्कि छत्तीसगढ़ के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग भी है।

सुआ गीत शब्द में निहित "सुआ" का अर्थ तोता होता है, जो इन गीतों में एक प्रतीक के रूप में प्रयुक्त होता है। यह प्रतीक मात्र एक पक्षी का बिंब नहीं है, बल्कि यह स्त्रियों की भावनाओं, उनके अंतर्मन की व्यथा और उनके संवाद का माध्यम बन जाता है। छत्तीसगढ़ के ग्रामीण समाज में, जहाँ स्त्रियों को अपनी भावनाओं को खुले रूप में व्यक्त करने का अवसर सीमित रहा है, वहाँ सुआ गीत उनके लिए एक ऐसा मंच प्रदान करते हैं जहाँ वे अपने मन की बात सहजता से प्रकट कर सकती हैं। इन गीतों में स्त्रियाँ तोते को अपना दूत मानकर उससे संवाद करती हैं और अपने प्रियतम तक अपनी भावनाओं को पहुँचाने की कल्पना करती हैं। इस प्रकार सुआ गीतों में नारी मन की कोमल संवेदनाएँ अत्यंत मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त होती हैं।

सुआ गीतों की परंपरा छत्तीसगढ़ के आदिवासी और ग्रामीण जीवन से गहराई से जुड़ी हुई है। माना जाता है कि इनका उद्‌भव विशेष रूप से गोंड जनजाति के बीच हुआ, जहाँ से यह परंपरा धीरे–धीरे व्यापक समाज में फैल गई। इन गीतों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि ये मौखिक परंपरा के अंतर्गत पीढ़ी दर पीढ़ी संचरित होते रहे हैं। किसी एक व्यक्ति को इनका रचनाकार नहीं माना जाता, बल्कि यह सामूहिक सृजन का परिणाम हैं। यही कारण है कि इन गीतों में स्थानीयता, सहजता और सामूहिक अनुभवों की प्रबल उपस्थिति दिखाई देती है। "ये गीत कितने प्राचीन हैं, यह किसको मालूम है ? किन्तु इतना तो निश्चित है कि ये गीत उतने ही प्राचीन हैं जितने उनमें व्यक्त भावनाएँ प्राचीन हैं। यह भी संभव है कि कालिदास और जायसी ने इन गीतों से प्रेरणा ली हो। ये गीत तो आज भी अलिखित ही हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी

***शोधार्थी, हिंदी विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)**
**** विभागाध्यक्ष,हिंदी विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)**

मौखिक ही चले आ रहे हैं। रायगढ़ से कांकेर और सरायपाली से डोंगरगढ़ तक सुआगीत अपने विभिन्न स्वरूपों में बिखरा चला आ रहा है।"[1]

सुआ गीत मुख्यतः दीपावली के अवसर पर और धान की फसल कटाई के समय गाए जाते हैं। यह समय कृषि जीवन में समृद्धि और उत्सव का प्रतीक होता है, इसलिए इन गीतों में आनंद और उल्लास के साथ–साथ श्रम के प्रति संतोष और प्रकृति के प्रति कृतज्ञता का भाव भी निहित रहता है। जब खेतों में धान की बालियाँ पककर झूमने लगती हैं और किसान अपने परिश्रम का फल प्राप्त करता है, तब पूरे समाज में उत्सव का वातावरण बन जाता है। इसी वातावरण में महिलाएँ सुआ गीत गाकर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करती हैं और सामूहिक आनंद का अनुभव करती हैं। "इस नृत्य में उम्र का कोई बंधन नहीं होता तथा नृत्य करने वाली ये स्त्रियाँ कुवारीं तथा विवाहित दोनों हो सकती है"[2] सुआ गीतों की प्रस्तुति शैली अत्यंत सरल, किंतु आकर्षक होती है। इसमें महिलाएँ समूह बनाकर गोलाकार घेरा बनाती हैं और बीच में धान से भरी एक टोकरी रखती हैं, जिसमें मिट्टी या लकड़ी से बना सुआ स्थापित किया जाता है। इसके बाद महिलाएँ ताली बजाते हुए गीत गाती हैं और लयबद्ध ढंग से झूमती हैं। इस पूरी प्रक्रिया में किसी वाद्ययंत्र का प्रयोग नहीं होता, केवल तालियों की ध्वनि ही संगीत का आधार बनती है। यह सामूहिकता और सरलता ही सुआ गीतों की सबसे बड़ी विशेषता है, जो इन्हें अन्य लोकगीतों से अलग पहचान प्रदान करती है। सुआ नृत्य–गीत के लिए किसी विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि यह परंपरा से ही सीखा जाता है। फिर भी, इसे प्रस्तुत करने के लिए छत्तीसगढ़ की नवविवाहिताएँ और युवतियाँ विशेष वेशभूषा धारण करती हैं, जो इसकी सांस्कृतिक गरिमा को और भी बढ़ा देती है। सुआ गीत में पहनें जाने वाले गहनों का वर्णन इस सुआ गीत में मिलता है

सुआ गीत (1)

"देतो दाई तोर गोड़ के पैरी, सुआ नाचे बर जावन।
देतो दाई तोर हाथ के बहुटा, सुआ नाचे बर जावन।
देतो दाई तोर गले के सुता, सुआ नाचे बर जावन।
देतो दाई तोर माथ के टिकली, सुआ नाचे बर जावन।
देतो दाई तोर कान के खुंटी, सुआ नाचे बर जावन।
देतो दाई तोर हाथ के ककनी, सुआ नाचे बर जावन।
देतो दाई तोर माथ के सेंदूर, सुआ नाचे बर जावन।
देतो दाई तोर झांपी के लुगरा, सुआ नाचे बर जावन।"[3]

सुआ गीत की शुरुआत से पहले इसे गाने वाली युवतियाँ एक प्रकार का आलाप लेती हैं। यह आलाप वातावरण को सजीव और अनुकूल बनाने का माध्यम प्रतीत होता है। आलाप की पंक्तियाँ इस प्रकार होती हैं– "तरी हरी नाना मोर नहा नरी नाना रे सुअना" गीत के बीच बीच में ये पंक्तियाँ दोहराई जाती है और गीत की गति तालियों के साथ आगे बढ़ती है। ये महिलायें घर–घर जाकर अपना नृत्य और गीत प्रस्तुत करती हैं। इसके बदले उन्हें प्रत्येक घर से अनाज या धन मिलता है शाम होने के के पूर्व वे अपने घरों को लौट आती हैं। यही क्रम अगहन मास तक चलता रहता है।

गीतों की विषयवस्तु अत्यंत व्यापक और बहुआयामी होती है। इनमें प्रेम और विरह की भावनाएँ प्रमुख रूप से व्यक्त होती हैं। स्त्रियाँ अपने पति या प्रिय के दूर रहने की स्थिति में अपने मन की पीड़ा और मिलन की आकांक्षा को गीतों के माध्यम से व्यक्त करती हैं। सामाजिक जीवन की झलक भी इन गीतों में स्पष्ट दिखाई देती है, जहाँ पारिवारिक संबंध, सामाजिक मान्यताएँ और परंपराएँ सहज रूप में अभिव्यक्त होती हैं। कई गीतों में धार्मिक आस्था का भी समावेश होता है, जिसमें देवी–देवताओं के प्रति श्रद्धा और भक्ति भाव प्रकट किया जाता है।

पइयां परत हो चंदा सुरूज रे
मोला तिरिया जनम झनि देय सुआ रे
तिरिया जनम मोर अति कलपना रे
मोला तिरिया जन झनि दे सुआ रे।'[4]'

शुक यानि तोता को माध्यम बनाकर अपनी व्यथा को प्रकट कर शोषित नारी चंद्रमा–सूर्य से प्रार्थना करती है कि अगले जनम में मुझे स्त्री रूप में जन्म न मिले, क्योंकि नारी का जीवन बहुत ही दुखदायी है, जिसकी कोई सीमा नहीं है।

एक गीत में प्रियतम के विदेश चले जाने पर ससुराल के कष्टमय जीवन को अभिव्यक्त करती हैं–

सास मोर मारय–ननद गारी देवय,
रे सुअना! के राजा मोर गये हें बिदेस!
लहुरा देवर मोरे जनम के बैरी,
रे सुअना! ले जाबे तिरिया संदेस।[5]

सुआ गीत

"हाथ धरे कौड़ी खवासी लिये दवरी रे सुवना
चल भउजी भंवरी बाजार
भंवरी बाजार मा किया किया चीज रे सुवना
सेंदूर अउ काजर बिकाय, ना रे सुवना......
सेंदूर अउ काजर ला बटुवा मा धरी के रे सुवना
लिख भउजी पिया के संदेश, ना रे सुवना......
छिंव छिंव मा लिखबे मोर भाई भतीजा रे सुवना
मांझा मा पिया के संदेश, ना रे सुवना......
फरे लागिस आमा लहसि लगे डार ना रे सुवना
पिया बिन जग अंधियार, ना रे सुवना......।"[6]

यह गीत एक नवविवाहिता या विरहिणी स्त्री की भावनाओं को व्यक्त करता है। वह अपनी भाभी के साथ भँवरी बाजार जाने की बात करती है। बाजार में वह सिंदूर और काजल खरीदने की इच्छा प्रकट करती है, इसके बाद वह अपने प्रिय को सन्देश भेजना चाहती है। संदेश लिखते समय वह कहती है कि पत्र के आरम्भ और अंत में भाई–भतीजो का हाल लिखा जाये , लेकिन बीच में उसके प्रिय के लिए उसका प्रेम और विरह का संदेश अवश्य लिखा जाए। आम के पेड़ों पर फल लग गए हैं और डालियाँ लहलहा रही हैं, जो प्रकृति में उल्लास और समृद्धि का प्रतीक है। किंतु नायिका के लिए यह सौंदर्य भी अर्थहीन है, क्योंकि प्रिय के बिना उसे पूरा संसार अंधकारमय प्रतीत होता है।

इन गीतों में प्रकृति का सुंदर चित्रण भी मिलता है, जिसमें खेत, वन, नदी, पशु–पक्षी और ऋतुओं का वर्णन अत्यंत जीवंत रूप में किया जाता है। छत्तीसगढ़ी सुआ गीतों में वनस्पति–जगत का चित्रण अत्यंत स्वाभाविक रूप में मिलता है। घर–आँगन में लगा तुलसी का बिरवा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। तुलसी भारतीय लोकसंस्कृति में पवित्रता, नारी–धर्म और पारिवारिक मर्यादा का प्रतीक है। जब गीतों में कहा जाता है कि "तुलसी के बिरवा करै सुगबुग–सुगबुग", तो यह केवल प्राकृतिक हलचल नहीं होती, बल्कि स्त्री के भीतर उठ रही भावनात्मक बेचैनी का संकेत बन जाती है। इस प्रकार पौधे और वृक्ष मानव–मन के भावों को अभिव्यक्त करने का माध्यम बनते हैं–

मोर नचना जोगी छोड़िके बनिज चले जाय,
रे सुवना, छोड़ि के बनिज चले जाय।।
चँवरा छवायेव, अऊ तुलसी जगायेव,
रे सुवना, नयन के तीर बरसायेव।।
तुलसी के बिदा करे सुगुवा–सुगुवा,
रे सुवना, नयन के दिया रे जलायेव।।
नयन के तीर झरय जइसे ओखराती,
रे सुवना, अँचरा मा लेहें छुपाय।।
काँसे–पीतल करे अदली रे बदली,
रे सुवना, जोड़ी बदल नहीं जाय।।[7]

इस गीत में एक लोक–नारी अपने अत्यंत निकट और प्रिय सुअना (तोतेध्सखी के प्रतीक) से विनम्र आग्रह करती है कि वह उसे छोड़कर न जाए। घर–आँगन में लगी तुलसी में होने वाली हलचल उसके भीतर उठ रही बेचैनी और अनकहे भावों का संकेत है। वह अपनी आँखों में आशा का दीप जलाए रखती है, परन्तु विरह के कारण उसकी आँखों से आँसू झरते रहते हैं। ये आँसू ओस की बूँदों जैसे कोमल और शांत हैं, जिन्हें वह अपने आँचल में छिपा लेती है, गीत के अंत में वह यह स्वीकार करती है कि संसार की वस्तुएँ–काँसा और पीतल तो बदली जा सकती हैं, परन्तु प्रेम और दाम्पत्य की जोड़ी बदली नहीं जा सकती।

सुआ गीतों का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष नारी संवेदना का सशक्त चित्रण है। ये गीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं हैं, बल्कि यह स्त्रियों के आंतरिक संसार का प्रतिबिंब भी हैं। इन गीतों के माध्यम से स्त्रियाँ अपने सुख–दुख, आशा–निराशा, प्रेम–विरह और सामाजिक अनुभवों को व्यक्त करती हैं। यह एक प्रकार से उनके लिए आत्म–अभिव्यक्ति का माध्यम बन जाता है, जहाँ वे अपनी भावनाओं को बिना किसी संकोच के प्रकट कर सकती हैं।भाई बहन के प्रेम का चित्रण भी सुआ गीत में मिलता है इस दृष्टि से सुआ गीतों का अध्ययन न केवल लोकसाहित्य के लिए, बल्कि समाजशास्त्र और नारी अध्ययन के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

सुआ गीत

"कूहुक करय कारी कोइलिया, रे सुवना मोरवा बोलय आधी रता।
मोरवा के बोले होगे भिनसरहा, रे सुवना दियना जले सारी रता।
करमा निकरिगे भोजली सिरिगे, रे सुवना आइस गौरा तिहार।
एक नहीं मानय गांव के गंवटिया, रे सुवना बहिनी गये हे ससुरार।
अचवन चिर–चिर ककुड़ी भिजावय रे सुवना मोर बंधव आवे लेहारा।[8]

काली कोयल कूक रही है। मोर आधी रात से सूर्योदय पूर्व तक लगातार बोल रहा है। करमा और भोजली का त्योहार निकल गया। अब गौरा उत्सव मनाने का दिन आ गया। परन्तु गांव का मुखिया उदास है, क्योंकि उसकी बहन ससुराल में है। और वहां से संदेश भेजी है कि उसे लिवाने के लिए आ जाए।

छत्तीसगढ़ की कृषि–प्रधान अर्थव्यवस्था का प्रभाव भी सुआ गीतों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इन गीतों में धान की फसल, कृषि कार्य और श्रम का महत्व बार–बार उभरकर सामने आता है। महिलाएँ खेतों में काम करते समय या फसल कटाई के बाद इन गीतों को गाकर अपने श्रम को आनंदमय बनाती हैं। इसके साथ ही वे घर–घर जाकर सुआ गीत गाती हैं और धान एकत्र करती हैं, जिससे सामूहिक भोज और उत्सव का आयोजन किया जाता है। यह परंपरा सामाजिक सहयोग और सहभागिता की भावना को सुदृढ़ करती है। सुआ गीत छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक पहचान का एक महत्वपूर्ण अंग हैं। ये न केवल लोकसंस्कृति के संरक्षण में सहायक हैं, बल्कि सामाजिक एकता और सामूहिकता को भी प्रोत्साहित करते हैं। इन गीतों के माध्यम से परंपराएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती हैं, जिससे सांस्कृतिक निरंतरता बनी रहती है।

"कहवा रहिये मोंगरी मछरी न रे सुआ हो, कहवा रे दुधनाग।
जल बीच रहिये मोंगरी मछरी न रे सुआ हो, भोंड़ में रे दुधनाग।
का चारा चरथे मोंगरी मछरी न रे सुआ हो, का चारा चरथे दुधनाग।
सावा कोदो खाय मोंगरी मछरी न रे सुआ हो, दूध के पियसवा दुधनाग।"[9]

सुआ गीत सवाल–जवाब के रूप में भी होता है। नारी प्रश्न करती है कि मोंगरी मछली एवं नाग सर्प कहाँ रहते हैं? जल के बीच में मोंगरी मछली रहती है तथा दूध नाग भिंभोरा (सर्प की बांबी) में रहता है। मोंगरी मछली और दुधनाग का भोजन क्या है? मोंगरी मछली सबसे छोटा अनाज (कोदो) खाती है तथा नाग सर्प दूध पीते हैं। सुआ गीतों में पौराणिक घटनाओं और पात्रों का वर्णन भी मिलता हैं इस सुआ गीत में रामायण की कथा के माध्यम से विरह, असहायता और स्त्री–भावना की अभिव्यक्ति की गई है। गीत में सीता हरण की घटना का लोकभाषा में वर्णन मिलता है।

तरी हरी नाना मोर ना नारी नाना,
मैं का जानवं मैं का करवँ मोर राम नइहे ओ

मोर सीता ल लेगे, लंका के रावन ओ
जोगी के रूप धरे निशाचर दे भिक्षा मोहे माई
मैं का जानवं मैं का करवँ मोर राम नइहे ओ
लेके भिक्षा अंगना बीच ठाढ़े, रथ में लिए चढ़ाई
मैं का जानवं मैं का करवँ मोर राम नइहे ओ
काकर हो तुम धिया पतोहिया, काकर हो भोजाई
मैं का जानवं मैं का करवँ मोर राम नइहे ओ
काकर हो तुम प्रेम सुंदरी, कोन हरे ले जाई
मैं का जानवं मैं का करवँ मोर राम नइहे ओ
राजा दशरथ के धिया पतोहिया, लछमन के भोजाई
मैं का जानवं मैं का करवँ मोर राम नइहे ओ
रामचंद के प्रेम सुंदरी, रावन हर ले जाई
मैं का जानवं मैं का करवँ मोर राम नइहे ओ"[10]

गीत की पंक्तियों में स्त्री कहती है कि "मैं क्या करूँ, मैं क्या जानूँ, मेरे राम यहाँ नहीं हैं।" यह पंक्ति उसकी असहाय स्थिति और दुःख को व्यक्त करती है। इसी बीच रावण साधु (जोगी) का वेश धारण करके भिक्षा माँगने आता है। सीता जी उसे साधु समझकर भिक्षा देने बाहर आती हैं, तब रावण उनका हरण कर लेता है।गीत में आगे सीता जी से पूछा जाता है कि वे किसकी पुत्रवधू, किसकी भाभी और किसकी पत्नी हैं। तब वे अपना परिचय देती हैं कि वे राजा दशरथ की पुत्रवधू, लक्ष्मण की भाभी और श्रीराम की प्रिय पत्नी हैं। इस लोकगीत में रामकथा केवल धार्मिक आख्यान नहीं है, बल्कि लोकभावना और स्त्री संवेदना का हिस्सा भी है। गीत में सीता के दुःख, विरह और असुरक्षा की भावना को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। तथा यह गीत लोकसमाज की राम के प्रति आस्था और सांस्कृतिक चेतना को भी अभिव्यक्त करता है। आधुनिक समय में सुआ गीतों की परंपरा पर कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा है। शहरीकरण और आधुनिकता के कारण लोकगीतों के प्रति रुचि में कमी आई है, जिससे इनके पारंपरिक स्वरूप में परिवर्तन देखने को मिलता है। मंचीय प्रस्तुतियों और व्यावसायिकता के कारण कई बार इन गीतों की मौलिकता प्रभावित होती है। इसके बावजूद सुआ गीत आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में जीवित हैं और अपनी परंपरा को बनाए हुए हैं।

अंततः यह कहा जा सकता है कि सुआ गीत छत्तीसगढ़ की लोकसंस्कृति का एक अमूल्य रत्न हैं, जिनमें न केवल स्त्री जीवन की संवेदनाएँ निहित हैं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन का समग्र चित्र भी विद्यमान है। यह गीत परंपरा हमें यह सिखाती है कि किस प्रकार साधारण जीवन की छोटी–छोटी अनुभूतियाँ भी कला के माध्यम से असाधारण बन जाती हैं। इसलिए इनका संरक्षण केवल सांस्कृतिक आवश्यकता ही नहीं, बल्कि हमारी सामाजिक जिम्मेदारी भी है, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ भी इस समृद्ध लोकपरंपरा से परिचित हो सकें और उससे प्रेरणा प्राप्त कर सकें।

संदर्भ–सूची :–

1 दास, श्रीकृष्ण, लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या.रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर1979, पृ. 173
2 महावर, निरंजन, लोकरंग : छत्तीसगढ़, राधाकृष्ण प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2014., पृ. 65
3 शुक्ल, दयाशंकर, छत्तीसगढ़ी लोकसाहित्य का अध्ययन, वैभव प्रकाशन, रायपुरप्रथम संस्करण, 2011 प्रृ 189
4 महावर, निरंजन,लोकरंगरूछत्तीसगढ़, राधाकृष्ण प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2014. पृ. 68
5 Dakshin koshal today sua geet
6 शरीफ, मोहम्मद, मध्य प्रदेश का लोक संगीत, म.प.हिंदी अकादमी, भोपाल, प्रथम संस्करण, 1999 प्रृ 435–436
7 महावर, निरंजन, लोकरंगरूछत्तीसगढ़, राधाकृष्ण प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2014. पृ. 69
8 दुबे, अमृत लाल, तुलसी के विरवा जगाय, आदिम जाति अनुसंधान संस्था, 1963 पृ
9 नायडू, हनुमंत, छत्तीसगढ़ी लोकगीत, विश्व भारती प्रकाशन, नागपुर 2011, पृ. 45
10 यादव, पी.सी.लाल, छत्तीसगढ़ी लोकजीवन और पर्व, वैभव प्रकाशन, रायपुर प्रथम संस्करण, 2016, पृ. 40

डॉ. जोराम यालाम नाबम के साहित्य में नारी चेतना : एक अध्ययन

डॉ. ताना नाय*

सारांश :– समकालीन हिंदी साहित्य में पूर्वोत्तर भारत की महिला रचनाकारों ने अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। अरुणाचल प्रदेश की प्रमुख साहित्यकार डॉ. जोराम यालाम नाबम ने अपने साहित्य के माध्यम से जनजातीय समाज, संस्कृति तथा महिलाओं के जीवन–संघर्ष को प्रभावशाली अभिव्यक्ति दी है। उनकी कृतियाँ साक्षी है पीपल (कहानी–संग्रह), जंगली फूल (उपन्यास) तथा गाय–गेका की औरतें (संस्मरण) नारी चेतना के विविध आयामों को उद्‌घाटित करती हैं। प्रस्तुत शोध–आलेख में इन कृतियों के आधार पर स्त्री–अस्मिता, सामाजिक स्थिति, सांस्कृतिक भूमिका तथा आत्मसम्मान के प्रश्नों का विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द :– नारी चेतना, जोराम यालाम नाबम, जनजातीय महिला, अरुणाचल प्रदेश, स्त्री–अस्मिता, हिंदी साहित्य।

प्रस्तावना :– भारतीय साहित्य में नारी चेतना का विकास आधुनिक युग की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। स्त्री अब साहित्य में केवल प्रेरणा या सहायक पात्र नहीं रह गई है, बल्कि स्वयं अपने अनुभवों और संघर्षों की कथाकार बनकर उभरी है। पूर्वोत्तर भारत के साहित्य में यह स्वर विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि यहाँ की महिलाओं का जीवन मुख्यधारा के साहित्य में अपेक्षाकृत कम चित्रित हुआ है। डॉ. जोराम यालाम नाबम अरुणाचल प्रदेश की प्रतिष्ठित हिंदी लेखिका हैं। उन्होंने जनजातीय समाज की संस्कृति, लोकविश्वास और स्त्री जीवन को अपनी रचनाओं का केंद्र बनाया है। उनका साहित्य न केवल जनजातीय जीवन का दस्तावेज है, बल्कि महिलाओं की चेतना और आत्मसंघर्ष का भी सशक्त आख्यान है। उनकी प्रमुख कृतियाँ साक्षी है पीपल (कहानी–संग्रह), तानी मोमेन (लोककथा–संग्रह), जंगली फूल (उपन्यास) तथा गाय–गेका की औरतें (संस्मरण) हैं।

नारी चेतना की अवधारणा :– नारी चेतना से आशय स्त्री के अपने अस्तित्व, अधिकार, सम्मान और स्वतंत्र पहचान के प्रति जागरूक होने से है। यह चेतना स्त्री को सामाजिक बंधनों से मुक्त कर उसके व्यक्तित्व के विकास की ओर अग्रसर करती है। साहित्य में नारी चेतना का स्वर स्त्री के अनुभवों, संघर्षों, आकांक्षाओं और आत्मनिर्णय की अभिव्यक्ति के रूप में दिखाई देता है।

डॉ. जोराम यालाम नाबम का साहित्यिक परिचय :– डॉ. जोराम यालाम नाबम का जन्म अरुणाचल प्रदेश के लोअर सुबानसिरी जिले के जोराम गाँव में हुआ। उन्होंने हिंदी में उच्च शिक्षा प्राप्त की और राजीव गांधी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में विभागाध्यक्ष (HOD) के पद पर कार्यरत हैं। उनका साहित्य आदिवासी समाज के जीवन, संस्कृति और अस्तित्व से गहराई से जुड़ा हुआ है। उनकी रचनाओं का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि वे जनजातीय समाज को बाहरी दृष्टि से नहीं, बल्कि भीतर से प्रस्तुत करती हैं। यही कारण है कि उनके साहित्य में स्त्रियों का जीवन अत्यंत स्वाभाविक और यथार्थ रूप में सामने आता है।

'साक्षी है पीपल' में नारी चेतना :– साक्षी है पीपल डॉ. जोराम यालाम नाबम का पहला कहानी–संग्रह है, जिसमें स्त्रियाँ अधिकांश कहानियों के केंद्र में हैं। कहानियाँ अरुणाचल प्रदेश के ग्रामीण और जनजातीय जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती हैं। इन कहानियों में स्त्री केवल परिवार की सदस्य नहीं, बल्कि समाज की आधारशिला के रूप में दिखाई देती है। वह घर और खेत, दोनों का दायित्व निभाती है। अनेक कठिन परिस्थितियों में भी वह परिवार को संभालती है। लेखिका ने स्त्री के श्रम, त्याग और मानसिक संघर्ष को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया है। कहानी–संग्रह की महिलाओं में आत्मसम्मान और आत्मनिर्भरता की भावना दिखाई देती है। वे परिस्थितियों के आगे पूर्णतः समर्पण नहीं करतीं, बल्कि संघर्ष करती हैं।

***सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, बिन्नी यंगा राजकीय महिला महाविद्यालय, पोमा, अरुणाचल प्रदेश।**

शिक्षा और आत्मनिर्भरता का संघर्ष :– उपन्यास में स्त्रियाँ शिक्षा को अपने विकास का साधन मानती हैं। वे अशिक्षा और सामाजिक बाधाओं के बावजूद आगे बढ़ने का प्रयास करती हैं। उदाहरण– महिला पात्रों की यह आकांक्षा दिखाई देती है कि शिक्षा के माध्यम से वे अपने जीवन को बेहतर बना सकें और समाज में सम्मानजनक स्थान प्राप्त करें। यही नारी चेतना का मूल स्वर है।

'जंगली फूल' में नारी चेतना :– जंगली फूल डॉ. जोराम यालाम नाबम का चर्चित उपन्यास है। इसमें तानी समाज के इतिहास, संस्कृति और सामाजिक जीवन का चित्रण मिलता है। उपन्यास विशेष रूप से महिलाओं की स्थिति और उनके प्रति समाज की दृष्टि का गंभीर विश्लेषण करता है। उपन्यास में अनेक महिला पात्र ऐसे हैं, जो सामाजिक बंधनों और रूढ़ियों का सामना करती हैं। वे केवल पुरुषों की इच्छाओं का माध्यम नहीं हैं, बल्कि अपनी स्वतंत्र भावनाएँ और विचार रखती हैं। लेखिका ने स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार, सामाजिक असमानता और रूढ़िगत सोच का विरोध किया है। इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह स्त्री को दया की पात्र के रूप में नहीं, बल्कि परिवर्तन की वाहक के रूप में प्रस्तुत करता है। स्त्री अपने साहस और विवेक से समाज को नई दिशा देने की क्षमता रखती है।

'गाय–गेका की औरतें' में नारी चेतना :–

गाय–गेका की औरतें संस्मरणात्मक कृति है, जिसमें न्यीशी समुदाय के ग्रामीण जीवन का चित्रण मिलता है। पुस्तक का मुख्य केंद्र महिलाओं का जीवन, उनके अनुभव, संघर्ष, रीति–रिवाज और सामाजिक भूमिका है। इस कृति में महिलाओं को संस्कृति की संरक्षक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वे लोक परंपराओं, सामाजिक मूल्यों और सामुदायिक जीवन की निरंतरता बनाए रखती हैं। साथ ही, लेखिका यह भी दिखाती हैं कि इन महिलाओं को अनेक कठिनाइयों और सामाजिक दबावों का सामना करना पड़ता है। कृति में स्त्री–जीवन के सुख–दुख, आशा–निराशा और संघर्ष का अत्यंत मार्मिक चित्रण है। यहाँ नारी चेतना आत्मसम्मान, सामुदायिक उत्तरदायित्व और सांस्कृतिक गौरव के रूप में प्रकट होती है।

डॉ. जोराम यालाम नाबम के साहित्य में नारी चेतना के प्रमुख आयाम

1. स्त्री–अस्मिता :– लेखिका स्त्री को स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में स्वीकार करती हैं। उनकी रचनाओं में स्त्री अपनी पहचान स्वयं निर्मित करती है। गाय–गेका की औरतें में नारी की अस्मिता और पहचान को एक बहुत ही सहज और अनौपचारिक रूप में दर्शाया गया है। यहाँ नारी–अस्मिता के कुछ प्रमुख पहलुओं का वर्णन है– "'छोटी माँ' (यारंग) के माध्यम से यह दिखाया (तक्रिया कलाम) के जरिए व्यक्त करती हैं।" "आईना देखी, कोपा बाँदी, उर्रे गेंद पूल।"[1] जंगली फूल में नारी की अस्मिता (प्कमदजपजल) और उसकी स्थिति को मुख्य पात्र 'आसीन' के माध्यम से दर्शाया गया है, जो नारी–अस्मिता की झलक पेश करते हैं– "उसने गाँव के लोगों को 'कपास से कपड़े बुनना सिखाया' और 'अपाप से ओप्पो बनाना' सिखाया।"[2] यहाँ पर पारंपरिक तौर पर अपाप से आप्पो, यानी कि घरेलू शराब, बनाना। दायित्व और त्याग, तुलनात्मक रूप से, नारी को "हजारों जिम्मेदारियों" के बीच दिखाया गया है। कम उम्र में माँ बनने और परिवार व समाज के प्रति उसके समर्पण को उसकी अस्मिता के एक अभिन्न अंग (देखभाल करने वाली और पोषक) के रूप में प्रस्तुत किया गया है।[3] यहाँ यह दर्शाता है कि नारी केवल घर की शोभा नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक विकास में योगदान देने वाली एक सशक्त इकाई है।

2. पारिवारिक और सामाजिक जिम्मेदारी :– यहाँ पर लेखिका ने दिखाया है कि गाँव में 'धरती पूजन' के समय महिलाएँ धान कूटने और उसे सुखाकर रखने जैसे महत्वपूर्ण कार्यों में व्यस्त हैं– "आज गाँव में धरती पूजन हुआ था। कोई भी गाँव वाला खेत पर नहीं गया था। धान कूटकर रखना या कल काटने के लिए आज सुखाकर रखना सबको जरूरी लग रहा था। गाँव के हर घर से धान कटने की आवाज आ रही थीं। पूजा का दूसरा दिन सबके लिए फुरसत का हुआ करता है।"[4] यह उनके आर्थिक और घरेलू प्रबंधन में आत्मनिर्भर होने का प्रमाण है।

3. अनुशासन और नेतृत्व :– जब बच्चे (ऐपा और तालू) शरारत करते हैं, तो तातो की माँ तुरंत दखल देती है। धान काटती तातो की माँ वहीं से चिल्लाई– "ऐपा और तालू का काम है, मेरे भोले बच्चों को सताना।

आ, आ, बाहर आ, मैं बताती हूँ तुम्हें, वह लोमड़ी है या हिरण। जल्दी निकल, बदमाश!" गुस्से में वह लाल हो गईं। वह न केवल उन्हें डाँटती है, बल्कि स्थिति को नियंत्रित भी करती है, जो एक सशक्त और जागरूक नारी–छवि को दर्शाता है।[5] उपन्यास में स्त्री–पुरुष के बीच बराबरी और मित्रता को आदर्श माना गया है। लेखिका ने दिखाया है कि आदिवासी समाज की स्त्रियाँ अपनी आजीविका चलाने के लिए कृषि और जंगल पर निर्भर होते हुए भी परिवार में एक मजबूत, आत्मनिर्भर और निर्णायक भूमिका निभाती हैं। महिलाएँ आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर सक्रिय भूमिका निभाती हैं। वे परिवार और समाज, दोनों की महत्वपूर्ण आधारशिला हैं।

4. सांस्कृतिक और परंपरा :– स्त्रियाँ लोकसंस्कृति और परंपराओं की संवाहक हैं। यहाँ पर सांस्कृतिक परंपरा और विवाह के रीति–रिवाजों का सजीव चित्रण किया गया है। यहाँ कुछ प्रमुख उदाहरण दिए गए हैं– "गाँव की औरतों ने एकजुट होकर शादी की तैयारी में मदद की। वे अपने घरों से 'मडुआ' (अनाज) लाईं और रात–दिन काम करके धान कूटा।" लेखिका ने पारंपरिक वेश–भूषा को सहज ढंग से दर्शाया है, जैसे– "दुल्हन को पारंपरिक तरीके से सजाया गया, जिसमें शामिल हैं– कंधे से तलवों तक लिपटा सफेद सूती कपड़ा। गले में नीले और सफेद रंग की भारी मालाएँ। कमर में लिपटी हुई 'हूही' (एक पारंपरिक कमरबंद), जिसे पाठ में साँप की तरह बताया गया है। दोनों हाथों में सफेद चूड़ियाँ। सिर पर बाँस के बने फूल के साथ 'दुम्पिन' (स्त्रियों द्वारा पहना जाने वाला पारंपरिक मुकुट)।"[6] लेखिका ने माँ के गले की 'बीड्स की माला' को सिर्फ एक आभूषण नहीं, बल्कि उनके पूर्वजों की निशानी बताया है। वह उसे कभी खुद से अलग नहीं करतीं, जो यह दर्शाता है कि नारी किस प्रकार अपनी पारिवारिक विरासत को सहेजकर रखती है। माँ नीले रंग को 'स्त्रीत्व का प्रतीक' मानती हैं। यह दिखाता है कि उनके लिए रंग और वस्तुएँ केवल भौतिक नहीं, बल्कि गहरे सांस्कृतिक और पारंपरिक अर्थ रखते हैं।

5. नारी शिक्षा पर जागरूकता :–

नारी शिक्षा के महत्व को इन बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है– "उस दिन बाबा बेटी को अपने साथ ले गए। और दोयमुख के सरकारी स्कूल में भर्ती करवा दिया। वह होस्टल में रहने लगी।"[7]

6. संघर्ष और प्रतिरोध :– महिलाएँ अन्याय और शोषण के विरुद्ध संघर्ष करती हैं। यह प्रतिरोध नारी चेतना का महत्वपूर्ण पक्ष है। यहाँ पर नारी अपनी असहनीय पीड़ा के बीच उसकी चीखें– "तानी... तानी... दोन्यी तानी... बचाओ!"[8] उसके संघर्ष और मदद की अंतिम पुकार को दर्शाती हैं। 'शीर्षक 'रंगिया' के आधार पर नारी संघर्ष और प्रतिरोध के चित्रण को समझा जा सकता है। लेखिका ने मुख्य पात्र (आसीन) के मानसिक द्वंद्व को दिखाया गया है। वह अपने 'अपनों से दूर' है, जिसके कारण उसके चेहरे पर 'अधूरेपन का भाव' तैरता रहता है।''[9] एक "रानी" की तरह सम्मान मिलने के बावजूद, वह अपनी जड़ों से कटने के कारण उदास है। यह एक स्त्री के अपने परिवेश से बिछड़ने और नए परिवेश में खुद को ढालने के आंतरिक संघर्ष को दर्शाता है। उसकी चुप्पी और उसका "खिलखिलाकर न हँसना"[10] एक तरह का मौन प्रतिरोध है। वह बाहरी सुख–सुविधाओं और मान–सम्मान के बावजूद अपनी आंतरिक पीड़ा को छिपाती नहीं है, जिससे उसके परिवेश के प्रति उसकी अरुचि साफ झलकती है।

7. व्यावहारिक और यथार्थवादी सोच :– जब लेखिका फूलों की सुंदरता की बात करती हैं, तो माँ उन्हें जीवन की वास्तविकता समझाती हैं। वे कहती हैं कि किसानों के लिए बागान की शोभा सब्जियों और अनाज (मकई, मिर्च) से है। वे व्यावहारिक हैं और मानती हैं कि केवल सुंदरता से पेट नहीं भरताकृ"फूलों को यहाँ जगह देने लगे, तो हम भूखों मर जाएँगे।"[11] इस काव्यांश में भावनाओं के साथ–साथ जीवन की कठोर सच्चाई और व्यावहारिक अनुभवों का चित्रण मिलता है। धोखे और वादों की हकीकत को हम कविता की पंक्तियों द्वारा देख सकते हैं– "साथ–साथ चलने का वादा था– झूठे निकले।" साफ तौर पर यह दर्शाती हैं कि वह केवल कल्पनाओं में नहीं जीती। वह जानती है कि अक्सर वादे टूट जाते हैं और लोग बदल जाते हैं। यह उसके जीवन के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण को दिखाता है। वह अपनी स्थिति को "जड़ें खो गई" और "हवा में उड़ता वृक्ष" कहकर वर्णित करती है। यहाँ वह अपनी असुरक्षा और पहचान के संकट को बहुत

ही ईमानदारी (Practicality) के साथ स्वीकार कर रही है।[12] "मच्छरों वाल। उसकी बातें लोगों को क्रोधित करती हैं। दोनों हाथों को मलते, मक्खियों–सा दिन–रात बुदबुदाता।"[13] उक्त पंक्तियों में किसी व्यक्ति के व्यवहार का चित्रण (क्रोधित करने वाली बातें, मक्खियों–सा हाथ मलना) यह संकेत देता है कि वह पात्रों के असली स्वभाव और उनकी कमियों को गहराई से परखने की क्षमता रखती है।

8. श्रम और पहचान :– लेखिका ने 'बॉर्डर रोड टास्क फोर्स' (BRTF) की मजदूर सहेलियों का जिक्र किया है, जो दर्शाता है कि नारियों की अस्मिता उनके कठिन परिश्रम और कार्यक्षेत्र से भी जुड़ी हुई है। यहाँ पर छोटी माँ द्वारा श्रम सीखते हुए– "छोटी माँ ने अपनी ग्रिफ (बॉर्डर रोड टास्क फोर्स, BRTF) की मजदूरन सहेली से सीख लिया होगा।"[14] इतना ही नहीं, खेतों में 'धान रोपने' जैसे कठिन कार्य में उसकी निपुणता को "कमाल" बताया गया है, जो नारी–शक्ति और उनके कठिन परिश्रम का प्रतीक है। यहाँ यापी के श्रम की इतनी अधिक महत्ता है कि गाँव के अलग–अलग किसान (जैसे यातर और रिनी) उसे अपने खेत में काम पर बुलाने के लिए होड़ कर रहे हैं, जैसे– "कल मेरे खेत में धान रोपने जाना है। किसी भी हाल में यापी को भेज देना। उसके हाथ तो बस जैसे ओखली में दो औरतें जल्दी–जल्दी धान कूट रही हों। कमाल की लड़की पैदा की है तूने।"[15] गाय–गेका की औरतें में लेखिका ने माँ को एक मेहनती और सादगी पसंद महिला के रूप में दिखाया गया है। वे खेत में 'घास छीलने' का काम करती हैं, जो उनके श्रमशील व्यक्तित्व को दर्शाता है। उनके माथे पर चमकती पसीने की बूँदें उनकी कड़ी मेहनत का प्रतीक हैं– "चिलचिलाती धूप में बागान के कोने में खड़ा वह पेड़, जिसे चिपककर मैं तब तक खड़ी रहती, जब तक माँ घास छील रही होतीं।"[16]

निष्कर्ष :– डॉ. जोराम यालाम का साहित्य अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज और महिला–जीवन का महत्वपूर्ण दस्तावेज है। उनकी रचनाओं में नारी चेतना केवल स्त्री–अधिकारों की मांग तक सीमित नहीं है, बल्कि आत्मसम्मान, सांस्कृतिक पहचान, सामाजिक समानता और मानवीय गरिमा की व्यापक अवधारणा से जुड़ी हुई है। नारी को केवल एक घरेलू पात्र के रूप में नहीं, बल्कि समाज को शिक्षित करने वाली और नए कौशल सिखाने वाली एक प्रेरक शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। साक्षी है पीपल, जंगली फूल तथा गाय–गेका की औरतें में प्रस्तुत महिला पात्र संघर्षशील, संवेदनशील और आत्मनिर्भर हैं। इस दृष्टि से डॉ. जोराम यालाम नाबम का साहित्य भारतीय नारी–विमर्श को नई दिशा प्रदान करता है।

संदर्भ–सूची :–

1. गाय–गेका की औरते– डॉ. जोराम यालाम, राधाकृष्णन पेपरबैक्स, प्रथम संस्करण, 2023, जी–17, जगतपुरी, दिल्ली–110051, पृष्ठ सं. 47।
2. वही, पृष्ठ सं. 38।
3. वहीं।
4. साक्षी है पीपल– डॉ. जोराम यालाम, राधाकृष्णन पेपरबैक्स, प्रथम संस्करण, 2023, जी–17, जगतपुरी, दिल्ली–110051, पृष्ठ सं. 34।
5. वहीं।
6. वही, पृष्ठ सं. 91।
7. वही, पृष्ठ सं. 125।
8. ंगली फूल– डॉ. जोराम यालाम, राधाकृष्णन पेपरबैक्स, प्रथम संस्करण, 2023, जी–17, जगतपुरी, दिल्ली–110051, जपृष्ठ सं. 22।
9. वही, पृष्ठ सं. 38।
10. वही, पृष्ठ सं. 38।
11. गाय–गेका की औरतें, पृष्ठ सं. 79।
12. वही, पृष्ठ सं. 75।
13. वही, पृष्ठ सं. 75।
14. वही, पृष्ठ सं. 47।
15. साक्षी है पीपल, पृष्ठ सं. 43।
16. गाय–गेका की औरतें, पृष्ठ सं. 79।

झुमुर : श्रम, संघर्ष और विस्थापन की धुन
(असम के चाय जनजाति के विशेष संदर्भ में)

डॉ. बेबी विश्वकर्मा *

शोध सार :— लोक गीत प्रत्येक समुदाय विशेष के सामूहिक ज्ञान, परंपरा एवं स्मृतियों की जमापुंजी है। अपने अतीत से जुड़ने की अन्यतम सेतु है। असम के चाय जनजातियों द्वारा गाये जाने वाले झुमुर गीतों से भी उनकी इतिहास झाँकती है। औपनिवेशिक शोषण, छल, स्वप्नभंग, अनेच्छुक प्रवास और विस्थापन के दर्द से झुमुर गीतों की बोल बुनी गई हैं। आज चाय जनजाति की संज्ञा दी गई इन श्रमिकों को भारत के विभिन्न प्रान्तों से जबरन या धोखे से लाया गया था। इन श्रमिकों का संबंध सौ से भी अधिक जनजातियों से था लेकिन असम में उनका जनजातीय पृष्ठभूमि लुप्त हो गया। अपना जड़, जमीन, जातीय अस्मिता और भाषा से बिछड़ने की विलाप झुमुर गीतों में गूँजती है। असम में रस—बस गई इस सर्वहारा वर्ग का अतीत एवं वर्तमान का अध्ययन झुमुर गीतों के आधार पर करने का प्रयास प्रस्तुत शोध आलेख में की गई है।

बीज शब्द :— झुमुर, असम की चाय जनजाति, औपनिवेशिक शोषण, छल, स्वप्नभंग, विस्थापन, जातीय अस्मिता।

प्रस्तावना :— चाय हमारे दैनंदिन जीवन का अभिन्न अंग है। यह सिर्फ एक पेय नहीं है, हमारे सुबह—शाम का साथी है, दोस्तों और अपनों के साथ बैठे महफिल की जान है, रिमझिम बारिश में रोमांच का स्वाद है, ठंड में गर्माहट का एहसास है। चाय के बगैर जैसे हमारी जिंदगी अधूरी है। परंतु विश्वभर में उत्कृष्ट चाय उत्पादन के लिए प्रसिद्ध असम के चाय उद्योग में जिन श्रमिकों का खून—पसीना एकाकार है, उनका अतीत औपनिवेशिक शोषण, विस्थापन और बंधुआ मजदूरी का स्याह अध्याय है तथा वर्तमान गरीबी, सामाजिक अवज्ञा, आर्थिक शोषण, अशिक्षा और अज्ञानता में जकड़ा है।

विश्लेषण :— असम में चाय का व्यावसायिक उत्पादन अंग्रेजों ने प्रारम्भ किया। इन चाय बागानों में काम करने के लिए स्थानीय लोग तैयार नहीं थे क्योंकि वे पहले से ही कृषि एवं अन्य पारंपरिक कार्यों में व्यस्त थे। इसके उपरांत चाय बागान में कम वेतन में ब्रिटिश के अधीन मजदूरी करना उन्हें पसंद नहीं आया। इसकारण अंग्रेजों ने सस्ता, आज्ञाकारी और आसानी से अनुशासित होनेवाले प्रवासी श्रमिक वर्ग को नियुक्त करना शुरू किया। बिहार, ओड़िशा, झारखंड, छत्तीसगढ़, बंगाल आदि प्रान्तों से आए ये प्रवासी मजदूर संथाल, खड़िया, मुंडा, उरांव आदि भिन्न—भिन्न आदिवासी समुदाय से संबंधित थे लेकिन असम में इनका जनजातीय पृष्ठभूमि लुप्त हो गया और मजदूर के रूप में इनकी एक ही पहचान सर्वविदित हुआ। वे 'बागानिया', 'चाय बागान श्रमिक' अथवा 'चाय जनजाति' के रूप में पहचाने जाने लगे। झुमुर गीत और नृत्य इन्हीं प्रवासी मजदूरों की सामाजिक, सांस्कृतिक और व्यक्तिगत अभिव्यक्ति का माध्यम है। झुमुर गीत इस विस्थापित समुदाय की सामूहिक स्मृति की जमापुंजी है जिसमें इस समुदाय की ज्ञान एवं सांस्कृतिक परंपरा के साथ—साथ इनका कठोर जीवन संघर्ष, विस्थापन का दर्द, बिछड़े प्रांत की भूली—बिसरी यादें और अपनी जन्मभूमि में पुनः लौटने की तीव्र आकांक्षा अभिव्यक्त है। इन गीतों में प्रवासी मजदूरों द्वारा असम को लेकर देखे गए सपने, स्वर्णिम भविष्य की आशा और अंग्रेजों के प्रतिनिधियों द्वारा दिया गया धोखे की स्मृतियाँ दर्ज हैं—

(1)

"आसाम देशेर चा
पात पानी बोली बर मीठा,

*हिन्दी विभाग, सहायक प्राध्यापक, नगाँव गर्ल्स कॉलेज, नगाँव (असम)

चल सखी चल जाबो
बागाने तुलिब पाता आनंद मने"
अनुवाद "असम देश की चाय
जहाँ की पत्तें, पानी और बोली भी है मीठी
चलो सखी, हम चलें
बागान में तोड़ने पत्ते आनंद मन से"

(2)

"चल मिनी आसाम जाब, देशे बर दुख रे
आसाम देशे रे मिनी चा बागान हरियाल
कूर मारा जेमन तेमन पाता तोला काम गो
हाय जदूराम, फाकी दिया पाठाइली आसाम
सरदार बोले काम–काम, बाबू बोले धरि आन
साहाब बोले लिब पिठेर चाम
हाय जदूराम, फाकी दिया पाठाइली आसाम"

अनुवाद

"चलो मिनी असम चलें
देश में बहुत दुख रे
आसाम की चाय की हरियाली बागान में
जैसे–तैसे कुदाल मारेंगे
पत्ता तोड़ने का है काम
हाय जदुराम छल कर ले आए आसाम
सरदार बोलता है काम करो–काम करो
बाबू बोलता है पकड़कर लाओ
साहब बोलता है उधेड़ेगा पीठ की छाल
हाय जदुराम छल कर ले आए आसाम"

'मिनी' शब्द चाय बागान की प्रत्येक महिला श्रमिक का पर्याय है क्योंकि अक्सर इन्हें 'मिनी' नाम से ही पुकारा जाता है। असम में इन प्रवासी श्रमिकों के प्रवजन को बढ़ाने की प्रक्रिया अंग्रेज एजेन्टों के माध्यम से सफल हुआ। एजेन्टों ने उत्तर भारत के उन आदिवासी क्षेत्र के लोगों को लुभाने का काम किया जो सूखा, भुखमरी, आकाल से पीड़ित थे। "इन क्षेत्रों में ये एजेंट अपने छलपूर्ण नियुक्ति के तरीकों के कारण कुप्रसिद्ध थे, विशेषकर महिलाओं की नियुक्ति के लिए। वे लोगों को आकर्षित करने के लिए अनेक प्रकार के छल–कपट का सहारा लेते थे। वे महिलाओं को बेहतर विवाह के अवसर मिलने का लालच देते थे तथा चाय–बागान सरकार द्वारा संचालित होने का झूठा दावा करते थे। कई बार वे सरकारी अधिकारियों जैसा वेश धारण करके लोगों को हरे–भरे और अत्यंत सुंदर चाय बागान का झांसा देकर धोखे से बागान ले जाते थे"। झुमुर गीतों में अक्सर 'जदुराम' का उल्लेख मिलता है जो दरअसल अंग्रेज एजेंट का प्रतीक है। जदुराम के बहकावे में आकर सुंदर भविष्य की आशा से अपनी जन्मभूमि छोड़ने का आक्षेप इन गीतों में बयान होती है। झुमुर गीतों में 'सरदार', 'बाबू' और 'साहब' के साँठ–गांठ से बना क्रूर व्यवस्था के प्रति उलाहना दी गई है। चाय मजदूर हर मौसम में, हर प्रतिकूल स्थिति में प्रतिदिन मजदूरी करने को विवश था। बावजूद इसके सरदार की नजर हमेशा मजदूर पर गढ़ी रहती थी, काम में थोड़ी सी भी ढिल की सजा, वेतन की कटौती अथवा शारीरिक उत्पीड़न के रूप में मिलती थी। वे इस कैद से मुक्त भी नहीं हो सकते थे क्योंकि बाबू सदैव उनको पकड़ने के लिए और अंग्रेज साहब उन पर निर्मम प्रहार करने की अवसर ढूंढते रहते थे। चाय मजदूर अभी भी कठोर श्रम, आर्थिक चुनौतियाँ और दयनीय स्थिति के साथ जीवन निर्वाह करने को अभिशप्त हैं। औपनिवेशिक उत्पीड़न और शोषण का दंश झेलने की विवशता इन गीतों में गूँजती है–

(3)

"रांची से भेजाल कुली
दे देलाई कालाम–छूरी
डाले–डाले बापू नजर मिलाइछे
डाले–डाले बापू नजर बैठाइछे"
अनुवाद "रांची से भेजे गए कुली
दे दिया कालाम छूरी
डाल–डाल में बापू की नजरें मिलती हैं
डाल–डाल में बापू की नजरें बैठी हैं"

यह गीत 'कुली' अर्थात चाय बागानों के मजदूरों के ह्रदय में झाँकती है। रांची से लाये गए इन मजदूरों का जीवन ब्रिटिश सरकार के सख्त निगरानी में बीतता था, जहां अनुशासन के नाम पर कठोर से कठोर दंड दिया जाता था। "इन मजदूरों को विशेष स्थानों पर रखा जाता था, जिन्हें 'कुली लाइंस' कहा जाता था। कई बार सूचना दिये बिना उन्हें हिरासत में रखा जाता था और उन्हें शारीरिक दंड भी झेलना पड़ता था, जैसे मार–पीट करना या बागान की इमारतों में बंद करना"। अधिकारियों के दमनकारी रवैये के प्रति मजदूरों का क्षोभ व असंतोष इन गीतों में व्यक्त हुआ है। जबरन या धोखे से बंधुआ बनाए गए इन मजदूरों के प्रति ब्रिटिश सरकार और अधिकारियों के अमानवीय व्यवहार के दृष्टांत इतिहास में दर्ज हैं। जो श्रमिक उन दमघोटूँ स्थिति से भागने का प्रयास करता उसे कठिन दंड भोगना पड़ता। भागने या दूसरों को भागने में मदद करने पर कोड़े लगाए जाने जैसे कई घटनाओं का जिक्र असम के तत्कालीन मुख्य आयुक्त हेनरी कॉटन ने किया है। इसके अतिरिकित 'कई मजदूर अपनी अनुबंध की अवधि समाप्त होने पर उसे नवीनीकृत करने से इनकार करते थे। किन्तु बागान मालिक अक्सर अवैध तरीकों का सहारा लेकर उन पर दवाब डालते थे या उन्हें धोखे में रखकर अनुबंध का नवीनीकरण करवाते थे, जिससे बंधुआ श्रमिक के रूप में उनकी सेवा अवधि और अधिक बढ़ जाती थी।

(4)

"छोटानागपुर छोड़ी रे, केने आसाम आइली?
पीठा–भातेर मोहे लोइया, जीबन ताइ हेराइली
आम गाछे बहू आम, तेतुल गाछे तेतुल रे
छोटनागपुर छोड़ी आइली, भूली गेली कुल रे...
आसामेर बचल माटी, बचल बचल चा बागाने
रोको–रोको नदी बहे, कांदे मोर पराने
छोड़ी आइली मायेर कुलो, छोड़ी आइली बापेर घर
आसामे आसिया हली, निजेर देशे पर रे"
अनुवाद :– "छोटानागपुर छोड़ के क्यों असम आया?
पीठा–भात की मोह में जीवन ही हार गया
आम है पैड़ो में लदा हुआ, इमली भी है लदा रे
छोटनागपुर छोड़ कर, कुल ही भूल गया रे
आसाम की मिट्टी, यहाँ की चाय बागान
टेढ़ी–मेढ़ी नदियां बहे, रोता मेरा प्राण रे।
छोड़ आया माँ की गोद, छोड़ा पिता का घर
आसाम आकर हुआ मैं निज देश से ही दूर"।

इन पंक्तियों में अपनी जन्मभूमि, अपना घर–परिवार, चिर–परिचित लोगों और जगहों से चिर–विछोह की अथाह वेदना अभिव्यक्त हुआ है। ब्रिटिश एजेंट के झांसों में आकर ये मजदूर असम तो आ गए लेकिन अपना गाँव–परिवार से पुनः कभी न मिल पाने की पीड़ा और अपरिचित जगह के अपरिचित तौर–तरीकों में

खुद को ढालने की विवशता में इनका हृदय प्रतिपल तड़पता रहा। जब भी अपने चारों ओर ध्यान जाता, अजनबीयत का एहसास तीव्र होने लगती, दिल में हुक उठने लगती थी। इन झुमुर गीतों में लाखों अरमान मन में सँजोये असम आए प्रवासी मजदूरों की टूटे हुए सपनों की चटकन गूँजती है। इस कड़वा यथार्थ का एहसास कि असम की भूमि में बसा उनके कल्पना का सुंदर सम्पन्न भविष्य एक मृगतृष्णा मात्र है, उनमें अनिवर्चनीय वेदना, पश्चाताप और जन्मभूमि पुनः लौटने की तीव्र उत्कंठा भर देती थी। वे पल–पल तड़पते थे, अपनों से मिलने को तरसते थे लेकिन उस प्रवास से मुक्ति का अवकाश नहीं मिल पाता था।

असम के चाय जनजाति का इतिहास मानव शोषण एवं उत्पीड़न का कलंकित अध्याय है। बंधुआ मजदूरी के लिए विवश किए गए इन मजदूरों को 'कुली लाइंस' के प्रतिबंधित इलाकों में रखा जाता था ताकि ये बाहरी प्रभाव से वर्जित रहे। इन 'कुली लाइंस' की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। बागान मालिकों को केवल मजदूरों के श्रम से मतलब था, मजदूरों से नहीं। इसीलिए मजदूरों की स्वास्थ्य, स्वच्छता, शुद्ध पानी, शौचालय और आवासीय बंदोबस्त की ओर लेशमात्र भी ध्यान नहीं दिया गया। दमघोंटू, संकीर्ण, दुर्गंधमय इलाकों में अस्वास्थ्यकर परिवेश में रहने और प्रशासन की क्रूरता झेलते हुए कड़ी मेहनत के साथ कष्टमय जीवन निर्वाह करने के लिए इन्हें विवश किया गया। औपनिवेशिक सत्ता ने इनसे इनका केवल मेहनत ही नहीं छिना, पहचान भी छीन लिया। अपनी मातृभाषा और मातृभूमि प्रत्येक व्यक्ति का गर्व है, उसकी विरासत है। यह हमारी पहचान का केंद्र है, हमारा धरोहर है। लेकिन इन प्रवासी मजदूरों का कैसा दुर्भाग्य है कि अपनी जातीय अस्मिता से ही बिछड़ गए। अंग्रेजों और सरदारों की स्वार्थ लिप्सा ने इन्हें अपने जड़ से उखाड़कर अंतहीन प्रवास का अभिशाप दिया। मातृभाषा को भूलना सिर्फ शब्दों को भूलना नहीं होता, बल्कि पुरखों की तमाम सामूहिक स्मृतियों, संस्कारों और अपने जड़ से कट जाने का गहरा अपराधबोध व पीड़ा है। भारत के विभिन्न प्रान्तों से आए इन मजदूरों का संबंध सौ से भी अधिक जनजातियों एवं आदिवासी समूहों से था। लेकिन अंग्रेजों के लिए इनका जातीय पहचान मूल्यहीन था। उनके लिए ये बस मुनाफा प्राप्ति के साधन थे, निरंतर श्रम करनेवाले तुच्छ श्रेणी के लोग। इसलिए सारे प्रवासी मजदूरों के अस्तित्व से एक ही पहचान चिपकाया गया– 'चाय मजदूर' अथवा 'बागनिया' होने का और उनकी भाषा बनी असमिया, हिन्दी, बांग्ला, नागपुरी का खिचड़ी रूप– 'बागानिया भाषा'–

(5)

"नागपुरेर भाषा भुलाइली
मुंडारी भाषा हाराइली
बागनिया बोलिए एखन
दुखेर गान गाइली"

अनुवाद

"नागपुर की भाषा भूल गया
मुंडारी भाषा भी छूटा
बागनिया बोली में ही अब
दुख का गान गाया"

चाय पत्ता तोड़ने के लिए किसी भी विशेष प्रकार की प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं थी। इसलिए चाय बागान के मालिकों ने इस काम के लिए अप्रशिक्षित महिलाओं को भी नियुक्त करना फायदेमंद समझा। क्योंकि उनसे अत्यंत कम मजूरी में अधिक परिश्रम कराया जा सकता था। महिलाएं अक्सर चाय पत्ती तोड़ने के काम में नियुक्त होती थी और पुरुष कारखाना के काम में नियुक्त थे। लेकिन वर्षा या धूप में, गर्मी या ठंड में दस–बारह घंटे तक खड़े रहकर पत्ता तोड़ने का काम बेहद थकावट भरा और कष्टदायक था। इतनी कठोर मेहनत के बावजूद निर्धारित काम पूर्ण न कर पाने के एवज में उनकी मजूरी काटने के लिए सरदार तत्पर रहते थे। "चूंकि मंजूरी निरीख पर आधारित थी, मजदूरों के लिए पूर्व निर्धारित काम समाप्त करना अनिवार्य था। निरीख ऐसे तय की जाती थी कि एक स्वस्थ व्यक्ति भी समय पर पूरा काम समाप्त नहीं कर पाता था। इस प्रकार सात दिन के मजदूरी के बदले केवल तीन या चार दिन की ही वेतन उन्हें मिल पाता था"। उन मजदूर महिलाओं की अंतहीन पीड़ा और लाचारी इन झुमुर गीतों में घुला है–

(6)

"दुति पाता एकटा कलि, तुलिते आंगूल बेथा हइलो
झोली मोर खालि आछे, दिन ता डूबी गेलो
बाचा मोर गाछेर तलेइ, कांदे–कान्दे घूमाई गेलो
हाजिरा मोर बाबू ए काटल, "कमती उजन हइलो"
अनुवाद : दो पत्ता एक कलि, तोड़ते–तोड़ते उंगली दुखा
झोली मेरी खाली है, दिन तो डूबा
बच्चा मेरा पेड़ के नीचे, रोते–रोते सो गया
मजूरी मेरा काटकर बाबू बोला, "वजन कम हुआ"

सुबह से लेकर शाम तक चाय बागान के बीच ही इन महिला मजदूरों का दिन कटता है। दूसरों के लिए ये हरे–भरे बागान सुंदरता के प्रतीक हैं। प्रकृति की अनुपम सौन्दर्य का प्रमाण है, विश्राम का स्थल है जहां क्षण भर बिताकर उन्हें असीम शांति की प्राप्ति होती है। लेकिन चाय मजदूरों के लिए यह बागान उनका सर्वस्व है। उनके कष्ट का कारण, उनकी रोजी–रोटी का स्रोत, उनके शोषण का स्थल। मजदूर महिलाओं के पास गर्भवती होने पर भी विश्राम का विकल्प नहीं था। विश्राम एक विलासिता था जिसपर उनका अधिकार नहीं था। पेट पालने को मजबूर वह अपने बच्चों को भी कर्मस्थल पर लाती थी, रोते–बिलखते कलेजे के टुकड़े को पेड़ की छाँव तले रख दिनभर अथक परिश्रम करती थी फिर भी वह खाली हाथ घर लौटती थी क्योंकि उसकी मेहनत, बागान मालिक के स्वार्थ की भोग चढ़ जाती थी।

विश्व के सौ में से दस प्रतिशत चाय की मांग की पूर्ति असम करता है। देशभर के लगभग पचास प्रतिशत चाय का उत्पादन यहीं होता है। चाय उद्योग असम की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, बावजूद इसके वे मजदूर दुर्दशाग्रस्त हैं जिन्होंने चाय की फसल को अपनी रक्त और स्वेद से बोया है। जिनकी अश्रु, आहें और आर्तनाद चाय बागान के परिसर में ही गुम है। झुमुर गीतों में इन मजदूरों की यही वेदना और करुण पुकार सुनाई पड़ती है, जो हृदय को व्यथित करता है। अपना जन्मभूमि, अपनी मातृभाषा भुलाकर इन प्रवासी मजदूरों ने असम की भूमि को अथक परिश्रम से सींचा है। लेकिन वह 'सोनार आसाम' इनका नहीं है। वे तो बस उपेक्षित, शोषित, पीड़ित तुच्छ मजदूरों का एक समूह है। अपरिमित ऐश्वर्य तथा संपन्नता का भोग चाय बागान के मालिकों ने किया और इन मजदूरों को इनके हाड़–तोड़ परिश्रम के बदले व्यवस्थित रूप से हाशिए में धकेल दिया गया। इसीलिए वे गाते हैं–

(7)

"देश छोड़े आइली आसाम
भुलाली गो देशेर नाम
आसाम देशे खुलाली बागान
बानाई देली हामरा सोनार आसाम"
अनुवाद : "देश छोड़ आए आसाम
भूला दिया देश का नाम
आसाम में खोला बागान
बनाया हमने सोने का आसाम"

निष्कर्ष :– हालांकि चाय मजदूरों के उत्थान के लिए अनेक प्रयास किए जा रहे हैं, योजनाएँ बनाई जा रही हैं लेकिन उनकी स्थिति में अभी भी पर्याप्त सुधार नहीं हुआ है। अधिकांश आबादी आज भी अशिक्षा, अज्ञानता, कुपोषण, गरीबी और भुखमरी से ग्रस्त है। चाय बागान के मालिक इन मजदूरों के बच्चों के पढ़ने–लिखने को निरुत्साहित करते हैं क्योंकि शिक्षित होने पर उनसे कम मजूरी में चाय बागान की मजदूरी करना असंभव हो जाता है। ये मजदूर आज भी कुली लाइंस में ही निवास कर रहे हैं जहां की आवासीय अवस्था संतोषजनक नहीं है। कई इलाकों में स्वच्छ पेयजल का अभाव इनकी समस्या को दुगुना करता है।

शराब की आसक्ति भी इस समुदाय में पनप रही एक मुख्य समस्या है। इन तमाम समस्याओं से घिरे, कड़कती धूप हो या भीषण वर्षा, प्रतिदिन कठोर परिश्रम करने को मजबूर इन मजदूरों की आंतरिक विलाप झुमुर गीतों के कोमल लय में अथाह वेदना घोलती है। इन गीतों के बोल इस सर्वहारा वर्ग के प्रति हृदय में अवर्णनीय करुणा और सहानुभूति उत्पन्न करती है।

संदर्भ सूची :–

1. Nandini Bhowmik and Samar Kumar Biswas, Harmony in History: Unveiling the History of Women Tea Plantations Workers Through Jhumur Songs, North Bengal Anthropologist Vol. 11-12, North Bengal University, West Bengal 2024, Page no 77-93.
2. https://zubaanprojects.org/projects/axom-deshor-bagisare-sowali-the-girl-from-the-tea-gardens-of-assam/ [Accessed on 05.06.2026 at 11.00 am.
3. Ranjit Dasgupta, From Peasants and Tribesman to Plantation Workers : Colonial Capitalism, Reproduction of Labour Power and Proletarianisation in North East India, *Economic and Political Weekly*, XXI (4), Sameeksha Trust, Mumbai, 1983, Page no 2-10.
4. https://kalidasgupta.com/kalicd2.html [Accessed on 11.06.2026 at 10.00 am.
5. Rana Pratap Behal, Coolie Drivers or Benevolent Paternalists, British Tea Planters in Assam and the Indenture Labour System, *Modern Asian Studies*, 44(1), Cambridge University Press and Assessment, Cambridge, Page no 29-51.
6. Rana Pratap Behal, Tea and Money versus Human Life : The Rise and Fall of the Indenture System in the Assam Tea Plantations 1840-1908, *Journal of Peasant Studies*, 19 (3), Routledge , Oxfordshire, Page no 42-72.
7. https://kalidasgupta.com/kalicd2.html [Accessed on 11.06.2026 at 10.00 am.
8. Nandini Bhowmik and Samar Kumar Biswas, Harmony in History: Unveiling the History of Women Tea Plantations Workers Through Jhumur Songs, North Bengal Anthropologist Vol. 11-12, North Bengal University, West Bengal 2024, Page no 77-93.
9. https://kkhsou.ac.in/web/teaworld/page-details.php?name=Early-Life-in-the-Tea-Garden&page=f44e3f4eacfb9487e2a9ffbb3 [Accessed on 15.06.2026 at 2.00 pm]
10. Nandini Bhowmik and Samar Kumar Biswas, Harmony in History: Unveiling the History of Women Tea Plantations Workers Through Jhumur Songs, North Bengal Anthropologist Vol. 11-12, North Bengal University, West Bengal 2024, Page no 77-93.
11. https://www.youtube.com/watch?v=UoIwbNYw_rk&list=PLIS8HwmBf81ZwbOgG75iJO9pSU7b8I1QO [Accessed on 10.06.2026 at 7 pm
12. कुलदीप सिंह बम्पाल, चाय बागान की कहानी : आदिवासियों की जुबानी, प्यारा केरकट्टा फाउंडेशन और केलुंग बुक्स, रांची, 2025.
13. https://ruralindiaonline.org/hi/library/resource/addressing-the-human-cost-of-assam-tea/, Accessed on 17.06.2026 at 1.00 pm.

रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य में राष्ट्रीय तत्व : क्रांति, संस्कृति और नव-मानवता का समन्वय

सविता*

सारांश :– राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' (1908–1974) हिंदी साहित्य की राष्ट्रीय काव्यधारा के चरम और सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनके काव्य में राष्ट्रीय चेतना केवल विदेशी दासता से मुक्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि यह राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और मानवीय चेतनाओं के समन्वित स्वरूप को अभिव्यक्त करती है। दिनकर की राष्ट्रीयता क्रांतिगर्भित ओज से परिपूर्ण है, जो पराधीनता और शोषण के विरुद्ध हुंकार भरती है। साथ ही, यह भारत के सांस्कृतिक गौरव के पुनरुत्थान और विश्वबंधुत्व की उदात्त मानवीय भावना के साथ भी जुड़ी हुई है। दिनकर की यह समन्वित राष्ट्रीय चेतना उन्हें आधुनिक राष्ट्रीय काव्य का युगचारण सिद्ध करती है। रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य में राष्ट्रीयता एक जीवंत, गतिशील और बहुआयामी अवधारणा के रूप में उभरती है, जो उन्हें उत्तर–छायावादी काल का सबसे प्रखर 'राष्ट्रकवि' बनाती है। उनकी राष्ट्रीयता केवल राजनीतिक स्वतंत्रता की मांग नहीं थी, बल्कि क्रांति, सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक गौरव और वैश्विक मानवता का एक विराट समन्वय थी। दिनकर का कवि–मन उस युग में तैयार हुआ जब गांधी का अहिंसक सत्याग्रह और क्रांतिकारियों का सशस्त्र संघर्ष दोनों धाराएं चरम पर थीं।

स्वतंत्रता–पूर्व की उनकी रचनाओं, जैसे 'रेणुका' और 'हुंकार', में ब्रिटिश सत्ता और निष्क्रियता के विरुद्ध एक प्रलयंकारी विद्रोह का स्वर मुखरित हुआ। उन्होंने 'तांडव' (विध्वंस) के माध्यम से जर्जर व्यवस्था को ध्वस्त करने का आह्वान किया और 'हिमालय' कविता में युधिष्ठिर के शांति–पथ के बजाय अर्जुन–भीम के शौर्य–पथ (शक्ति की राजनीति) को अपनाने पर बल दिया, जो क्रांति के प्रति उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति को दर्शाता है। वे कविता को केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि 'क्रांति–वाहिका' मानते थे।स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, दिनकर की राष्ट्रीयता ने जनवादी और सामाजिक दिशा ली। उन्होंने देखा कि शासक बदल गए हैं, लेकिन सत्ता का चरित्र नहीं। गरीबी, शोषण और विषमता के बने रहने पर उन्होंने पूँजीवाद पर तीखा प्रहार किया और 'जनतंत्र का जन्म' में ''सिंहासन खाली करो कि जनता आती है'' का उद्‌घोष कर सच्चे लोकतंत्र की माँग की। इसके साथ ही, उन्होंने सांस्कृतिक पौरुष को जगाने के लिए भारत के गौरवशाली अतीत, जैसे 'हिमालय' के प्रति और 'परशुराम की प्रतीक्षा' के शौर्य का स्मरण किया। 1962 के युद्ध के बाद उन्होंने स्पष्ट किया कि क्षमा केवल समर्थ को ही शोभा देती है। अंततः, उनका चिंतन 'कुरुक्षेत्र' के माध्यम से युद्ध की निरर्थकता पर विचार करते हुए विश्व–बंधुत्व और मानवतावाद के वैश्विक धरातल तक पहुँचा। इस प्रकार, दिनकर का काव्य राष्ट्रीय चेतना का वह महाकाव्य है जो शौर्य, न्याय और शांति के सार्वभौमिक संदेश से दीप्तिमान है।

बीज शब्द :– रामधारी सिंह 'दिनकर', राष्ट्रीय चेतना, क्रांति, विद्रोह, सांस्कृतिक गौरव, हुंकार, कुरुक्षेत्र, अंतर्राष्ट्रीयता, नव–मानवतावाद।

प्रस्तावना :– हिंदी साहित्य के उत्तर–छायावादी काव्य–संसार में जब एक ओर वैयक्तिक अनुभूतियों और सूक्ष्म कल्पनाओं का प्राधान्य था, तब दूसरी ओर राष्ट्रीयता की एक ऐसी ओजस्वी धारा भी प्रवाहित हो रही थी, जिसने संपूर्ण राष्ट्र को झकझोरने की क्षमता रखी। इसी धारा के सबसे प्रखर, तेजस्वी और प्रभावशाली कवि के रूप में रामधारी सिंह 'दिनकर' का उदय हुआ। 'दिनकर' केवल एक कवि नहीं, बल्कि एक युग की अंतरात्मा की ज्वाला थे, जिनकी कविता ने पराधीन भारत की सोई हुई चेतना को जगाया और स्वतंत्र भारत को उसके पथ और कर्तव्य का बोध कराया। उन्हें 'राष्ट्रकवि' की उपाधि से विभूषित किया जाना इस बात का प्रमाण है कि उनकी लेखनी ने देश की धड़कनों के साथ एकात्म स्थापित कर लिया था। दिनकर की

***शोधार्थी, हिंदी विभाग, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धौलाधार परिसर–01, धर्मशाला, जिला–कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश।**

राष्ट्रीयता अत्यंत विस्तृत है। यह भारतेन्दु हरिश्चंद्र के राजभक्ति और राष्ट्रभक्ति के द्वंद्व से आगे बढ़कर, मैथिलीशरण गुप्त की सांस्कृतिक राष्ट्रीयता को आत्मसात करते हुए माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की विद्रोही परंपरा को अपने शिखर पर पहुँचाती है। दिनकर के लिए राष्ट्रीयता केवल एक राजनीतिक नारा या भौगोलिक सीमा की पूजा नहीं थी, बल्कि यह एक समग्र जीवन–दृष्टि थी जिसमें क्रांति का ओज, संस्कृति का गौरव, सामाजिक न्याय की तड़प और विश्व–मानवता का कल्याण समाहित था।

दिनकर के काव्य–निर्माण की पृष्ठभूमि और राष्ट्रीयता की अवधारणा किसी भी कवि के व्यक्तित्व और कृतित्व को समझने के लिए उसके युग और परिवेश को समझना अनिवार्य होता है। दिनकर का जन्म और विकास उस काल में हुआ जब भारत का स्वतंत्रता संग्राम अपने चरमोत्कर्ष पर था। बिहार की भूमि, जो प्राचीन काल में ज्ञान और क्रांति का केंद्र रही थी, आधुनिक युग में भी राष्ट्रीय आंदोलनों का एक महत्वपूर्ण गढ़ थी। दिनकर का युवा मन इसी अग्निमय वातावरण में तपकर तैयार हुआ। वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि, 'राष्ट्रीयता मेरे व्यक्तित्व के भीतर से नहीं जन्मी, उसने बाहर से आकर मुझे आक्रांत किया है।' यह 'आक्रांत' होना ही उनके काव्य का मूल प्रेरक तत्व बना। 19वीं शताब्दी के पुनर्जागरण काल से प्रस्फुटित हुई राष्ट्रीय चेतना, जो भारतेन्दु युग में आकार ले रही थी और द्विवेदी–युग में मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत–भारती' के माध्यम से घर–घर पहुँच चुकी थी, दिनकर के समय तक एक विद्रोही स्वरूप धारण कर चुकी थी। एक ओर महात्मा गाँधी का अहिंसक सत्याग्रह था, तो दूसरी ओर भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद और बंगाल–बिहार के क्रांतिकारियों का सशस्त्र संघर्ष था। दिनकर का कवि–मन इन दोनों धाराओं से प्रभावित हुआ, परंतु उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति ओज, पौरुष और क्रांति की ओर अधिक थी। वे उस निष्क्रिय शांति के पक्षधर नहीं थे जो कायरता और दासता को स्वीकार कर ले। उनकी राष्ट्रीयता की अवधारणा में शौर्य, स्वाभिमान और प्रतिकार का भाव केंद्रीय था। दिनकर के काव्य का आरंभिक और सबसे प्रभावी स्वर क्रांति का है। उनकी स्वतंत्रता–पूर्व की रचनाएँ– विशेषकर रेणुका (1935), हुंकार (1939), और सामधेनी (1947), क्रांति और विद्रोह की धधकती ज्वाला से परिपूर्ण हैं। वे पराधीनता की पीड़ा को एक व्यक्तिगत वेदना के रूप में नहीं, बल्कि एक राष्ट्रीय अपमान के रूप में देखते थे, जिसका एकमात्र प्रतिकार विध्वंसकारी क्रांति ही हो सकती थी ।

दिनकर ने अपनी प्रारंभिक रचनाओं में ही यह स्पष्ट कर दिया था कि वे शांति के नहीं, बल्कि क्रांति के कवि हैं। 'रेणुका' में संकलित उनकी कविता 'तांडव' शिव के विनाशकारी नृत्य के माध्यम से पुरातन और जर्जर व्यवस्था को ध्वस्त करने का आह्वान करती है। यह केवल एक पौराणिक कल्पना नहीं, बल्कि युगीन निष्क्रियता पर एक प्रचंड प्रहार है–

"घहरे प्रलय–प्रयोद गगन में, अंध–धूम हो व्याप्त भुवन में,
बरसे आग, बहे झंझानिल, मचे त्राहि जग के आँगन में,
फटे अनल पाताल, धंसे जग, उछल–उछल कूदें भूधर, /नाचो, हे नाचो नटवर।'[1]

यहाँ 'नाच' विध्वंस का प्रतीक है, एक ऐसा विध्वंस जो नव–निर्माण के लिए आवश्यक है।

'हुंकार' तक आते–आते यह स्वर और अधिक तीक्ष्ण और आक्रामक हो जाता है। कवि राष्ट्र की दुर्दशा से इतना व्यथित है कि वह शांति और माधुर्य के स्थान पर विष उगलने को विवश है–

"नहीं जीते जो सकता देख विश्व में झुका तुम्हारा भाल,
वेदना–मधु का भी कर पान, आज उगलूँगा गरल कराला।"[2]

यह 'गरल' (विष) ब्रिटिश साम्राज्यवाद और उसकी पोषक व्यवस्था के विरुद्ध था। दिनकर ने कविता को केवल मनोरंजन या सौंदर्य की वस्तु न मानकर उसे एक 'क्रांति–वाहिका' के रूप में प्रतिष्ठित किया। वे कविता से आह्वान करते हैं कि वह भूषण की वीर भावना और लेनिन की क्रांतिकारी चेतना को धारण कर युग को बदले–

"उठ भूषण की भाव तरंगिणि, लेनिन के दल की चिनगारी।
युग मर्दित यौवन की ज्वाला, जाग जाग री क्रांति कुमारी।।[3]

दिनकर का युग गाँधी का युग था, जहाँ अहिंसा को स्वतंत्रता प्राप्ति का प्रमुख साधन माना जा रहा था। दिनकर गाँधीजी का सम्मान करते थे, किंतु उनकी अहिंसक नीति से पूर्णतः सहमत नहीं थे। उन्हें लगता था कि केवल शांति और धैर्य से स्वतंत्रता नहीं मिलेगी, इसके लिए शौर्य और पराक्रम का प्रदर्शन

आवश्यक है। बंगाल और बिहार के सशस्त्र क्रांतिकारियों का उन पर गहरा प्रभाव था, जो 'बम और पिस्तौल' की राजनीति में विश्वास रखते थे।

उनकी प्रसिद्ध कविता 'हिमालय' में यह द्वंद्व स्पष्ट रूप से उभरकर आता है। वे हिमालय को संबोधित करते हुए युधिष्ठिर के शांति–पथ को त्यागकर अर्जुन और भीम के शौर्य–पथ (गांडीव–गदा) को अपनाने का आग्रह करते हैं, जो तत्कालीन क्रांतिकारियों का प्रतीक था–

''रे, रोक युधिष्ठिर को न यहाँ, जाने दे उनको स्वर्ग धीर।
पर, फिरा हमें गांडीव–गदा, लौटा दे अर्जुन–भीम वीर।''[4]

यह सीधे–सीधे शांति की राजनीति के विरुद्ध शक्ति की राजनीति का आह्वान था। वे युवाओं के भीतर बलिदान की भावना जगाना चाहते थे। 'परशुराम की प्रतीक्षा' में वे स्पष्ट कहते हैं कि राष्ट्र पर लगे कलंक को धोने के लिए अग्नि–स्नान, अर्थात् रक्त–क्रांति, अनिवार्य है–

''खेल मरण का खेल, मुक्ति की यह पहली बाजी है।
अग्नि–स्नान के बिना धुलेगा नही राष्ट्र का पाप।''[5]

1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' (जन–विद्रोह) और सुभाष चंद्र बोस की 'आजाद हिंद फौज' के मुक्ति अभियान ने दिनकर की इस क्रांति–भावना को और बल दिया। जयप्रकाश नारायण उनके लिए आत्म–बलिदान के साक्षात प्रतीक बन गए। 'सामधेनी' में वे नए भारत के इन युवा सेनानियों का जयघोष करते हैं–

''जय हो, भारत के नये खड्ग, जय तरुण के सेनानी,
जय नई आग! जय नई ज्योती, जय नए लक्ष्य के अभिमानी।'[6]

वस्तुतः, रामवृक्ष बेनीपुरी का यह कथन सर्वथा उचित है कि 'हमारे क्रांति युग का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व कविता में इस समय दिनकर कर रहा है।' दिनकर की क्रांति विनाश के लिए विनाश नहीं, बल्कि नव–सृजन के लिए एक अनिवार्य साधन थी।

दिनकर की राष्ट्रीयता की जड़ें केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं थीं, वे गहरी सामाजिक और आर्थिक समानता की पक्षधर थीं। वे जानते थे कि यदि राष्ट्र के भीतर शोषण, गरीबी और विषमता व्याप्त है, तो राजनीतिक आजादी निरर्थक है। उनकी दृष्टि में राष्ट्र का अर्थ केवल भूमि का टुकड़ा नहीं, बल्कि उसमें निवास करने वाली 'जनता' थी। दिनकर ने अपने युग की सामाजिक–आर्थिक विसंगतियों पर तीखा प्रहार किया। वे मानते थे कि पूँजीवाद ही समस्त शोषण का मूल कारण है, जहाँ एक वर्ग श्रमिकों और किसानों का रक्त चूसकर वैभवशाली जीवन जीता है। 'रेणुका' की इन पंक्तियों में वे शोषक और शोषित के बीच की खाई का मार्मिक चित्रण करते हैं–

''स्वानों को मिलते दूध, वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं,
माँ की हड्डी से ठिठुर, जाड़ों की रात बिताते हैं।''[7]

यह केवल एक भावनात्मक चित्रण नहीं, बल्कि एक ऐसी व्यवस्था पर करारी चोट है जो मनुष्य से अधिक पशु को महत्व देती है। वे पूँजीपतियों को 'नर–पिशाच' की संज्ञा देते हैं और स्पष्ट रूप से किसानों–श्रमिकों के शोषण का चित्र खींचते हैं। उनकी सहानुभूति सदैव शोषित और पीड़ित वर्ग के साथ रही। वे समतामूलक समाज की स्थापना को ही सच्ची राष्ट्रीयता मानते थे।

15 अगस्त 1947 को देश आजाद हुआ, लेकिन दिनकर का मोहभंग शीघ्र ही हो गया। उन्होंने देखा कि सत्ता का चरित्र नहीं बदला, केवल शासक बदल गए हैं। वैभव, विलासिता और जनता से दूरी नई व्यवस्था का अंग बन गई। उनकी कविता 'दिल्ली' इस मोहभंग की तीव्र अभिव्यक्ति है। जब एक ओर भगत सिंह जैसे क्रांतिकारियों का बलिदान था और दूसरी ओर सत्ता का श्रृंगार, तो कवि का मन विद्रोह कर उठा–''मरघट में तू साज रही दिल्ली कैसे श्रृंगार? / यह बहार का स्वांग अरी इस उजडे हुए चमन में।''[8]

दिनकर ने सत्ता को चेतावनी दी कि वह जनता को दुर्बल न समझे। राष्ट्र की वास्तविक शक्ति महलों में नहीं, बल्कि खेतों और खलिहानों में काम करने वाली जनता में निहित है। उनकी युगांतरकारी कविता 'जनतंत्र का जन्म' इसी जन–शक्ति का उद्घोष है। वे सत्ता के गलियारों में बैठे शासकों को समय की पदचाप सुनने के लिए ललकारते हैं– ''सदियों की ठंडी–बुझी राख सुगबुगा उठी, / मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है– दो राह, समय के रथ का घर्घर–नाद सुनो, / सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।''[9]

यह पंक्तियाँ केवल कविता नहीं, बल्कि स्वतंत्र भारत में लोकतंत्र का घोषणापत्र हैं। दिनकर ने यहाँ स्पष्ट कर दिया कि सच्ची राष्ट्रीयता का अर्थ 'लोक' को 'तंत्र' पर स्थापित करना है। वे एक ऐसे राष्ट्र के स्वप्नदृष्टा थे जहाँ सत्ता जनता के प्रति उत्तरदायी हो और न्याय तथा समानता सर्वसुलभ हो।एक सच्चा राष्ट्रकवि अपने देश के इतिहास और संस्कृति से प्रेरणा ग्रहण करता है। दिनकर भारतीय संस्कृति के प्रति अगाध श्रद्धा और गौरव का भाव रखते थे। उनके लिए भारत का अतीत केवल घटनाओं का संकलन नहीं, बल्कि शौर्य, ज्ञान और त्याग की एक जीवंत परंपरा थी, जो वर्तमान की निराशा को दूर कर सकती था दिनकर ने देखा कि सदियों की गुलामी ने भारतीय जनमानस के पौरुष और स्वाभिमान को कुंठित कर दिया है। इस कुंठा को तोड़ने के लिए उन्होंने भारत के गौरवशाली अतीत का आह्वान किया। उनकी कविता 'हिमालय' केवल एक पर्वत का वर्णन नहीं, बल्कि भारत की अदम्य और तपस्वी आत्मा का प्रतीक है। वे इस महान प्रतीक को उसकी समाधि से जागने और युग को नई दिशा देने की प्रार्थना करते हैं–

''तू मौन त्याग, कर सिंहनाद, रे तपी ! आज तप का न काल।
नव–युग–शंखध्वनि जगा रही, तू जाग, जाग, मेरे विशाल।।''[10]

यह 'सिंहनाद' राष्ट्रीय आत्म–गौरव का नाद था। उन्होंने अपनी रचनाओं, विशेषकर 'रश्मिरथी' और श्कुरुक्षेत्रश में राम, कृष्ण, भीम, कर्ण, भीष्म जैसे पौराणिक पात्रों और नालंदा, पाटलीपुत्र, वैशाली जैसे ऐतिहासिक स्थानों का बार–बार स्मरण किया। इसका उद्देश्य अतीत का अंधानुकरण करना नहीं, बल्कि उन महान आदर्शों और शौर्य–गाथाओं से प्रेरणा लेकर वर्तमान पीढ़ी में नई ऊर्जा का संचार करना था। 1962 में चीन के आक्रमण ने भारत के स्वाभिमान को गहरी ठेस पहुँचाई। उस राष्ट्रीय संकट की घड़ी में दिनकर की लेखनी एक बार फिर गरज उठी। उन्होंने 'परशुराम की प्रतीक्षा' (1963) की रचना की, जो राष्ट्रीय रक्षा और शौर्य का महाकाव्य है। इस कृति में उन्होंने शांति की निष्क्रिय नीति पर प्रहार करते हुए आत्म–रक्षा के लिए शस्त्र उठाने को धर्म बताया। परशुराम यहाँ शौर्य, तेज और प्रतिकार के प्रतीक हैं। दिनकर ने देश को संबोधित करते हुए कहा कि क्षमा और सहिष्णुता वीरों का आभूषण है, कायरों का नहीं–

'क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो,
उसको क्या जो दंतहीन, विषरहित, विनीत, सरल हो।'[11]

यह काव्य इस बात का प्रमाण है कि दिनकर की सांस्कृतिक चेतना केवल अतीत का गौरव–गान नहीं करती, बल्कि वह राष्ट्रीय संकट के समय पौरुष और पराक्रम का मार्ग भी दिखाती है। दिनकर की राष्ट्रीय चेतना संकीर्ण और आक्रामक नहीं थी। वे उस भारतीय चिंतन परंपरा के वाहक थे जो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' में विश्वास करती है। जैसे–जैसे उनका चिंतन परिपक्व होता गया, उनकी राष्ट्रीयता की सीमाएँ विस्तृत होकर विश्व–बंधुत्व और वैश्विक शांति की कामना में रूपांतरित होती गईं। द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका और परमाणु बम के आविष्कार ने संपूर्ण मानवता को एक विनाशकारी मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया था। इस वैश्विक संकट से दिनकर का संवेदनशील मन अत्यंत व्यथित हुआ। इसी चिंतन के फलस्वरूप उनके प्रबंध काव्य 'कुरुक्षेत्र' (1946) का जन्म हुआ। यह काव्य महाभारत के युद्ध की पृष्ठभूमि पर रचा गया है, किंतु इसका मूल प्रश्न है कि– युद्ध क्यों होता है? क्या हिंसा और रक्तपात से शांति स्थापित हो सकती है? युधिष्ठिर और भीष्म के संवादों के माध्यम से दिनकर युद्ध की निरर्थकता और शांति की अनिवार्यता को स्थापित करते हैं। वे मानते हैं कि युद्ध का मूल कारण मनुष्य की अतृप्त भोग–लिप्सा और असमानता है। जब तक धरती पर संसाधनों का न्यायपूर्ण बँटवारा नहीं होगा, शांति स्थापित नहीं हो सकती। 'कुरुक्षेत्र' राष्ट्रीयता की सीमाओं को लांघकर अंतर्राष्ट्रीयता के धरातल पर मानव–मात्र के भविष्य की चिंता करता है। वे हिंसा और युद्ध को एक घृणित कर्म मानते हैं–

''है वृथा, धर्म का किसी समय करना विग्रह के साथ गंथन,
करुणा से कता धर्म विमल, है मलिन पुत्र हिंसा का रण।''[12]

दिनकर का अंतिम लक्ष्य एक ऐसे विश्व की स्थापना था जहाँ राष्ट्रों के बीच घृणा और संघर्ष न हो, बल्कि मैत्री और सद्भाव हो। उनकी अंतर्राष्ट्रीयता का आधार मानवतावाद था, जो भारतीय दर्शन के 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' के महान आदर्श से प्रेरित था। 'कस्मैदेवाय' जैसी कविताओं में वे धार्मिक भिन्नताओं को मिटाकर मानवीय एकता की स्थापना पर बल देते हैं– '

'धर्म–भिन्नता हो न, सभी जन शैल–तटी में हिल–मिल आयें।''[13]

'हिमालय का संदेश' में वे भारत को विश्व–शांति के सूत्रधार के रूप में देखते हैं, जो संपूर्ण विश्व को आध्यात्मिकता और सह–अस्तित्व का मार्ग दिखा सकता है– ''भारत एक स्वप्न, भू को ऊपर ले जाने वाला।/ भारत एक विचार, स्वर्ग को भू पर लाने वाला।''[14]

उनकी अंतिम दौर की रचनाओं, जैसे 'चक्रवाल', में वे एक ऐसी दुनिया की मंगल–कामना करते हैं जहाँ मनुष्य का हृदय कोमल हो और घृणा के स्थान पर प्रेम का गंगाजल प्रवाहित हो–

''तब उतरेगी शांति, मनुज का मन जब कोमल होगा।
जहाँ आज है गरल, वहाँ शीतल गंगाजल होगा।।''[15]

दिनकर की राष्ट्रीय अवधारणा में एक ओर देश के प्रति प्रेम और सम्मान का भाव है, वहीं दूसरी ओर मानव मात्र के लिए स्वतन्त्रता, समानता व स्वाभिमान की आकांक्षा भी परिलक्षित होती है, जिसकी वर्तमान में महती आवश्यकता है। स्वतन्त्र भाव से समान साझेदारी के साथ उन्मुक्त जीवन जीने की प्रेरणा देती ये पंक्तियाँ कवि के राष्ट्रीय उद्घोष का सार हैं–

''कानो कानो को सही नहीं, चुपके चुपके, छिप आह न भर,
तू बोल, सोचता है जो कुछ, पहरों की टुक, परवाह न कर,
अब नहीं गाँव में भिक्ष और दिल्ली में कोई दानी है,
तू दास किसी का नहीं स्वयं, स्वाधीन देश का प्राणी है।"[16]

उपर्युक्त विस्तृत विवेचन से यह सुस्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य में राष्ट्रीयता की अवधारणा एक जीवंत, गतिशील और बहुआयामी यात्रा है, जिसने एक युग की अंतरात्मा को स्वर दिया। उनकी राष्ट्रीयता महज राजनीतिक आजादी तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह क्रांति, सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक गौरव और वैश्विक मानवता का एक अद्भुत समन्वय थी। दिनकर ने पराधीनता के विरुद्ध प्रलयंकारी 'हुंकार' के साथ अपनी यात्रा शुरू की, जहाँ उन्होंने पौरुष और प्रतिकार को अहिंसा पर वरीयता दी, जैसा कि 'हिमालय' में गांडीव–गदा के आह्वान से सिद्ध होता है। स्वतंत्रता मिलने के बाद, यह चेतना तुरंत जनवादी हो गई। उन्होंने सत्ता के चरित्र पर तीखा प्रहार करते हुए शोषण और विषमता को राष्ट्र की सबसे बड़ी बाधा माना और 'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है' का युगांतरकारी उद्घोष कर सच्चे लोकतंत्र की स्थापना का आह्वान किया। इसके समानांतर, दिनकर ने सांस्कृतिक चेतना का प्रयोग भारतीय जनमानस के आत्म–गौरव को जगाने के लिए किया, और 'परशुराम की प्रतीक्षा' के माध्यम से यह निष्कर्ष दिया कि राष्ट्रीय संकट के समय क्षमाशील होना कायरता है, शक्ति का प्रयोग अनिवार्य है। अंततः, उनका चिंतन 'कुरुक्षेत्र' के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीयता के धरातल पर पहुँचा, जहाँ उन्होंने युद्ध की निरर्थकता पर गंभीर विचार करते हुए विश्व–शांति और मानवतावाद को अंतिम लक्ष्य माना। इस प्रकार, दिनकर का काव्य भारतीय राष्ट्रीयता का एक महाकाव्य है, जिसने देश को जगाया, सही दिशा दी, और उसे सार्वभौमिक शांति के आदर्शों से जोड़ा। वे सही अर्थों में एक 'युगचारण' थे, जिनकी कविता कल, आज और भविष्य में भी प्रासंगिक बनी रहेगी।

संदर्भ–सूची :–

1. सम्पादक, नंदकिशोर नवल, तरुण कुमार, रामधारी सिंह दिनकर रचनावली खंड एक, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2011, पृ संख्या 78
2. https://kavitakosh.org
3. https://kavitakosh.org
4. सम्पादक, नंदकिशोर नवल, तरुण कुमार, रामधारी सिंह दिनकर रचनावली खंड एक, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2011, पृ संख्या 82
5. रामधारी सिंह दिनकर, परशुराम की प्रतीक्षा, पृष्ठ संख्या 42
6. रामधारी सिंह दिनकर, सामधेनी, पृ संख्या 40
7. रामधारी सिंह दिनकर, चक्रवाल, उद्यांचल प्रकाशन पटना, प्रथम संस्करण 1957 पृ 197
8. सम्पादक, नंदकिशोर नवल, तरुण कुमार, रामधारी सिंह दिनकर रचनावली खंड एक, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2011, पृ 85
9. वही, पृ 276
10. वही, पृ 83
11. रामधारी सिंह दिनकर , चक्रवाल, उद्यांचल प्रकाशन पटना, प्रथम संस्करण 1957, पृ 197
12. वही, पृ 388
13. वही, पृ 72
14. वही, पृ 464
15. वही, पृ 378
16. वही, पृ 87

ཬ★ཋ

असमिया कविता : एक साहित्यिक परिचय

मनसा नेउग*

प्रस्तावना :– कविता को किसी एक परिभाषा में बाँधना सहज नहीं है। कविता का नाम लेते ही मन में प्रकाश और छाया से निर्मित एक मोहक छवि उभर आती है, जो किसी नियम अथवा सीमा में बँधकर नहीं रहती। इस छवि में स्वप्न और यथार्थ, कल्पना और अनुभव का सम्मिलित आलोक विद्यमान रहता है। इन समस्त तत्त्वों को किसी एक परिभाषा के माध्यम से पूर्णतः व्यक्त नहीं किया जा सकता। आज तक कविता के संबंध में जितनी भी परिभाषाएँ दी गई हैं, उनमें से कोई भी सर्वथा पूर्ण नहीं मानी जा सकती। किसी विद्वान ने शब्द–विन्यास को अधिक महत्त्व दिया है, तो किसी ने अनुभूति के प्रवाह को। किसी ने छंद–विधान को कविता का आधार माना है, तो किसी ने उसकी सामाजिक चेतना अथवा जीवन–सापेक्षता को प्रमुखता दी है। वस्तुतः कविता के संबंध में कवियों और आलोचकों के विचार अत्यंत विविध रहे हैं। इन परिभाषाओं का विस्तृत विवेचन पूर्व में किया जा चुका है। इन विभिन्न मतों के आधार पर पाठक स्वयं कविता के स्वरूप की एक समग्र मानसिक छवि निर्मित कर सकता है।

चर्यापद से लेकर आज तक की यात्रा पर दृष्टि डालने से स्पष्ट होता है कि असमिया कविता का संसार अत्यंत विशाल और समृद्ध है। इसमें अनेक रूप, अनेक प्रवृत्तियाँ और विविध अभिव्यक्तियाँ दिखाई देती हैं। असमिया कविता केवल भारतीय काव्य–परंपरा की वाहक ही नहीं है, बल्कि इसमें देश–विदेश के विभिन्न विचारों और साहित्यिक आंदोलनों की भी स्पष्ट छाप मिलती है। साथ ही, असमिया समाज और लोकजीवन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति के अतिरिक्त पड़ोसी भाषाओं की विशिष्ट काव्य–धाराओं का प्रभाव भी समय–समय पर असमिया कविता पर पड़ा है। इन सभी विशेषताओं ने मिलकर असमिया कविता को समृद्ध और बहुआयामी बनाया है।

असमिया कविता के इतिहास का अध्ययन करने पर उसके विकास और उसकी विविधता स्पष्ट रूप से सामने आती है। प्राचीन कविता अपने सौंदर्य, गंभीरता और अलंकारिक वैभव के कारण विशेष आकर्षित करती है। दूसरी ओर, आधुनिक कविता अपनी सहजता, नवचेतना और सूक्ष्म अभिव्यक्ति के कारण कुछ सीमा तक जटिल प्रतीत होती है। फिर भी, दोनों ही अपने–अपने रूप में कविता की मूल संवेदना को अभिव्यक्त करती हैं। अंततः कविता पीड़ा से संघर्ष कर रहे मनुष्य के लिए प्रेम, करुणा और आत्मिक शांति का एक प्रभावशाली आश्रय बनी रहती है।

बीज शब्द :– असमिया, कविता, प्रकृति, ऋतु, कवि, प्रेम, देशप्रेम, सौन्दर्य।

असमिया कविता की परंपरा में सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में माधव कंदली का नाम लिया जाता है। उनकी काव्य–प्रतिभा अनुपम है। उन्हें असम का कालिदास भी कहा जाता है।[1] उनकी सबसे महत्त्वपूर्ण कृति है, रामायण। यद्यपि यह एक अनूदित ग्रंथ है, फिर भी इसमें उनकी मौलिक प्रतिभा, सृजनशीलता और काव्य–कौशल का सुंदर परिचय मिलता है। उनकी भाषा सरल, प्रभावपूर्ण तथा अलंकारों के संतुलित प्रयोग से युक्त है। साथ ही, लोकप्रचलित शब्दों और मुहावरों के प्रयोग ने उनकी कविता को और अधिक सहज तथा आकर्षक बना दिया है। यदि रामायण के विभिन्न कांडों से कुछ पदों का अध्ययन किया जाए, तो स्पष्ट होता है कि उनमें उत्कृष्ट कविता के सभी आवश्यक गुण विद्यमान हैं। उनमें स्वाभाविक लय के साथ–साथ भावात्मक गहराई और काव्यात्मक सौंदर्य का सुंदर समन्वय मिलता है। असमिया साहित्य के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट काल में महापुरुष शंकरदेव और माधवदेव का आगमन होता है। असमिया कविता की एक विशिष्ट धारा का विकास मुख्यतः इन्हीं दोनों महापुरुषों के नेतृत्व में हुआ। यद्यपि उनका प्रमुख उद्देश्य धर्म का प्रचार–प्रसार था और उन्होंने साहित्य की लगभग सभी विधाओं में

***शोधार्थी, सिक्किम विश्वविद्यालय, सिक्किम–737102।**

उल्लेखनीय योगदान दिया, इसलिए उन्हें केवल कवि कहना उचित नहीं होगा। फिर भी, यदि उनके साहित्य के अन्य पक्षों को अलग रखकर केवल उनकी कविताओं का अध्ययन किया जाए, तो उनकी काव्य–सृष्टि अपने मौलिक सौंदर्य और कलात्मकता के कारण अनुपम प्रतीत होती है।

समग्र रूप से देखने पर वैष्णव काव्य में एक प्रकार की सीमितता दिखाई देती है। इसका मुख्य कारण यह है कि विष्णु–भक्ति ही इसकी प्रमुख विषयवस्तु रही है, जिसके कारण इसके कथ्य का विस्तार अपेक्षाकृत सीमित हो गया है। इसके बावजूद, उनके काव्य में अनेक ऐसे स्वतंत्र पद और खंड–कविताएँ मिलती हैं, जो अपने आप में उत्कृष्ट काव्य का दर्जा रखती हैं। इन रचनाओं में प्रकृति के विविध रूपों, वर्षा और शरद ऋतु के मनोहारी दृश्यों तथा मानवीय भावनाओं का अत्यंत सुंदर और सजीव चित्रण किया गया है। शंकरदेव की दशम और कीर्तन असमिया कविता की अमूल्य धरोहर मानी जाती हैं। किशोरावस्था में रचित करतल कमल उनकी असाधारण काव्य–प्रतिभा का परिचायक है। यदि उन्होंने साहित्य की अन्य विधाओं में कार्य न करके केवल काव्य–रचना पर ही अपना ध्यान केंद्रित किया होता, तो संभवतः उन्हें असम का सर्वश्रेष्ठ कवि कहा जाता।[2] महापुरुष माधवदेव के संबंध में भी यही बात कही जा सकती है। उनके बरगीतों का काव्य–सौंदर्य तो प्रसिद्ध है ही, साथ ही नामघोषा में भी उनके संवेदनशील और सौंदर्यबोध से संपन्न कवि–मन की स्पष्ट अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। असमिया कविता के प्रारम्भिक इतिहास का अध्ययन करते समय आजान फकीर और चाँदसाई के गीतों का उल्लेख भी आवश्यक है। आजान फकीर के गीतों में इस्लामी विचारधारा और वैष्णव भक्ति–परंपरा का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। वहीं, चाँदसाई के गीतों में लोकजीवन से जुड़ी सहज और आत्मीय काव्य–धारा का मधुर स्वाद मिलता है।[3]

प्राचीन असमिया कविता में इन दोनों कवियों की रचनाओं की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता उनकी भाषा और भावभूमि है। उनकी रचनाओं में घरेलू बोलचाल की सहज भाषा के साथ वैष्णव परंपरा और इस्लामी आदर्शों का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है। यही विशेषता उस काल के दो प्रेमाख्यान काव्यों में भी दिखाई देती है। इनमें एक द्विजराम कृत श्साहापरी उपाख्यानश तथा दूसरा अज्ञात कवि द्वारा रचित श्मधुमालतीश है। इन दोनों काव्यों में सूफी काव्य–परंपरा का सूक्ष्म तथा मृदु प्रभाव स्पष्ट रूप से अनुभव किया जा सकता है।

जोनाकी युग के एक अन्यतम कवि हैं लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ। बुद्धिनिष्ठ व्यंग्यात्मक कविता की रचना के क्षेत्र में लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ असम के अग्रणी कवि माने जाते हैं। उनके द्वारा रचित कविताओं में एक ओर श्रीमंत शंकरदेव और माधवदेव के बरगीतों की परंपरा का प्रभाव दिखाई देता है, तो दूसरी ओर Percy Bysshe Shelley और John Keats की ऋतु–कविताओं का भी प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। बेजबरुआ ने स्वयं कहा था कि उनके मन के विशाल खेत को पहले बायरन की कविताओं ने कोमल बनाया, शेली की कविताओं ने उसमें हल चलाया, कीट्स की कविताओं ने उसे समतल किया, और रवीन्द्रनाथ की कविताओं ने उसकी ऐसी उर्वरता बढ़ा दी कि उसमें केवल धान ही नहीं, बल्कि कोई भी बीज बो दिया जाए, तो वह भरपूर अंकुरित होकर लहलहा उठे। यह कथन पूरी तरह सत्य प्रतीत होता है। उनकी रचनाओं का सूक्ष्म अध्ययन करने पर उनकी कविता 'चुमा' में शेली की Love Philosophy की तथा 'मालती' में William Wordsworth की स्नबल कविताओं की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। उनकी रोमांटिक कविताओं पर पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव अत्यंत स्पष्ट है। इसी प्रकार, 'वृंदा–चन्द्रावली संवाद', 'चन्द्रा–बाधार द्वंद्व', 'धुआँ–खोवा' तथा 'छह ऋतुओं का आह्वान' जैसी व्यंग्यात्मक कविताओं में भी पाश्चात्य व्यंग्य–साहित्य की छाया स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। असमिया कविता के युगविभाजन कुछ इस प्रकार से होगाकृ भक्तिवाद, रहस्यवाद, रमन्यासवाद, प्रतीकवाद, प्रगतिवाद और नई कविता। 'भालपालो रघुनाथ।

तुमि मोक पूतेरारधबियलोई मातिला।
पीछे रभाखन दिबोलोईके।
आमलखि गछजोपाध्कीयनो कातिला।
आलोही अतिथि जाबध्रभा नाइकिया हब।
बोवारिये घरखनधदिबोहि पूराई।

पीछे कोवाछोन रघुनाथ।
आमलखि गछजोपाध्सहजते पाबाने घूराई।'

इसमें कवि पैड़ काटने पर अपना गुस्सा जाहिर कर रहे हैं। कवि कह रहे हैं, रघुनाथ, मुझे अच्छा लगा कि तुमने मुझे अपने बेटे की शादी में बुलाया। लेकिन शादी के तंबू के लिए तुमने आँवले का पेड़ क्यों काट दिया? जितने भी मेहमान आएँगे, सब चले जाएँगे। तंबू भी एक दिन नहीं रहेगा। बहू आकर इस घर को पूरा कर देगी। लेकिन बताओ, रघुनाथ, क्या तुम्हें वह आँवले का पेड़ कभी वापस मिलेगा?

नलिनिवाला देवी की कविताओं में देशप्रेम का स्वर बिराजमान है। उनकी कविता जनमभूमि में उन्होंने लिखा है–

'दुखियार भगा पँजा।
एकोखनि तीर्थ तात।
एकोखनि पुण्यर आश्रम।
मरिले पुनर आहि।
दुखिया देशते मोर।
लउँ जेन पुनर जनम।'

कवयित्री कहती है कि गरीब का टूटा हुआ घर भी एक तीर्थ है, एक पुण्य आश्रम है। मरने के बाद भी पुनः इसी गरीब देश में जन्म लेने की आशा रखती है।

आधुनिक समय के जनप्रिय कवि हैं हीरेन भट्टाचार्य। उन्होंने कविता के बारे में कहा है–

"भंगा कलिजात कोने बिनाई।
कविता मोर।
दुखर ऋतू ́एपाह खरिकाजाई।"

कवि कह रहे हैं, टूटे हुए दिल पर कौन रोता है, कविता मेरे दुःख के समय की खिली हुई खरिकजाई फूल है। ममतार चिठी नामक एक युगांतकारी कविता के जरिए कवि हेम बरुआ ने शरद ऋतु के सहारा लेकर एक मनोरम दृश्य का वर्णन किया है–

'सिदिना आचिल काटिर कुँवली सना एटा कोमल पुवा।
पदूलीत तलसरा शेवालीबोर उपची आचिल।
आरु संधिया मोई तोमालोकर घरलोई नकोई आहिबर दिना।
आकाशर मेघर मोहनात हालधिया जोनटो नावखन होई।
आमाक जे रिंगियाई मतिचिल तरार देशलोई।'

पंक्ति का तात्पर्य यह है कि उस दिन कार्तिक महीने की एक धुंधली सुबह थी। रास्ते में हरसिंगार के झरे हुए फूल बिखरे पड़े थे। जिस दिन मैं पहली बार तुम्हारे घर आई थी, उस दिन आकाश के मेघों के बीच पीला चाँद नाव–सा बनकर हमें तारों के देश में बुला रहा था। यंहा प्रतक्ष रूप से शरद ऋतू की उल्लेख नहीं है, लेकिन तल सरा शेवाली, अर्थात झरे हुए हरसिंगार के फूल, और काटिर कुँवली, अर्थात कार्तिक की धुंध, के प्रतीक रूप में शरद बिद्यामान है।

असमिया नई कविता आंदोलन के कवि हरि बरकाकटि लिखते हैं–

'आमार एनिमिक कलिजार तेज।
चोवाली हॉस्टल ́परदा बोरतकोईउ पातल।'

इसमें कवि का कहना है कि हमारे रक्ताल्पता (एनीमिया) से ग्रस्त दिल का खून तो हॉस्टल के परदों से भी पतला हो गया है।

आधुनिक असमिया कविता का यदि सरल दृष्टि से मूल्यांकन किया जाए, तो इसमें दो प्रमुख धाराएँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। पहली धारा कविता को केवल कविता के लिए लिखने वाली नंदनवादी दृष्टि

की है, जबकि दूसरी धारा विभिन्न विचारधाराओं अथवा श्वादोंश के प्रचार–प्रसार के उद्देश्य से लिखी जाने वाली बौद्धिक दृष्टि की है। इन दोनों धाराओं में अनेक उत्कृष्ट कविताओं की रचना हुई है। इनमें कुछ कविताएँ अपनी अभिव्यक्ति के कारण सामान्य पाठकों के हृदय तक सहज पहुँच जाती हैं, जबकि कुछ का आस्वादन केवल सीमित संख्या में संवेदनशील एवं बौद्धिक पाठक ही कर पाते हैं। आधुनिक कविता को प्रायः दुरूह माना जाता है। इसका मुख्य कारण कठिन एवं अप्रचलित शब्दों का अत्यधिक प्रयोग तथा जटिल अभिव्यक्ति है। किन्तु वर्तमान समय में कुछ युवा कवियों ने कविता को सरल, सहज और जीवन के निकट लाकर पाठकों का विश्वास एवं स्नेह प्राप्त किया है। यह निश्चय ही एक शुभ संकेत है। इन कवियों ने कविता को मुक्त चिंतन का सशक्त माध्यम बनाया है। प्रतीकों और बिंबों की अत्यधिक जटिलता से दूर होकर सामान्य पाठक भी अब धीरे–धीरे कविता के स्वाभाविक सौंदर्य और आनंद का अनुभव करने लगा है।

निष्कर्ष :– नई कविता के आरंभिक दौर में उसका रूप काफी कठिन, जटिल और धात्विक था। इसलिए, स्वाभाविक रूप से पाठकों के मन में इसे लेकर अनेक प्रकार की शंकाएँ और संकोच थे। T. S. Eliot, Ezra Pound, Louis MacNeice, W. B. Yeats, Dylan Thomas, Charles Baudelaire तथा Stéphane Mallarmé जैसे कवियों की रचनाओं में व्यक्त नवीन काव्य–दृष्टि, मौलिक चिंतन और अभिव्यक्ति की नई शैली का प्रभाव सन् 1940 के दशक में विश्व के अधिकांश देशों की कविता पर पड़ा। भारतीय कवि भी पारंपरिक कांतिगुण–प्रधान काव्यधारा से हटकर आधुनिक संवेदना और नए शिल्प की ओर उन्मुख हुए।

असमिया कविता पर भी इस नई प्रवृत्ति का गहरा प्रभाव पड़ा। इसके कारण साहित्यिक जगत और पाठकों के बीच एक नई हलचल दिखाई दी। नई कविता के सशक्त, तर्कपूर्ण और यथार्थपरक स्वर ने पारंपरिक कविता की स्वप्निल और कल्पनाप्रधान प्रवृत्ति को पीछे छोड़ना शुरू किया। अंग्रेजी आधुनिक कविता के प्रभाव से असमिया कविता में जटिल शब्दावली, नए बिंबों और प्रतीकों का प्रयोग बढ़ा, जिससे उसका स्वरूप पहले की अपेक्षा अधिक विविध और नवीन हो गया। इस बदले हुए काव्य–रूप को समझने और स्वीकार करने में पाठकों को कुछ समय अवश्य लगा, जो स्वाभाविक भी था। किंतु समय के साथ नई कविता ने अपनी विशिष्ट अभिव्यक्ति, प्रभावशाली बिंब–योजना और प्रतीकों के सार्थक प्रयोग के कारण अधिकांश पाठकों का विश्वास और स्नेह प्राप्त कर लिया। कहा जा सकता है कि आधुनिक असमिया कविता निरंतर अधिक परिपक्वता की ओर अग्रसर है। युवा कवियों के हृदय में अपने पूर्ववर्ती कवियों की साहित्यिक परंपरा का प्रभाव विद्यमान है और उनकी चेतना में दूर–दूर से आने वाले नवीन विचारों तथा प्रगतिशील दृष्टि का समावेश हुआ है। परिणामस्वरूप, गंभीर साहित्यिक साधना और सतत सृजन के माध्यम से भविष्य में और अधिक उत्कृष्ट कविताओं की अपेक्षा की जा सकती है, जिसकी प्रतीक्षा कविता–प्रेमी पाठक उत्सुकता से कर रहे हैं।

संदर्भ–सूची :–

1. करबी डेका हाजरिका, असमिया कविता, पृ. 11।
2. वही, पृ. 12।
3. महेश्वर नेउग, असमिया कवितार रूपरेखा, पृ. 148।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. हाजरिका, करबी डेका, (1992), असमिया कविता, गुवाहाटी, स्टूडेंट स्टोरस।
2. हाजरिका, करबी डेका, (1994), असमिया कवि आरू कविता, डिब्रूगढ़, स्टूडेंट्स एम्पोरीअम।
3. नेउग, महेश्वर, असमिया साहित्यर रूपरेखा, (1962), गुवाहाटी, चंद्र प्रकाश।
4. गोस्वामी, डॉ. प्रकाश, (1999), असमिया रोमांटिक कविता, गुवाहाटी, बुक हाइभ।

★

बद्री सिंह भाटिया की कहानियों में दाम्पत्य-जीवन की विविध अर्थ छवियाँ

गीतांजलि*

प्रो. चंद्रकांत सिंह**

शोध सारांश :– बद्री सिंह भाटिया की कहानियाँ आधुनिक समाज की जटिलताओं और विसंगतियों यथा– ग्रामीण परिवेश में दाम्पत्य जीवन,पति–पत्नी के संबंध, नारी की स्थिति आदि का चित्रण करती हैं। उनका लेखन इस बात पर केंद्रित है कि आज के समाज में नैतिक मूल्यों के पतन, रिश्तों में बिखराव,स्वार्थपरता आदि के कारण आम व्यक्ति में गहन पीड़ा एवं अवसाद की भावना प्रबल होती जा रही है। बद्री सिंह भाटिया की कहानी में संबंध विच्छेद से उत्पन्न तनाव और पीड़ा को देखा जा सकता है। कहानियों में दांपत्य जीवन में व्याप्त अविश्वास और अवैध संबंधों को बखूबी दिखाया गया है। उदाहरण स्वरूप'ब्रह्मफांस','बहाना' 'उसका रोना' आदि कहानियों को लिया जा सकता है। इन कहानियों में पारिवारिक विघटन एवं मूल्यों का ह्रास स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। इस तरह प्रस्तुत आलेख में बद्री सिंह भाटिया की कहानियों में व्याप्त सामाजिक विद्रूपता एवं विषमता को प्रमुखता के साथ चित्रित किया गया है ताकि समकालीन कथा साहित्य में उनकी रचनाशीलता के वैशिष्ट्य को रेखांकित किया जा सके।

बीज शब्द :– सामाजिक यथार्थ, पारिवारिक संबंध, सामाजिक विसंगतियाँ, निराशा, अवसाद।

प्रस्तावना :– बद्री सिंह भाटिया समकालीन यथार्थ को– अभिव्यक्त करने वाले महत्वपूर्ण रचनाकार हैं। उनकी कहानियों में रचना–प्रक्रिया की बारीकियों के साथ–साथ सामाजिक यथार्थ की गहरी पैठ दिखाई देती है। उन्होंने अपनी कहानियों में न केवल हिमाचल के पहाड़ी जीवन को दिखाया है बल्कि विषमता, पीड़ा, अवमानना आदि को खुले रूप में अभिव्यक्त किया है। एक तरह से कह सकते हैं कि उनकी कहानियों में पारिवारिक मनोभूमि के साथ–साथ सामाजिक मनोभूमि की पड़ताल दिखाई देती है। यथार्थ की तह में घुसकर वह अत्यंत सूक्ष्मतापूर्वक समाज के विभिन्न पहलुओं पर बात करते हैं। यही कारण है कि उनकी कहानी केवल सामाजिक चित्रण भर नहीं करती अपितु सामाजिक समस्याओं पर खुलकर बात करती है। इस तरह बद्री सिंह भाटिया जीवन के भीतर धँसकर जीवन के असल रूप को उद्घाटित करने वाले सिद्धस्त रचनाकार हैं। वह ग्रामीण और शहरी जीवन दोनों का अनुभव रखते थे। साहित्य सृजन के अतिरिक्त उन्होंने साप्ताहिक पत्र 'गिरिराज' और मासिक पत्रिका 'हिमप्रस्थ' जैसे पत्रों का संपादन का कार्य भी किया। 'कंटीली तारों का घेरा' शीर्षक से उन्होंने महत्वपूर्ण काव्य–संग्रह की भी रचना की। उनके कहानी–संग्रह में पहाड़ी जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है। उनकी कहानियाँ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवेश का जीवंत दस्तावेज प्रतीत होती हैं। भाटिया जी की भाषा में सरलता और सहजता है जो जनमानस को अपनी ओर खींचती है। उन्होंने मुख्यतः मध्यवर्गीय जीवन की विसंगतियों एवं तनाव को पहचाना है। डॉक्टर जोगिंदर यादव बद्री सिंह भाटिया के रचनागत सरोकारों पर बात करते हुए लिखते हैं कि– **"इनका साहित्य मध्यवर्गीय परिवार की आकांक्षाओं, उत्कंठाओं, संगति विसंगति, पूर्ण स्थितियों को उभारता हैं। उनके साहित्य का संबंध सीधा समाज के विभिन्न वर्गों से है। किस प्रकार मध्यवर्गीय परिवारों में ऊँच–नीच का भेद पनपा हुआ है, इस सच्चाई को साथ लेकर साहित्य रचते हैं। वातावरण के बारीक से बारीक रेशों को उभारने और घातों–प्रतिघातों को तीव्रतम रूप में प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने में भाटिया सिद्धहस्त थे।"**[1] उनकी कहानियों के पात्र हमारे आस–पास व्याप्त सामान्य लोग हैं जिनका संघर्ष हमारे संघर्षों से मेल खाता है। ये

***शोधार्थी, हिंदी विभाग, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धौलाधार परिसर–01, धर्मशाला, जिला–काँगड़ा, हिमाचल प्रदेश–176215**

****शोध निर्देशक, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धौलाधार परिसर–01, धर्मशाला, जिला–काँगड़ा, हिमाचल प्रदेश–176215**

कहानियाँ हमारे समाज के ज्वलंत प्रश्नों पर हस्तक्षेप करती हैं तो कभी मन की प्रश्नाकुलताओं को सामने लाने की कोशिश करती हैं। इन्होंने कहीं–कहीं ग्रामीण परिवेश के टूटते हुए परिवारों की सिसकियों को सुना है और कहीं–कहीं निपट अकेलेपन और खालीपन को भी देखा है। ग्रामीण संस्कृति में लोग अपनी समस्याओं और उलझनों को आपस में साँझा करते हैं, वहीं शहरी जीवन में धन के प्रति व्यामोह रिश्तों को रिक्त बनाता है। शहर में व्यक्ति पीड़ा, घुटन,त्रास से जूझता हुआ अंततः दम तोड़ देता है। एक खास किस्म का उचाटपन अंतस को मथता है, जहाँ निखालिस मर्सिया की आद्यंत टेर रहती है। ठाकुर नेमिचंद्र उनके रचना–कर्म पर लिखते हुए कहते हैं– **"हिमाचल प्रदेश से संबंधित बद्री सिंह भाटिया आज हिंदी साहित्य में एक स्थापित हस्ताक्षर हैं। उन्होंने साहित्यिक लगन से समाज को देखने की अलग दृष्टि मिलती है, मेहनत और सबल शक्ति के बल पर अपनी कलम की रचनात्मक का लोहा प्रदेश ही नहीं बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर मनवाया है।"**[2] रचनाकार अपने आस–पड़ोस में जो देखता है, जिस समाज में वह रहता है, जिन विद्रूपताओं से वह जूझता है तथा जीवन के जिन पड़ावों से गुजरता है उसका वर्णन करता है। आज की इस भाग दौड़ भरी जिंदगी में हर कोई आगे रहना चाहता है। भौतिकता की लिप्सा में हर कोई आए दिन नैतिक मूल्यों को भूलता जा रहा है। यही नहीं व्यक्ति ऐश्वर्य और आराम की चाह में आत्ममुग्ध होता जा रहा है। उसे अपने परिवार, सगे–संबंधियों,समाज एवं राष्ट्र की तनिक भी चिंता नहीं है।

'ब्रह्मफांस' कहानी मिस्टर वर्मा और श्रीमती वर्मा के पारिवारिक विघटन से संबंधित कहानी है। जब दांपत्य जीवन की शुरुआत तनाव,अविश्वास, कड़वाहट के साथ हो तो पति–पत्नी दोनों में से किसी एक को इस रिश्ते को बचाने के लिए समझौता करना पड़ता है। मिस्टर वर्मा ने अपने को परिस्थितियों के अनुकूल कर लिया है। पत्नी द्वारा बार–बार तिरस्कृत होने पर भी वह इस रिश्ते को जोड़े रखने का प्रयास करते हैं। मिस्टर वर्मा के शब्दों में– **"जिंदगी की गाड़ी चलाते हुए इसने मुझे दूसरे, तीसरे स्थान पर रख दिया था। मेरे आगे इसके शारीरिक, नौकरी संबंधी और इसके मायके के दुःख होते हैं। मैं सब कुछ अपने फैसले के तहत करता रहता कि मुझे यह दांपत्य जीवन लोकहास्य से बचाना है वरना भीतर ही भीतर मैं बहुत टूट चुका था।"**[3] अपनों द्वारा उपेक्षित, तिरस्कृत एवं अपमानित होने से व्यक्ति अकेलेपन का शिकार हो जाता है। उसकी अंतरंग की पीड़ा ही आत्मपीड़ा बनती है।

किसी भी व्यक्ति के स्वतंत्रता पर यदि रोक लगा दी जाए तो वह या तो विद्रोह कर लेता है या फिर आत्मसमर्पण कर लेता है। उदाहरण के रूप में 'ब्रह्मफांस' कहानी में मैसेज वर्मा को अपनी इच्छाओं का दमन करना पड़ता है। मिस्टर वर्मा ने उससे शादी करने के लिए प्रेम का झूठा ढोंग रचाया था। मैसेज वर्मा परिवार के मान की खातिर शादी कर लेती है इसी संदर्भ में मैसेज वर्मा कहती है कि **"यह जब भी सामने होता है मुझे इसका छल याद आता रहता है। इसने किस तरह हासिल किया है मुझे और मैं कुछ ना कह सकी। मेरी इच्छाएं। भावनाएं,वाछनाएँ सब धरी की धरी रह गई थी। माता–पिता की इज्जत की खातिर मान गई। एक गाय की तरह,... आ गईं इसके मवेशी खाने में...."**[4] समाज में माता–पिता की इज्जत और मान मर्यादा की खातिर बेटियां अपनी इच्छाओं की बलि दे देती हैं। नैतिक एवं आदर्श व्यक्तित्व के कारण मैसेज वर्मा अपनी इच्छाओं का दमन करती हैं। इसी भांति उनकी अन्य कहानी 'इस जन्म में' भी पति–पत्नी के खोखले रिश्तों को उद्घाटित किया गया है। यहाँ पर मिस्टर लाम्बा एवं रोहिणी के माध्यम से भाटिया जी ने पति–पत्नी के रिश्तों में आ रही दरार को दिखाया है। दोनों के झगड़े यहाँ तक पहुँच जाते हैं कि दोनों संबंध विच्छेद करने का मन बना लेते हैं। वकील के द्वारा सलाह दी जाती है कि आप दोनों छः महीने साथ रहकर देख लें यदि जीवन का निर्वाह सही ढंग से हो गया तो तलाक की आवश्यकता नहीं है। यहाँ लेखक ने रोहिणी के हृदय–परिवर्तन को दिखाया है। वह अपने पति के साथ अच्छे संबंध न होते हुए भी यही कामना करती है कि उसका शेष जीवन सुहागिन ही बीते,किन्तु रह–रहकर उसे पूर्व की यंत्रणा याद आती है जो एक ग्रंथि रूप में उसके जीवन को सालती है। कहानी का सार यह है कि जीवन में कई बार जिन रिश्तों के साथ हम रहना चाहते हैं, चाहकर भी नहीं रह पाते। पुरानी चोटें या पुराने घाव अन्तर्मन को मथते हैं और जीवन असार हो जाता है। वर्तमान संदर्भ में यह कहानी अत्यंत आवश्यक एवं प्रासंगिक जान पड़ती है। मिस्टर लांबा का पत्नी से सामंजस्य न हो पाने के कारण वह व्यसनी हो जाता है और शराब का सहारा लेता है यही नहीं दूसरी लड़कियों से संपर्क करने में भी नहीं हिचकिचाते हैं। रोहिणी द्वारा मायके की धौंस

देना तथा पति का तिरस्कार करना, बेवजह लांछन लगाना आदि के कारण दोनों के बीच दूरियां बढ़ने लगती हैं। परिणामतः एकाकीपन एवं उचाटता दोनों के जीवन में पसरने लगती है। इस संदर्भ में लेखक कहते हैं कि– **"धीरे–धीरे डबलबेड के बीच एक मीटर का खाली स्थान बन गया। छह फुट के डबलबेड के दो किनारों पर लाशों की तरह दो शरीर सांस लेते, तनाव से ग्रस्त जीवन जीते दिखाई पड़ते हैं। रोहिणी के विरोध करने पर वह उसके साथ मारपीट करने से भी पीछे नहीं हटते हैं।"**[5] अनैतिक व्यवहार और अविश्वास से परिवार में कलह और संबंधों में रिक्तता आ जाती है। इसी कहानी के एक अन्य प्रसंग के द्वारा पता चलता है कि जीवन में तीसरे व्यक्ति के आने से तनाव बढ़ जाता है। ड्राइवर के माध्यम से रोहिणी को उनके अवैध संबंधों का पता चलता है। जब वह कहता है कि **"बीबी जी इन दिनों में साहब में कुछ फर्क आ गया है, टूर पर उनके साथ दफ्तर से एक दो जनी जाती हैं।"**[6] पुरुष के अवैध संबंध, स्त्री की उपेक्षा करना,अवेहलना करना, सम्मान ना देना भी दांपत्य जीवन में तनाव का कारण बनता है। इन सभी घटनाओं के पश्चात भी स्त्री आजीवन सुहागन रहने का साहस करती दिखाई देती है जो बात रोहिणी के कथन से स्पष्ट होती है **"कहीं मन में है कुछ, हम कितने ही गलत हुए आप भी, मैं भी, हमारा विवाह अग्नि के फेरों से हुआ है, वह साक्षी है। इसीलिए चाहती हूं कि मैं सुहागिन मरूं।**[7] इसमें भारतीय परंपरा के अनुसार पतिव्रता धर्म का पालन करते हुए स्त्री के प्रेम एवं समर्पण को चित्रित किया है।

इसी तरह भाटिया जी कहानी 'बहाना' भी पारिवारिक विघटन पर आधारित है। इसमें डॉक्टर शालिनी मल्होत्रा जब अपने विश्वविद्यालय मित्र प्रकाश से मिलती है तो अपनी पारिवारिक समस्याओं तथा पारिवारिक संबंध के बारे में बताती है। पति के शराब पीने की आदत, पशु–तुल्य व्यवहार तथा रोज मारपीट करना उसकी अहम को चोटिल करता है जिसके कारण वह आक्रामक व्यवहार को अपनाती है और गुस्से में पति पर आक्रमण कर देती है जिससे वह जख्मी हो जाता है इसी संदर्भ में लेखक के शब्दों में **"शालिनी ठंडी सांस भरी। फिर बोली, खैर !एक दिन फिर किसी निकाली गई गलती पर मुझ पर पति देव टूट पड़े थे। हाथापाई की नौबत तक आ गई। मैंने जाने कब विरोध में हाथ चलाना शुरु कर दिया, एक धक्का दिया उसका सिर दीवार से जा टकराया। कुछ क्षण बेहोश सा रहा। खून भी निकला। मैंने दयावश उसकी पट्टी भी की और बिस्तर पर डाल दिया"।**[8] कभी–कभी आत्म पीड़ित व्यक्ति भी निराश होने पर परपीड़क बन जाता है शालिनी के साथ भी ऐसा हुआ जब उसकी सहनशक्ति कम हुई तो निराशा और अवसाद की स्थिति उत्पन्न हो गई।

इसी कहानी के अन्य उद्धरण से स्पष्ट होता है कि शालिनी पीड़ा और अवसाद से ग्रसित है। उसकी पीड़ा का कारण चितकबरी देह है। उसके माता–पिता को चिंता रहती है कि उनकी कोढ़ वाली बेटी से कौन शादी करेगा और उनकी मृत्यु के बाद उसका क्या होगा ? माता–पिता की मृत्यु के पश्चात उसके भाई–भाभी भी शालिनी से छुटकारा पाना चाहते हैं। इसलिए वह बिना सोचे समझे अपनी बहन का रिश्ता एक चाय बेचने वाले अपाहिज लड़के से तय कर देते हैं। शालिनी पढ़ी लिखी होने के बावजूद बिना विरोध किए शादी के लिए हाँ कर देती है। शालिनी अपने अंतर्मन की पीड़ा को व्यक्त करते हुए अपने मित्र प्रकाश से कहती है कि **"पापा के न रहने के बाद भाभियों ने भाइयों पर उसकी शादी का दबाव जरा बढ़ा दिया था। वे भी माँ के मरने के साथ उस घर से कोढ़ वाली लड़की से निजात पाना चाहते थे। हाँ यह कोढ़ ही तो है। न, जाने मेरे किस जन्म के पाप हैं। मुझे भुगतना था, सो मैं मान गई। यदि उस घर से निकालने का रास्ता ब्याह है, तो ब्याह ही सही।"**[9] शालिनी हीन भावना को छुपाने के लिए शादी के लिए तैयार हो जाती है। वह भाईयों का विरोध नहीं कर पाती है और एक अनपढ़ व्यक्ति से शादी कर लेती है लेकिन पति उसके कुरूप चेहरे का मजाक बनाता है और शादी को एक एहसान समझते हुए कहता है कि **"अगर वह नहीं ब्याहता तो ब्याह ही नहीं होना था, इसलिए...."**[10] उसके द्वारा दी गई यातनाओं को चुपचाप सहन करती है। वर्तमान समय में भी हमें इसी तरह के प्रसंग दिखाई देते हैं इसीलिए यह कहानी प्रासंगिक है। इसमें मानव मूल्यों का ह्रास और नारी की पीड़ा का चित्रण भी किया गया है। नायिका लड़कियों की स्थिति बयान करते हुए कहती है कि– **"दरअसल हम लड़कियों की स्थिति अलग होती है। जिसे पाना चाहती हैं प्राप्त नहीं कर सकतीं जो करना चाहती हैं वह हो नहीं पाता।"**[11] समाज की मर्यादाओं और पितृसत्ता के नियमों के कारण वह अपनी इच्छाएं खुलकर नहीं कह पाती है। वह स्त्री पीड़ा को व्यक्त करते हुए कहती है कि–

"हमारे भीतर ऐसे संस्कार भर दिए जाते हैं कि हम मदारी की बंदरिया सी बना दी जाती हैं। बहुत कम परिवार हैं जहाँ खुलापन है समाज के कड़े नियम उनकी स्वतंत्रता का हनन करते हैं।"[12] जिसके कारण वे हमेशा तनाव ग्रसित रहती हैं। यह कहानी समाज के पितृसत्तात्मक नियमों का पर्दाफाश करती हुई दिखाई गई है।

'और वह गीत हो गई' कहानी में नारी की बेबसी और लाचारी के साथ पारिवारिक समस्याओं को उद्घाटित किया गया है। समाज में नारी को मात्र वस्तु समझा जाता है। इस कहानी की नायिका महाजनू फौजी से प्रेम करती है। उसकी प्रेम की चर्चा गांव भर में जब फैलती जाती है और मां को भी उसके और फौजी के मध्य शारीरिक संबंधों का जब पता चलता है तो वह घबरा जाती है। महाजनू के गर्भ ठहर जाने पर वह उसके पिता को बताकर उसकी शादी किसी दूसरे व्यक्ति से करवा देती है। इसी संदर्भ में **"मां ने उसके पिता से बात की और एक दिन महाजनू एक अधेड़ दाहजु व्यक्ति के पल्ले बांध दी गई। फौजी वापस मोर्चे पर जा चुका था। अधेड़ उम्र का व्यक्ति महाजनों को नहीं भाया। उसकी आंखों में हमेशा फौजी की छवि रहती। अपनी स्थिति पर काढ़ती हम लड़कियों में माता–पिता के आगे झुकने की प्रवृत्ति क्यों नहीं होती है? अपनी स्थिति से नाखुश महाजनू के समक्ष अपनी कामनाओं एवं भावनाओं को दमन करने सिवाय कोई रास्ता नहीं था।"**[13] अंततः स्पष्ट है कि वह माता–पिता की इज्जत के लिए नारी अपनी इच्छाओं का दमन करती है। महाजनू को प्रेम में असफलता और निराशा मिलती है। सच्चे प्रेम की तलाश में वह एक ही बाद तीन पुरुषों के संपर्क में आती है। परंतु हर जगह उसे प्रेम के स्थान पर मानसिक और शारीरिक यातना ही मिलती है। अपनी निराशा को व्यक्त करती हुई वह कहती है कि **"औरत क्या केवल दो जून की रोटी ही चाहती है, या छठे महीने एक जोड़ी कपड़े? प्यार के नाम पर देह का आदान–प्रदान और बस्स.. प्रेम का एक भी शब्द नहीं। हर वक्त तना हुआ चेहरा। कहीं जाना हो तो खर्च के लिए गिनकर पैसे देना और वापसी पर हिसाब मांगना। मर्जी से कुछ भी नहीं किया जा सकता ....और ये बाहर वालों पर आया क्रोध घर में स्त्री पर उतरना...क्या चाहती है वह? बस इतना की सांझ को दस मिनट वे जब भी वे बतियाएं तो सारे झंझटों से दूर केवल अपना आपा। निज और केवल निज"।**[14] इस प्रकार समाज में बदल रहे पति–पत्नी के रिश्तों का मार्मिक चित्रण किया गया है। प्रेम के अभाव में महाजनू कुंठित हो जाती है। वर्तमान समय में भी यही स्थिति है कि पति पत्नी दोनों के पास एक दूसरे के लिए समय नहीं है जिसके कारण संबंधों में कटुता दिखाई देती है। महाजनू आजीवन संघर्ष करती दिखाई देती हैं। जब दूसरे पति लक्ष्मी से शादी करती है तो वह वहाँ भी खुश नहीं रह पाती है स्वयं की स्वतंत्रता के बारे में ही सोचती विचारती रहती है उसकी मनस्थिति का वर्णन इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है **"भेड़ तो वह बना नहीं चाहती है कि गर्मी सर्दी से पहले उसकी उन उतार ली जाती। न ही कोई गाय कि जब चाहा खूंटा बदल दिया। करने दो लक्ष्मी को करियाला और रचना दो स्वांग जीवन स्वांग नहीं है.."।**[15] इसमें नारी के स्वाभिमानी और विद्रोही रूप को दिखाया है। अब नारी पहले की तरह चारदीवारी में नहीं रहना चाहती है तथा स्वतंत्र जीवन अपनाकर अपनी पहचान स्वयं बनना चाहती है।

'उसका रोना' कहानी पति–पत्नी के संबंधों में बिखराव की कहानी है। यहाँ संबंधों में कटुता का प्रमुख कारण विवाहेतर संबंध हैं। यह कहानी तिरथु नामक व्यक्ति की है जो समाज और लोक मर्यादा के डर से पत्नी और भाई कर्मु की नाजायज औलाद को अपना नाम देकर उन्हें कलंक से बचाता है। परंतु फिर भी उसके भाई उसका सम्मान नहीं करते हैं और उसके साथ मारपीट कर उसे घर से निकाल देते हैं। ऐसे समय में उसकी पत्नी भी उसका साथ नहीं देती है जिसकी चर्चा गाँव भर में होती है। इसी संदर्भ में लेखक लिखते हैं कि **"ब्याह के छः महीने बाद इसे पता चला कि वह गर्भ से है। लोक लाज कहो या घर की मर्यादा इसने उसे एक दिन के लिए अपने पास बुला लिया और दूसरे दिन गांव छोड़ आया। जिसने भी पूछा उसे बताया कि यह गर्भ उसका है। और जब बच्चा हुआ तो गृह शुद्धि वाले दिन बकाकायदा नामकरण पर गया और पंचायत में स्वयं पिता के स्थान पर अपना नाम लिखा। यह प्रक्रिया इसने तीन बार दोहराई, पीछे लड़की की शादी में इसने अपने बैंक खाते से रकम निकाली और छोटे भाई को दे दी। हां कन्यादान के समय नहीं गया"।**[16] इस प्रकार तिरथु अपनी खुशियों का दमन कर अपनी जिम्मेदारी को निभाता है। एक अन्य प्रसंग वह है जब तिरथु को पता चलता है कि उसकी पत्नी और भाई के बीच शारीरिक संबंध हैं तो

उसके स्वाभिमान को चोट पहुंचती है। उसे अपने घर में घुटन होने लगती है। इसीलिए वह घर छोड़कर जाने का निर्णय लेता है। पत्नी के द्वारा बार–बार क्षमा याचना करने पर, बच्चों का वास्ता देने पर भी वह नहीं रुकता है। तिरथु अपने संकल्प पर दृढ़ रहता है। तिरथु के स्वाभिमान को तब ठेस पहुंचती है जब उसकी पत्नी तिरथु का अपमान सभी के समक्ष करती है। और वह इस तिरस्कार को बर्दाश्त नहीं कर पाता है। पत्नी के उपेक्षा के कारण तिरथु के पुरुष–दर्प को चोट लगती है। इस पर वह पत्नी से अलग रहने का निर्णय लेता है और क्षमा मांगने पर भी पत्नी को माफ नहीं करता है लेखक के शब्दों में कहें तो **"वह बोली थी बच्चे पूछते हैं कि वह यहाँ क्यों नहीं रहते।यह तो तू जान मैं तो तेरे लिए उसी दिन मर गया था। जब तू मेरे पास से भागी थी और मेरे लिए तू उसे दिन मर गई थी जिस दिन तूने आंगन में सबके सामने घर की इज्जत उछाली थी"।**[17] अतः जब व्यक्ति के स्वाभिमान को चोट लगती है तो वह रिश्तो की परवाह किए बिना ही जीवन यापन करता है।विवाहेतर संबंधों के कारण परिवार में पनपते हुए आंतरिक कलह,असंतोष, तनाव आदि का चित्रण भी किया गया है।

निष्कर्ष :– निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि जब मनुष्य को समाज में व्याप्त रूढ़ियों, सामाजिक समस्याओं, समाज एवं लोगों की बदलती मानसिकताओं,विषमताओं विसंगतियों का सामना करना पड़ता है तो वह निराश व हताश होकर कुंठित हो जाता हैं। भाटिया की कहानियों में आधुनिक समाज की जटिलताओं और विसंगतियों का यथार्थवादी चित्रण है। लेखक ने दर्शाया कि कैसे आज भी समाज में पारिवारिक विघटन, नैतिक मूल्यों का पतन, मानवीय मूल्यों का विघटन और स्वार्थपरता के कारण व्यक्ति गहन मानसिक पीड़ा और अवसाद का अनुभव करता है? 'ब्रह्मफाँस', 'बहाना', 'उसका रोना' तथा 'वह गीत हो गई' जैसी कहानियों में लेखक ने दाम्पत्य जीवन में उत्पन्न अविश्वास, उपेक्षा, मानसिक एवं शारीरिक यातना, भावनात्मक शोषण तथा संबंधों के विघटन को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। इन कहानियों के पात्र अपने वैवाहिक जीवन में प्रेम और विश्वास की कमी के कारण अकेलेपन, अवसाद, कुंठा और असुरक्षा का अनुभव करते हैं। भाटिया जी यह भी दर्शाते हैं कि दाम्पत्य संबंध केवल सामाजिक बंधन नहीं, बल्कि विश्वास, सम्मान, संवेदनशीलता और पारस्परिक सहयोग की मजबूत नींव पर टिके होते हैं। जब इन मूल्यों का ह्रास होता है, तब वैवाहिक जीवन का संतुलन भी टूटने लगता है।इस प्रकार भाटिया जी की कहानियाँ दाम्पत्य जीवन के यथार्थ को उजागर करते हुए यह संदेश देती हैं कि पति–पत्नी के संबंधों की स्थिरता और मधुरता के लिए पारस्परिक विश्वास, संवाद, सहानुभूति, त्याग और सम्मान अनिवार्य हैं। उनकी कहानियाँ केवल दाम्पत्य जीवन की समस्याओं का चित्रण नहीं करतीं, बल्कि स्वस्थ एवं संतुलित वैवाहिक जीवन के लिए आवश्यक मानवीय मूल्यों की स्थापना का भी संदेश देती हैं। सत्य को अपने अनुभव की वाणी में सहेजकर जनमानस के सम्मुख प्रस्तुत करने का कार्य भी इन कहानियों के माध्यम से किया गया है यही उनकी कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता और समकालीन प्रासंगिकता है।

संदर्भ–सूची :–

1. यादव, डॉ. जोगिन्द्र कुमार, शब्द ब्रह्मा, अंक 1, 17 मार्च, 2013, पृ. 10।
2. ठाकुर, नेमचन्द, हिमप्रस्थ, अंक 6, सितम्बर, 2020, पृ. 11।
3. भाटिया, बद्री सिंह, 'लोगों को पता होता है', भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012, पृ. 80।
4. भाटिया, बद्री सिंह, 'लोगों को पता होता है', भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012, पृ. 84।
5. भाटिया, बद्री सिंह, 'और वह गीत हो गई', भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृ. 77।
6. भाटिया, बद्री सिंह, 'और वह गीत हो गई', भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृ. 78।
7. भाटिया, बद्री सिंह, 'और वह गीत हो गई', भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृ. 81।
8. भाटिया, बद्री सिंह, 'और वह गीत हो गई', भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृ. 111।
9. भाटिया, बद्री सिंह, 'और वह गीत हो गई', भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृ. 109।
10. भाटिया, बद्री सिंह, 'और वह गीत हो गई', भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृ. 110।
11. भाटिया, बद्री सिंह, 'और वह गीत हो गई', भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृ. 112।
12. भाटिया, बद्री सिंह, 'और वह गीत हो गई', भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृ. 112।
13. भाटिया, बद्री सिंह, 'और वह गीत हो गई', भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृ. 13।
14. भाटिया, बद्री सिंह, 'और वह गीत हो गई', भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृ. 15।
15. भाटिया, बद्री सिंह, 'और वह गीत हो गई', भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृ. 16।
16. भाटिया, बद्री सिंह, 'लोगों को पता होता है', भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012, पृ. 40।
17. भाटिया, बद्री सिंह, 'लोगों को पता होता है', भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012, पृ. 42।

शैक्षिक संस्थानों में कार्यान्वित एकीकृत अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम (ITEP) : नीति, संस्थागत क्रियान्वयन एवं व्यवहारिक चुनौतियों का विश्लेषण

डॉ. हरीश पाण्डेय *

डॉ. सुधीर कुमार तिवारी**

मो. यासिर अली***

सारांश :– राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 ने भारतीय अध्यापक शिक्षा व्यवस्था में गुणात्मक परिवर्तन लाने के उद्देश्य से एकीकृत अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम (Integrated Teacher Education Programme–ITEP) को शिक्षक–तैयारी का मानक मॉडल घोषित किया है। इस कार्यक्रम का मूल उद्देश्य अध्यापक शिक्षा को बहुविषयक उच्च शिक्षा संस्थानों के साथ एकीकृत करते हुए ऐसे शिक्षक तैयार करना है, जिनमें विषयगत दक्षता, शिक्षण कौशल, अनुसंधान अभिवृत्ति, व्यावसायिक नैतिकता तथा भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रति संवेदनशीलता का संतुलित विकास हो। ITEP केवल पाठ्यक्रमीय परिवर्तन नहीं है, बल्कि अध्यापक शिक्षा की संपूर्ण संरचना, दृष्टिकोण एवं क्रियान्वयन प्रक्रिया में परिवर्तन का एक व्यापक प्रयास है। प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य शैक्षिक संस्थानों में कार्यान्वित ITEP की नीतिगत अवधारणाओं, संस्थागत क्रियान्वयन की वर्तमान स्थिति तथा व्यवहारिक चुनौतियों का समग्र विश्लेषण करना है। प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक अनुसंधान उपागम पर आधारित है, जिसमें प्रलेख विश्लेषण, संस्थागत अवलोकन, अर्द्ध–संरचित साक्षात्कार तथा चेकलिस्ट के माध्यम से आवश्यक आंकड़ों का संकलन किया गया।

अध्ययन में शिक्षक प्रशिक्षकों, कार्यक्रम समन्वयकों, प्रशासनिक अधिकारियों एवं ITEP से संबद्ध विद्यार्थियों के अनुभवों का विश्लेषण किया गया। अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों से स्पष्ट होता है कि ITEP ने अध्यापक शिक्षा में बहुविषयकता, विद्यालय–अनुभव आधारित अधिगम, अनुसंधान संस्कृति तथा व्यावसायिक दक्षताओं के विकास की दिशा में महत्वपूर्ण संभावनाएँ उत्पन्न की हैं, किन्तु इसके प्रभावी क्रियान्वयन में अधोसंरचनात्मक सीमाएँ, संकाय सदस्यों में प्रशिक्षण/जागरूकता का अभाव, नीतिगत अस्पष्टता, समन्वय संबंधी कठिनाइयां तथा संसाधनों की असमान उपलब्धता जैसी चुनौतियां अभी भी विद्यमान हैं। अध्ययन यह प्रतिपादित करता है कि ITEP की सफलता केवल नीतिगत प्रावधानों पर निर्भर नहीं है, बल्कि संस्थागत तैयारी, सक्षम नेतृत्व, सतत संकाय विकास, विद्यालय–विश्वविद्यालय साझेदारी तथा प्रभावी शैक्षणिक निगरानी पर समान रूप से आधारित है। शोध–पत्र में प्रस्तुत निष्कर्ष अध्यापक शिक्षा संस्थानों, नीति–निर्माताओं तथा नियामक संस्थाओं के लिए उपयोगी सुझाव प्रदान करते हैं, जो प्ज्म्च के अधिक प्रभावी एवं गुणवत्तापूर्ण क्रियान्वयन की दिशा में मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं।

मुख्य शब्द :– एकीकृत अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम (ITEP), राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020, अध्यापक शिक्षा , बहुविषयक शिक्षा, संस्थागत क्रियान्वयन ।

प्रस्तावना :– शिक्षा किसी भी राष्ट्र की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक प्रगति का आधारभूत स्तंभ मानी जाती है। किसी भी शिक्षा प्रणाली की गुणवत्ता का प्रत्यक्ष संबंध उसके शिक्षकों की गुणवत्ता से होता है। शिक्षक केवल ज्ञान के संवाहक नहीं होते, बल्कि वे सामाजिक परिवर्तन, लोकतांत्रिक मूल्यों, नैतिक चेतना

***सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा।**

****सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा।**

*****परास्नातक, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा।**

तथा मानव संसाधन विकास के प्रमुख अभिकर्ता होते हैं। इस कारण विश्व के लगभग सभी विकसित देशों ने अध्यापक शिक्षा को अपने शैक्षिक विकास का केंद्रीय आधार माना है। भारत में भी अध्यापक शिक्षा के विकास का इतिहास अत्यंत समृद्ध रहा है। वैदिक गुरुकुल परंपरा से लेकर आधुनिक विश्वविद्यालयीय व्यवस्था तक शिक्षक निर्माण की अवधारणा समय, समाज एवं शिक्षा की बदलती आवश्यकताओं के अनुरूप निरंतर विकसित होती रही है। किंतु वैश्वीकरण, ज्ञान–आधारित अर्थव्यवस्था, तकनीकी परिवर्तन तथा इक्कीसवीं शताब्दी के कौशलों की बढ़ती मांग ने अध्यापक शिक्षा के समक्ष नई चुनौतियां प्रस्तुत की हैं, जिनके समाधान हेतु पारंपरिक शिक्षक–प्रशिक्षण मॉडल पर्याप्त नहीं रह गए।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948–49), माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952–53), कोठारी आयोग (1964–66), राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968, 1986 एवं 1992), न्यायमूर्ति वर्मा आयोग (2012) तथा राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (NCTE) के विभिन्न विनियमों ने अध्यापक शिक्षा में समय–समय पर महत्वपूर्ण सुधारों का मार्ग प्रशस्त किया। इन सभी प्रयासों का उद्देश्य अध्यापक शिक्षा को अधिक वैज्ञानिक, व्यावसायिक तथा समाजोन्मुख बनाना था। तथापि अनेक अध्ययनों एवं नीतिगत प्रतिवेदनों में यह स्पष्ट किया गया कि अध्यापक शिक्षा संस्थानों में कार्यक्रमों की गुणवत्ता, विद्यालयीय अनुभव, विषयगत समन्वय, अनुसंधान संस्कृति तथा व्यावसायिक दक्षताओं के विकास में अभी भी पर्याप्त सुधार की आवश्यकता है। विशेष रूप से एकविषयक अध्यापक शिक्षा संस्थानों, सीमित विद्यालय–अनुभव, पाठ्यक्रम एवं व्यवहार के मध्य अंतर तथा गुणवत्ता आश्वासन संबंधी चुनौतियों ने अध्यापक शिक्षा की प्रभावशीलता पर प्रश्नचिह्न खड़े किए।

इन्हीं परिस्थितियों के संदर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 ने अध्यापक शिक्षा को व्यापक रूप से पुनर्गठित करने की परिकल्पना प्रस्तुत की। नीति के अनुसार वर्ष 2030 तक अध्यापक शिक्षा का प्रमुख माध्यम चार वर्षीय एकीकृत अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम होगा, जिसे बहुविषयक उच्च शिक्षा संस्थानों में संचालित किया जाएगा। इस कार्यक्रम का उद्देश्य विषय ज्ञान, शिक्षाशास्त्रीय दक्षताओं, व्यावसायिक मूल्यों, अनुसंधान क्षमता, विद्यालयीय अनुभव तथा भारतीय ज्ञान परंपरा के समन्वित विकास के माध्यम से ऐसे शिक्षकों का निर्माण करना है, जो भविष्य की शिक्षा आवश्यकताओं के अनुरूप विद्यालयों का नेतृत्व कर सकें। इस प्रकार ITEP केवल एक नया पाठ्यक्रम नहीं, बल्कि अध्यापक शिक्षा की संपूर्ण दार्शनिक, संरचनात्मक एवं क्रियात्मक पुनर्संरचना का प्रतिनिधित्व करता है। ITEP की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसकी बहुविषयक प्रकृति है। इसमें विद्यार्थी प्रारंभिक वर्षों से ही विषय ज्ञान, शिक्षा शास्त्र, मनोविज्ञान, अनुसंधान, विद्यालयीय अनुभव, सामुदायिक सहभागिता, समावेशी शिक्षा, कला–समेकित शिक्षा, भारतीय ज्ञान परंपरा तथा प्रौद्योगिकी आधारित शिक्षण जैसे विविध आयामों का समन्वित अध्ययन करते हैं।

यह कार्यक्रम भविष्य के शिक्षक को केवल विषय विशेषज्ञ नहीं, बल्कि चिंतनशील, नवाचारी, शोधोन्मुख एवं सामाजिक रूप से उत्तरदायी व्यावसायिक शिक्षक के रूप में विकसित करने का प्रयास करता है। इसके अतिरिक्त कार्यक्रम विद्यालयीय इंटर्नशिप, प्रायोगिक अनुभव तथा वास्तविक शिक्षण परिस्थितियों पर विशेष बल देता है, जिससे अध्यापक शिक्षा अधिक अनुभवात्मक एवं व्यावहारिक बन सके।

यद्यपि ITEP की नीतिगत संरचना अत्यंत दूरदर्शी एवं प्रगतिशील है, तथापि किसी भी शैक्षिक सुधार की सफलता उसके वास्तविक क्रियान्वयन पर निर्भर करती है। अनेक उच्च शिक्षा संस्थानों में ITEP का संचालन प्रारंभ हो चुका है, परन्तु विभिन्न संस्थानों की संरचनात्मक क्षमता, संकाय की तैयारी, अधोसंरचना, पाठ्यचर्या के एकीकरण, विद्यालयीय साझेदारी तथा प्रशासनिक समन्वय में पर्याप्त विविधता देखने को मिलती है। कुछ संस्थानों ने इस कार्यक्रम को नवाचार एवं गुणवत्तापूर्ण अध्यापक शिक्षा के अवसर के रूप में स्वीकार किया है, जबकि अन्य संस्थानों में संसाधनों की सीमाएँ, प्रशिक्षित मानव संसाधन का अभाव तथा नीतिगत स्पष्टता की कमी इसके प्रभावी संचालन में बाधा उत्पन्न कर रही है। इसलिए केवल नीतिगत दस्तावेजों के अध्ययन से ITEP की वास्तविक स्थिति का समुचित आकलन संभव नहीं है। इसके लिए संस्थागत स्तर पर अनुभवजन्य विश्लेषण आवश्यक है।

वैश्विक स्तर पर विगत तीन दशकों में अध्यापक शिक्षा को केवल विषय–ज्ञान तक सीमित न रखकर उसे व्यावसायिक दक्षताओं, अनुसंधान अभिवृत्ति, चिंतनशील अभ्यास, विद्यालय–अनुभव, समावेशी शिक्षा तथा सतत व्यावसायिक विकास के साथ जोड़ने पर विशेष बल दिया गया है। भारत में भी राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के माध्यम से इसी व्यापक दृष्टिकोण को अपनाते हुए एकीकृत अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम की अवधारणा प्रस्तुत की गई। यद्यपि यह कार्यक्रम अपेक्षाकृत नवीन है, तथापि इसकी वैचारिक पृष्ठभूमि, बहुविषयक संरचना तथा संस्थागत क्रियान्वयन को समझने के लिए राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय साहित्य का विश्लेषण अत्यंत आवश्यक है।

भारत में अध्यापक शिक्षा सुधारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि विभिन्न आयोगों एवं समितियों ने समय–समय पर अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने हेतु अनेक महत्वपूर्ण अनुशंसाएँ प्रस्तुत की हैं। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948–49) ने शिक्षक को विश्वविद्यालयीय शिक्षा व्यवस्था का प्रमुख स्तंभ मानते हुए शिक्षक प्रशिक्षण की गुणवत्ता में सुधार पर बल दिया। इसके पश्चात माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952–53) ने विद्यालयी आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षक तैयार करने तथा प्रशिक्षण संस्थानों की संरचना को अधिक व्यावहारिक बनाने की अनुशंसा की। भारतीय शिक्षा आयोग (कोठारी आयोग, 1964–66) ने पहली बार स्पष्ट रूप से कहा कि किसी भी शिक्षा व्यवस्था का स्तर उसके शिक्षकों के स्तर से अधिक नहीं हो सकता। आयोग ने अध्यापक शिक्षा को विश्वविद्यालयीय व्यवस्था से जोड़ने, विद्यालय–अनुभव को सुदृढ़ करने तथा शिक्षा संकायों को अनुसंधान एवं नवाचार का केंद्र बनाने पर विशेष बल दिया। इन अनुशंसाओं ने भारतीय अध्यापक शिक्षा की भावी दिशा निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) तथा उसके कार्यान्वयन कार्यक्रम (1992) ने अध्यापक शिक्षा को एक निरंतर चलने वाली व्यावसायिक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया। इस अवधि में जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों (DIET), राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषदों (SCERT) तथा अन्य प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना द्वारा अध्यापक शिक्षा को संस्थागत रूप से सुदृढ करने का प्रयास किया गया। इसके बावजूद विभिन्न समीक्षाओं में यह तथ्य सामने आया कि अधिकांश अध्यापक शिक्षा संस्थानों में पाठ्यक्रम, विद्यालय–अनुभव, मूल्यांकन प्रणाली तथा व्यावसायिक दक्षताओं के विकास के मध्य अपेक्षित समन्वय स्थापित नहीं हो सका। परिणामस्वरूप अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम अनेक स्थानों पर प्रमाणपत्र–उन्मुख होकर रह गए तथा उनमें नवाचार, अनुसंधान एवं विद्यालयी यथार्थ के साथ अपेक्षित संबंध विकसित नहीं हो पाया।

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (NCTE) ने वर्ष 2014 के विनियमों के माध्यम से अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों की अवधि, पाठ्यक्रम संरचना तथा विद्यालय–अनुभव में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए। इन विनियमों के अंतर्गत बी.एड. कार्यक्रम को दो वर्षीय बनाया गया तथा विद्यालय इंटर्नशिप की अवधि में वृद्धि की गई। इन सुधारों का उद्देश्य अध्यापक शिक्षा को अधिक अनुभवात्मक एवं व्यावहारिक बनाना था। तथापि अनेक अध्ययनों में यह संकेत प्राप्त हुआ कि केवल कार्यक्रम की अवधि बढ़ा देने से गुणवत्ता में अपेक्षित सुधार स्वतः नहीं हुआ। प्रशिक्षण संस्थानों की अधोसंरचना, प्रशिक्षित संकाय, संसाधनों की उपलब्धता तथा प्रभावी शैक्षणिक नेतृत्व जैसे कारक अभी भी प्रमुख चुनौतियों के रूप में विद्यमान रहे। इन्हीं चुनौतियों की पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 ने अध्यापक शिक्षा में व्यापक संरचनात्मक परिवर्तन का प्रस्ताव प्रस्तुत किया था। अध्यापक शिक्षा को खंडित कार्यक्रमों से निकालकर एक समग्र एवं बहुआयामी स्वरूप प्रदान किया।

हाल के वर्षों में ITEP पर उपलब्ध प्रारंभिक अध्ययनों से यह संकेत प्राप्त होता है कि इस कार्यक्रम ने अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में सकारात्मक संभावनाएँ उत्पन्न की हैं। अनेक शोधों में यह पाया गया कि बहुविषयक संस्थानों में संचालित कार्यक्रमों के विद्यार्थियों में विषयगत समझ, आलोचनात्मक चिंतन, विद्यालयीय अनुभव तथा व्यावसायिक आत्मविश्वास अपेक्षाकृत अधिक विकसित होता है। विद्यालय–अनुभव की दीर्घकालिक संरचना विद्यार्थियों को वास्तविक कक्षा परिस्थितियों से परिचित कराती है तथा सिद्धांत एवं व्यवहार के मध्य विद्यमान अंतर को कम करने में सहायता प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त अनुसंधान परियोजनाओं, सामुदायिक सहभागिता तथा प्रायोगिक कार्यों के माध्यम से विद्यार्थियों में समस्या–समाधान क्षमता, सहयोगात्मक अधिगम तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का भी विकास होता है।

शोध उद्देश्य

1. ITEP की नीतिगत अवधारणा एवं संस्थागत क्रियान्वयन का विश्लेषण करना।
2. ITEP के संचालन में सहायक शैक्षणिक एवं प्रशासनिक कारकों का अध्ययन करना।
3. ITEP कार्यक्रम के क्रियान्वयन में आने वाली व्यवहारिक चुनौतियों की पहचान करना।
4. ITEP के प्रभावी एवं गुणवत्तापूर्ण क्रियान्वयन हेतु व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध क्रिया–विधि :– प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक अनुसंधान उपागम पर आधारित है, क्योंकि इसका उद्देश्य एकीकृत अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम (ITEP) के नीतिगत प्रावधानों, संस्थागत क्रियान्वयन प्रक्रियाओं तथा व्यवहारिक चुनौतियों का गहन विश्लेषण करना है। अध्ययन में वर्णनात्मक तथा विश्लेषणात्मक शोध दृष्टिकोणों का समन्वित उपयोग किया गया। अध्ययन में दस्तावेजीय विश्लेषण, संस्थागत अवलोकन तथा अर्द्ध–संरचित साक्षात्कार को एक–दूसरे के पूरक रूप में प्रयोग किया गया, जिससे निष्कर्षों की विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता सुनिश्चित की जा सके। विभिन्न स्रोतों से प्राप्त तथ्यों का त्रिकोणीकरण कर निष्कर्षों की पुष्टि की गई। अध्ययन की जनसंख्या में वे उच्च शिक्षा संस्थान सम्मिलित किए गए जहाँ राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् के दिशा–निर्देशों के अनुरूप प्ज्म्च संचालित किया जा रहा था। सहभागी समूहों में, शिक्षक शिक्षण संस्थानों के शिक्षक–शिक्षक, ITEP कार्यक्रम समन्वयक, प्रशासनिक अधिकारी एवं प्ज्म्च में अध्ययनरत विद्यार्थी प्रमुख रूप से शामिल रहे। प्रतिदर्श का चयन उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्शन द्वारा किया गया, जिससे ऐसे प्रतिभागियों को शामिल किया जा सके जो कार्यक्रम के संचालन से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए थे। यह प्रतिदर्शन तकनीक गुणात्मक अनुसंधान की प्रकृति के अनुरूप थी। अध्ययन में उपकरण के रूप में दस्तावेज विश्लेषण हेतु चेकलिस्ट का उपयोग किया गया जिसके माध्यम से राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020, NCTE द्वारा प्रकाशित ITEP पाठ्यचर्या रूपरेखा, विश्वविद्यालयीय नियमावली, संस्थागत अभिलेख तथा संबंधित नीतिगत दस्तावेजों का विश्लेषण किया गया। अर्द्ध–संरचित साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से शिक्षक–प्रशिक्षकों, कार्यक्रम समन्वयकों एवं प्रशासनिक अधिकारियों के अनुभवों, चुनौतियों तथा सुझावों को समझने हेतु उपयोग की गई। संस्थागत अवलोकन हेतु अवलोकन अनुसूची के उपयोग से अधोसंरचना, प्रयोगशालाएँ, ICT सुविधाएँ, पुस्तकालय, विद्यालयीय सहभागिता, पाठ्यचर्या संचालन तथा शिक्षण–अधिगम वातावरण का प्रत्यक्ष अवलोकन किया गया। इन समस्त शोध उपकरणों की वैधता की जांच हेतु उक्त विषय के विषय विशेषज्ञों सुझाओं को शामिल किया गया एवं वैधीकरण के समस्त पदों को प्रतिस्थापित किया गया। अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के समंकों का उपयोग किया गया। प्राथमिक समंक प्रत्यक्ष साक्षात्कार, संस्थागत अवलोकन तथा सहभागी संवाद के माध्यम से प्राप्त किए गए, जबकि द्वितीयक समंक राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020, NCTE के दिशा–निर्देशों, ITEP पाठ्यचर्या रूपरेखा, विश्वविद्यालयीय अभिलेखों तथा संबंधित शोध अध्ययनों से संकलित किए गए। साक्षात्कार प्रतिभागियों की पूर्व सहमति से आयोजित किए गए तथा प्रत्येक साक्षात्कार का विस्तृत विवरण तैयार किया गया। अवलोकन के दौरान संस्थानों की भौतिक एवं शैक्षणिक व्यवस्थाओं का व्यवस्थित अभिलेखीकरण किया गया। दस्तावेजीय स्रोतों से प्राप्त तथ्यों का इन दोनों स्रोतों से प्राप्त अनुभवजन्य सूचनाओं के साथ तुलनात्मक विश्लेषण किया गया।

संकलित गुणात्मक समंकों को थीम आधारित विश्लेषण की प्रक्रिया के माध्यम से विश्लेषित किया गया। सर्वप्रथम साक्षात्कारों एवं अवलोकनों से प्राप्त विवरणों का बार–बार अध्ययन किया गया। तत्पश्चात समान प्रकृति की अभिव्यक्तियों को कोड प्रदान कर उन्हें व्यापक थीम में वर्गीकृत किया गया। अंतिम चरण में दस्तावेजीय विश्लेषण, साक्षात्कार एवं अवलोकन से प्राप्त निष्कर्षों का तुलनात्मक एवं व्याख्यात्मक विश्लेषण किया गया, जिससे प्ज्म्च के नीतिगत उद्देश्यों एवं व्यवहारिक क्रियान्वयन के मध्य संबंधों की स्पष्ट व्याख्या की जा सके।

उद्देश्य आधारित विश्लेषण एवं परिणाम :– साक्षात्कार, दस्तावेजीय विश्लेषण तथा संस्थागत अवलोकन से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण करने पर प्ज्म्च के क्रियान्वयन से संबंधित जो प्रमुख थीम उभरकर सामने आए। ये थीम कार्यक्रम की नीतिगत संरचना, संस्थागत तैयारी, पाठ्यचर्या, संसाधनों, प्रशासनिक व्यवस्था तथा

मूल्यांकन प्रणाली के विभिन्न आयामों को समग्र रूप से अभिव्यक्त करते हैं जिन इन उद्देश्यों के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है–

उद्देश्य–1 : ITEP की नीतिगत अवधारणा एवं संस्थागत क्रियान्वयन का विश्लेषण :– दस्तावेजीय विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ कि प्जम्च केवल चार वर्षीय अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम नहीं है, बल्कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के अंतर्गत अध्यापक शिक्षा के व्यापक पुनर्गठन का आधार है। कार्यक्रम का उद्देश्य विषय–ज्ञान, शिक्षाशास्त्र, व्यावसायिक नैतिकता, अनुसंधान क्षमता तथा विद्यालयीय अनुभव का समेकित विकास करना है। NCTE द्वारा विकसित ITEP पाठ्यचर्या रूपरेखा –2023 तथा रेग्युलेशन में कार्यक्रम की संरचना, प्रवेश प्रक्रिया, कार्य दिवस, उपस्थिति, संकाय संरचना, अधोसंरचना तथा मूल्यांकन के लिए स्पष्ट मानक निर्धारित किए गए हैं। विश्लेषण से यह भी स्पष्ट हुआ कि नीति–स्तर पर कार्यक्रम अत्यंत व्यापक एवं दूरदर्शी है। इसमें स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप 30 प्रतिशत पाठ्यक्रमीय लचीलापन, विद्यालय–आधारित प्रैक्टिकम, बहुविषयक अध्ययन तथा समावेशी शिक्षा जैसे प्रावधान इसे पूर्ववर्ती B.Ed. कार्यक्रमों से अधिक प्रासंगिक बनाते हैं। तथापि दस्तावेजों में वर्णित अनेक प्रावधान संस्थागत स्तर पर पूर्णतः लागू नहीं हो सके हैं। विशेषकर पर्याप्त संकाय, प्ब्ज संसाधन, प्रयोगशालाएँ तथा विद्यालयीय साझेदारी जैसे क्षेत्रों में नीति और व्यवहार के मध्य स्पष्ट अंतर परिलक्षित हुआ।

इस प्रकार यह संकेत मिलता है कि ITEP की अवधारणा सुदृढ़ है, किन्तु उसके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए संस्थागत तैयारी को और अधिक सुदृढ़ बनाने की आवश्यकता है। संपूर्णता में यह स्पष्ट हुआ कि अधिकांश संस्थानों ने ITEP को राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के अनुरूप अध्यापक शिक्षा में संरचनात्मक परिवर्तन के रूप में स्वीकार किया है। कार्यक्रम के अंतर्गत बहुविषयक अध्ययन, विद्यालयीय अनुभव तथा व्यावसायिक दक्षताओं के विकास को संस्थागत स्तर पर महत्व दिया जा रहा है। अनेक संस्थानों ने पाठ्यचर्या पुनर्गठन, विभागीय समन्वय तथा विद्यालयों के साथ साझेदारी स्थापित करने की दिशा में उल्लेखनीय प्रयास किए हैं।इसके बावजूद विभिन्न संस्थानों में क्रियान्वयन की गति एवं गुणवत्ता समान नहीं पाई गई। जहाँ कुछ संस्थानों ने बहुविषयक वातावरण विकसित कर लिया है, वहीं अन्य संस्थानों में पूर्ववर्ती B.Ed. मॉडल की कार्यप्रणाली अभी भी प्रमुख रूप से विद्यमान है। इससे स्पष्ट होता है कि नीतिगत परिवर्तन की तुलना में संस्थागत परिवर्तन अपेक्षाकृत धीमी गति से हो रहा है।

उद्देश्य–2 : ITEP के संचालन में सहायक शैक्षणिक एवं प्रशासनिक कारकों का विश्लेषण :– विद्यार्थियों एवं अध्यापकों के साक्षात्कारों से यह स्पष्ट हुआ कि ITEP के प्रति समग्र दृष्टिकोण सकारात्मक है। अधिकांश अध्यापकों ने इसे NEP–2020 की एक परिवर्तनकारी पहल माना तथा यह विश्वास व्यक्त किया कि इससे अधिक दक्ष, नैतिक एवं नवाचारी शिक्षक तैयार होंगे। उनके अनुसार ITEP विषय–अध्ययन एवं शिक्षणशास्त्र के मध्य दीर्घकाल से विद्यमान विभाजन को समाप्त करता है तथा अध्यापक शिक्षा को अधिक व्यावसायिक स्वरूप प्रदान करता है। इसके विपरीत विद्यार्थियों ने यह स्वीकार किया कि कार्यक्रम के संबंध में प्रारम्भिक स्तर पर उन्हें पर्याप्त जानकारी उपलब्ध नहीं थी। अधिकांश विद्यार्थियों को ITEP की जानकारी परिवार, मित्रों, शिक्षकों अथवा सोशल मीडिया के माध्यम से प्राप्त हुई। विद्यालय स्तर पर करियर मार्गदर्शन तथा कार्यक्रम संबंधी औपचारिक जागरूकता का अभाव स्पष्ट रूप से अनुभव किया गया।

प्रवेश प्रक्रिया के दौरान एन. टी. ए. पोर्टल, सीमित संस्थानों में कार्यक्रम उपलब्ध होना, अध्ययन सामग्री की कमी तथा उपयुक्त मार्गदर्शन के अभाव जैसी कठिनाइयां भी सामने आईं। इससे स्पष्ट होता है कि कार्यक्रम की अवधारणा व्यापक है, परंतु उसकी सामाजिक एवं संस्थागत पहुँच अभी प्रारम्भिक अवस्था में है। यद्यपि अध्ययन में चार प्रमुख प्रशासनिक सहायक कारक भी भरकर सामने आए जैसे कि संस्थागत नेतृत्वय जिन संस्थानों में प्रशासनिक नेतृत्व सक्रिय एवं नवाचारोन्मुख था, वहाँ कार्यक्रम का संचालन अधिक प्रभावी पाया गया। बहुविषयक सहयोग'। विभिन्न विभागों के मध्य सहयोग ने पाठ्यक्रम एकीकरण को अधिक सुदृढ़ बनाया। विद्यालयीय साझेदारी। दीर्घकालिक विद्यालय–अनुभव ने विद्यार्थियों के व्यावसायिक आत्मविश्वास एवं शिक्षण दक्षताओं में उल्लेखनीय वृद्धि की। संकाय की सकारात्मक भूमिका जहाँ शिक्षक–शिक्षकों ने परिवर्तन को स्वीकार करते हुए नवीन शिक्षण विधियों को अपनाया, वहाँ विद्यार्थियों का अधिगम अनुभव अधिक समृद्ध पाया गया।

चित्र सं. 1.1 : प्रमुख प्रशासनिक सह्यक कारक

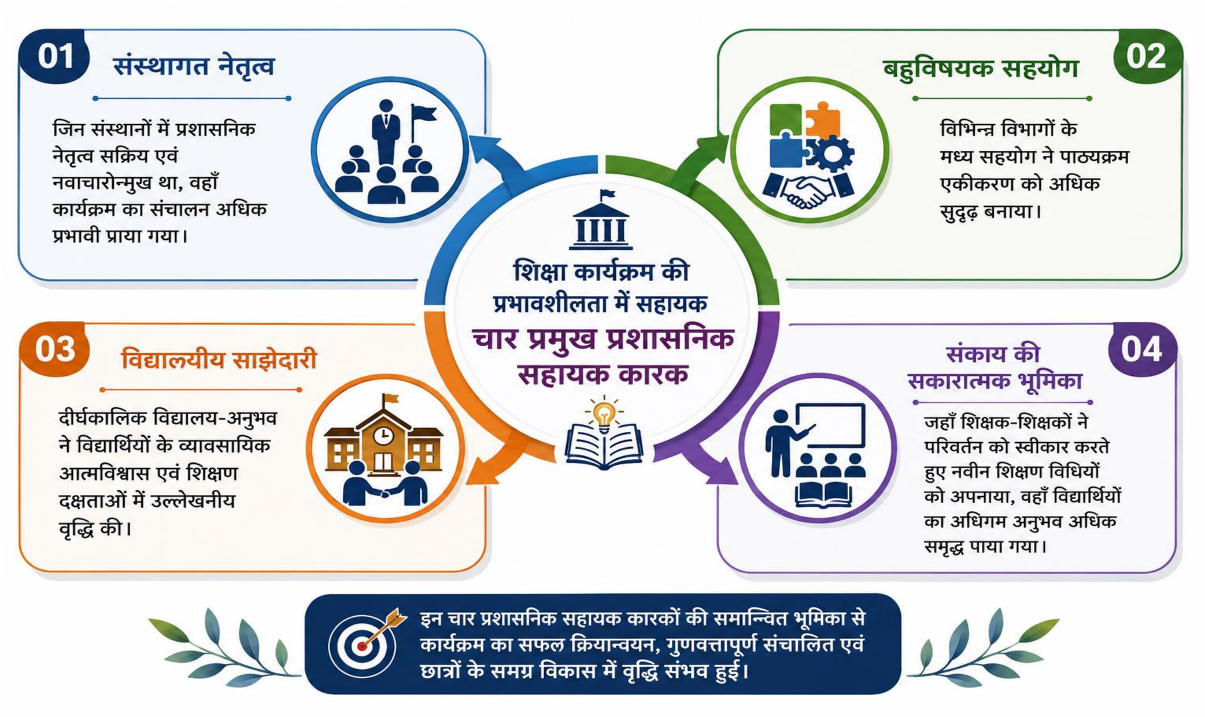

उद्देश्य–3 : ITEP कार्यक्रम के क्रियान्वयन में आने वाली व्यवहारिक चुनौतियों की पहचान।

अध्ययन में अनेक संस्थागत चुनौतियां उभरकर सामने आयीं। सबसे प्रमुख चुनौती बहुविषयक संकाय की अनुपलब्धता रही। अनेक संस्थानों में पर्याप्त विषय विशेषज्ञ उपलब्ध नहीं थे, जिसके कारण कार्यक्रम की मूल अवधारणा पूर्णतः क्रियान्वित नहीं हो सकी। दूसरी प्रमुख चुनौती अधोसंरचनात्मक संसाधनों की थी। ICT प्रयोगशालाएँ, मनोविज्ञान प्रयोगशालाएँ, भाषा प्रयोगशालाएँ तथा समकालीन शिक्षण संसाधनों की उपलब्धता सभी संस्थानों में समान नहीं थी। तीसरी चुनौती विद्यालयी साझेदारी से संबंधित रही। कुछ विद्यालयों में विद्यार्थियों को अपेक्षित शिक्षण अवसर प्राप्त हुए, जबकि अनेक स्थानों पर विद्यालय–अनुभव केवल औपचारिक गतिविधि बनकर रह गया। विद्यार्थियों ने बताया कि अधिकांश शिक्षण अभी भी व्याख्यान–प्रधान है तथा सहभागितापरक शिक्षण विधियों का नियमित उपयोग नहीं हो पाता। दूसरी ओर अध्यापकों ने पाठ्यक्रम की व्यापकता, समय प्रबंधन, इंटर्नशिप समन्वय तथा अद्यतन अध्ययन सामग्री के अभाव को कार्यक्रम की प्रमुख कठिनाइयों के रूप में रेखांकित किया। इससे यह स्पष्ट होता है कि पाठ्यचर्या की गुणवत्ता उत्कृष्ट होने के बावजूद उसका प्रभावी क्रियान्वयन अभी संस्थागत क्षमता पर निर्भर है। अनेक शिक्षक–शिक्षकों को ITEP की नवीन पाठ्यचर्या के संबंध में पर्याप्त प्रशिक्षण प्राप्त नहीं हुआ ऐसा भी एक कारक अन्वेषित हुआ।

उद्देश्य–4 : ITEP के प्रभावी एवं गुणवत्तापूर्ण क्रियान्वयन हेतु व्यावहारिक सुझाव : प्रतिभागियों के अनुभवों से निम्नलिखित प्रमुख सुझाव प्राप्त हुए–

- सभी शिक्षक–शिक्षकों हेतु नियमित गुरुदक्षता कार्यक्रम आयोजित किए जाएं।
- विश्वविद्यालय एवं विद्यालयों के मध्य दीर्घकालिक सहयोगात्मक तंत्र विकसित किया जाए।
- ITEP के लिए पृथक वित्तीय सहायता एवं अधोसंरचना विकसित की जाए।
- कार्यक्रम की सतत गुणवत्ता निगरानी हेतु स्वतंत्र मूल्यांकन तंत्र विकसित किया जाए।
- मूल्यांकन प्रक्रिया में समयाभाव, समान मानकों के अभाव, नवाचारात्मक मूल्यांकन तकनीकों पर अपर्याप्त प्रशिक्षण, तकनीकी कठिनाइयां तथा अत्यधिक दस्तावेजीकरण को सरलीकृत किया जाए।

- विशेष रूप से रूबरिक्स, पोर्टफोलीओ एवं रिफ्लेक्टिव आकलन जैसे आधुनिक मूल्यांकन उपकरणों के प्रयोग हेतु संकाय प्रशिक्षण आयोजित किए जाएं।

निर्वचन एवं व्याख्या :– अध्ययन से स्पष्ट होता है कि ITEP भारतीय अध्यापक शिक्षा के इतिहास में केवल एक नवीन पाठ्यक्रम नहीं, बल्कि शिक्षक निर्माण की संपूर्ण अवधारणा में परिवर्तन का प्रयास है। कार्यक्रम ने बहुविषयक शिक्षा, विद्यालय–अनुभव, अनुसंधान, भारतीय ज्ञान परंपरातथा व्यावसायिक दक्षताओं को एकीकृत कर अध्यापक शिक्षा को अधिक समग्र स्वरूप प्रदान किया है। यह निष्कर्ष राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 की उस परिकल्पना की पुष्टि करता है जिसमें शिक्षक को ज्ञान–सृजक, शोधकर्ता, नवाचारी एवं सामाजिक परिवर्तन के वाहक के रूप में विकसित करने पर बल दिया गया है। हालाँकि अध्ययन यह भी संकेत करता है कि नीतिगत उत्कृष्टता स्वतः संस्थागत उत्कृष्टता में परिवर्तित नहीं होती। जिन संस्थानों में सक्षम नेतृत्व, प्रशिक्षित संकाय, पर्याप्त संसाधन एवं विभागीय समन्वय उपलब्ध थे, वहाँ कार्यक्रम अधिक प्रभावी रूप से संचालित हुआ। इसके विपरीत सीमित संसाधनों वाले संस्थानों में कार्यक्रम का क्रियान्वयन अपेक्षाकृत औपचारिक रहा। यह स्थिति स्पष्ट करती है कि ITEP की सफलता का निर्धारण केवल पाठ्यचर्या से नहीं, बल्कि संस्थागत क्षमता, नेतृत्व तथा सतत व्यावसायिक विकास से होता है।

समग्र विश्लेषण यह दर्शाता है कि ITEP भारतीय अध्यापक शिक्षा में एक परिवर्तनकारी सुधार के रूप में उभर रहा है। कार्यक्रम की नीतिगत संरचना वैश्विक अध्यापक शिक्षा प्रतिमानों के अनुरूप है तथा यह शिक्षक निर्माण को बहुविषयक, अनुभवात्मक एवं दक्षतामूलक दिशा प्रदान करता है। तथापि अध्ययन यह भी स्पष्ट करता है कि वर्तमान चुनौती नीति नहीं, बल्कि क्रियान्वयन है। संसाधनों की पर्याप्तता, प्रशिक्षित संकाय, प्रभावी प्रशासनिक नेतृत्व, संस्थागत समन्वय तथा मूल्यांकन की मानकीकृत व्यवस्था सुनिश्चित किए बिना प्ज्म्च के अपेक्षित परिणाम प्राप्त करना कठिन होगा। अध्ययन यह भी रेखांकित करता है कि ITEP के प्रभावी संचालन के लिए नीति–निर्माताओं, विश्वविद्यालयों, अध्यापक शिक्षा संस्थानों तथा विद्यालयों के मध्य सुदृढ़ सहयोगात्मक तंत्र विकसित किया जाना आवश्यक है, तभी यह कार्यक्रम राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के उद्देश्यों को व्यवहारिक स्तर पर पूर्ण रूप से साकार कर सकेगा।

शैक्षिक अनुप्रयोग :– प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्ष अध्यापक शिक्षा नीति, शिक्षक–प्रशिक्षण संस्थानों तथा उच्च शिक्षा प्रशासन के लिए अनेक महत्वपूर्ण शैक्षिक निहितार्थ प्रस्तुत करते हैं। अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि ITEP को केवल एक नवीन पाठ्यक्रम के रूप में न देखकर आद्यपक शिक्षा परिवर्तनकारी रूपरेखा के रूप में समझने की आवश्यकता है। अतः विश्वविद्यालयों एवं अध्यापक शिक्षा संस्थानों को कार्यक्रम के क्रियान्वयन हेतु चरणबद्ध संस्थागत कार्ययोजना विकसित करनी चाहिए, जिसमें संकाय विकास, अधोसंरचना उन्नयन तथा विद्यालय–विश्वविद्यालय साझेदारी को समान प्राथमिकता दी जाए। अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष संकेत करते हैं कि ITEP के प्रभावी संचालन के लिए संकाय दक्षता कार्यक्रम को नियमित एवं अनिवार्य बनाया जाना चाहिए। अध्ययन संसाधन विकास की आवश्यकता पर बल देता है। प्रत्येक ITEP संस्थान में डिजिटल पुस्तकालय, आधुनिक ICT प्रयोगशालाएँ, विषय–विशेष प्रयोगशालाएँ, भाषा प्रयोगशालाएँ तथा उच्च गुणवत्ता वाले मुक्त शैक्षिक संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित की जानी चाहिए। अध्ययन के आधार पर यह अनुशंसा की जा सकती है कि ITEP के मूल्यांकन तंत्र में रूबरिक्स, पोर्टफोलीओ एवं रिफ्लेक्टिव आकलन जैसे बहुआयामी उपकरणों का अधिक व्यवस्थित उपयोग किया जाए, जिससे विद्यार्थियों की वास्तविक व्यावसायिक दक्षताओं का मूल्यांकन संभव हो सके।

उपसंहार :– एकीकृत अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम (ITEP) राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 की सर्वाधिक महत्वाकांक्षी पहलों में से एक है, जिसने भारतीय अध्यापक शिक्षा को बहुविषयक, अनुभवात्मक तथा दक्षतामूलक आधार प्रदान करने का प्रयास किया है। प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि कार्यक्रम की नीतिगत संरचना व्यापक, समावेशी तथा भविष्य उन्मुख है। साथ ही, विद्यार्थियों एवं अध्यापकों दोनों ने इसकी मूल अवधारणा तथा शिक्षक निर्माण की संभावनाओं के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण व्यक्त किया। कार्यक्रम की वास्तविक सफलता उसके प्रभावी संस्थागत क्रियान्वयन पर निर्भर करती है। संसाधनों की उपलब्धता, प्रशिक्षित संकाय,

प्रशासनिक समन्वय, विद्यालयीय साझेदारी तथा मूल्यांकन प्रणाली की सुदृढ़ता ऐसे प्रमुख कारक हैं जो ITEP की गुणवत्ता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। यदि इन क्षेत्रों में आवश्यक सुधार किए जाएँ, तो ITEP भारतीय अध्यापक शिक्षा को वैश्विक मानकों के अनुरूप विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इस प्रकार यह अध्ययन निष्कर्षतः प्रतिपादित करता है कि ITEP केवल अध्यापक शिक्षा का नया कार्यक्रम नहीं, बल्कि भारत में शिक्षक निर्माण की एक नई शैक्षिक का प्रतिनिधित्व करता है। इसकी सफलता नीतिगत प्रावधानों से अधिक उनके प्रभावी, संसाधन–संपन्न एवं उत्तरदायी संस्थागत क्रियान्वयन पर निर्भर करेगी।

संदर्भ–सूची :–

1. Government of India. (1966). Education and national development: Report of the Education Commission (1964–66) (Kothari Commission). Ministry of Education.
2. Government of India. (1986). National Policy on Education. Ministry of Human Resource Development.
3. Government of India. (1992). Programme of Action. Ministry of Human Resource Development.
4. Government of India. (2020). National Education Policy 2020. Ministry of Education.
5. Ministry of Education. (2020). National Education Policy 2020. Government of India.
6. National Assessment and Accreditation Council. (2023). Quality indicators for teacher education institutions. NAAC.
7. National Council for Teacher Education. (2014). Norms and standards for teacher education programmes. NCTE.
8. National Council for Teacher Education. (2021). National Professional Standards for Teachers (Draft). NCTE.
9. National Council for Teacher Education. (2023). Integrated Teacher Education Programme (ITEP): पाठ्यचर्या रूपरेखा. NCTE.
10. National Council for Teacher Education. (2025). Draft regulations for Integrated Teacher Education Programme. NCTE.
11. National Council of Educational Research and Training. (2005). National पाठ्यचर्या रूपरेखा.2005. NCERT.
12. National Council of Educational Research and Training. (2023). National पाठ्यचर्या रूपरेखा. for School Education. NCERT.

ꕥ★ꕥ

उच्च शिक्षा संस्थानों के अध्यापकों के व्यावसायिक विकास के हेतु डिजिटल प्रौद्योगिकी की उपयोगिता संबंधी मुद्दे एवं चुनौतियाँ
(एक विश्लेषणात्मक अध्ययन)

आनन्द साहू*

डॉ. योगेन्द्र बाबू**

सारांश :– वर्तमान ज्ञान–समाज में डिजिटल प्रौद्योगिकी शिक्षा के प्रत्येक आयाम को प्रभावित कर रही है। उच्च शिक्षा संस्थानों में कार्यरत अध्यापकों के व्यावसायिक विकास के लिए डिजिटल उपकरणों का उपयोग एक अपरिहार्य आवश्यकता बन चुका है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भी शिक्षकों के सतत व्यावसायिक विकास पर विशेष बल दिया है। प्रस्तुत शोध पत्र टीपीएसीके ढाँचे एवं नवाचार प्रसार सिद्धांत के सैद्धांतिक आधार पर उच्च शिक्षा में अध्यापकों के व्यावसायिक विकास हेतु डिजिटल प्रौद्योगिकी के उपयोग से जुड़े प्रमुख मुद्दों और चुनौतियों का विश्लेषण करता है। अध्ययन में डिजिटल विभाजन, अवसंरचनात्मक बाधाएँ, डिजिटल साक्षरता की न्यूनता, संस्थागत सहयोग की कमी, प्रशिक्षण की अपर्याप्तता तथा भारतीय सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भों जैसी चुनौतियों को विस्तृत रूप से विवेचित किया गया है। साथ ही, इन चुनौतियों के निराकरण हेतु नीतिगत एवं व्यावहारिक सुझाव भी प्रस्तुत किए गए हैं।

मुख्य शब्द – डिजिटल प्रौद्योगिकी, व्यावसायिक विकास, उच्च शिक्षा, टीपीएसीके, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 डिजिटल विभाजन, शिक्षक प्रशिक्षण, ई–लर्निंग।

प्रस्तावना :– इक्कीसवीं शताब्दी का वैश्विक शैक्षिक परिदृश्य अभूतपूर्व तकनीकी परिवर्तन से गुजर रहा है। डिजिटल क्रांति ने न केवल उद्योग–व्यापार को बदला है, वरन शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को भी नए आयाम दिए हैं। उच्च शिक्षा संस्थानों में अध्यापकों की भूमिका ज्ञान के सरल संप्रेषक से बदलकर अब एक डिजिटल सुविधाप्रदाता की हो गई है। परंतु इस परिवर्तन के साथ कई जटिल मुद्दे एवं चुनौतियाँ भी उभरी हैं जो शिक्षकों के व्यावसायिक विकास को प्रभावित करती हैं। भारत में उच्च शिक्षा का विस्तार अभूतपूर्व गति से हो रहा है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अनुसार, देश में 1000 से अधिक विश्वविद्यालय और 42000 से अधिक महाविद्यालय हैं, जहाँ लाखों शिक्षक कार्यरत हैं। इन शिक्षकों के व्यावसायिक विकास के लिए डिजिटल प्रौद्योगिकी की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, किंतु इसके प्रभावी उपयोग में अनेक बाधाएँ विद्यमान हैं। कोविड–19 महामारी ने इस आवश्यकता को और अधिक उजागर कर दिया, जब अचानक समस्त शिक्षण ऑनलाइन माध्यम में स्थानांतरित हो गया और अधिकांश शिक्षक डिजिटल रूप से तैयार नहीं थे। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने शिक्षकों के सतत व्यावसायिक विकास को प्राथमिकता दी है और दिक्षा, स्वयं, एनपीटीइएल जैसे डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से शिक्षकों की क्षमता संवर्धन पर जोर दिया है। परंतु नीतिगत दिशा–निर्देशों और जमीनी वास्तविकता के मध्य एक बड़ा अंतर अभी भी बना हुआ है। यही अंतराल इस शोध का केंद्रबिंदु है।

सैद्धांतिक आधार

टीपीएसीके ढाँचा :– मिश्रा एवं कोहलर (2006) द्वारा प्रस्तुत टीपीएसीके ढाँचा इस अध्ययन का प्रमुख सैद्धांतिक आधार है। यह ढाँचा तीन प्रकार के ज्ञान के अंतर्संबंध को स्पष्ट करता है– विषय वस्तु ज्ञान, शैक्षणिक ज्ञान, तथा प्रौद्योगिकीय ज्ञान। इन तीनों के सम्मिलित एवं एकीकृत रूप को टीपीएसीके कहते हैं। एक प्रभावी शिक्षक वही है जो न केवल विषय जानता हो, बल्कि उसे पढ़ाने की विधि और तकनीकी साधनों का भी समुचित ज्ञान रखता हो। उच्च शिक्षा संस्थानों में अध्यापकों के व्यावसायिक विकास कार्यक्रमों को

***पी–एच.डी., शोधार्थी, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र 442001**

**** असिस्टेंट प्रोफेसर , शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र 442001**

इस ढाँचे के अनुसार तीनों आयामों को समेकित रूप से विकसित करना होगा। केवल तकनीकी प्रशिक्षण देना पर्याप्त नहीं है। शैक्षणिक दृष्टिकोण एवं विषय–वस्तु के साथ तकनीक का समावेश ही सफल व्यावसायिक विकास सुनिश्चित कर सकता है।

रोजर्स का नवाचार प्रसार सिद्धांत :– एवरेट एम. रोजर्स (1962, 2003) का नवाचार के प्रसार का सिद्धांत यह समझाता है कि कोई भी नवीन विचार, तकनीक या व्यवहार किसी समाज या संस्था में किस प्रकार धीरे–धीरे स्वीकार होता है। रोजर्स ने अपनाने वालों को पाँच श्रेणियों में विभाजित किया : नवप्रवर्तक, अग्रगामी अपनाने वाले, प्रारंभिक बहुमत, पश्च बहुमत तथा पिछड़ने वाले । उच्च शिक्षा में डिजिटल प्रौद्योगिकी के उपयोग के संदर्भ में यह सिद्धांत विशेष प्रासंगिक है। अधिकांश शिक्षक 'पश्च बहुमत या पिछड़ने वाले' श्रेणी में आते हैं, जो नई तकनीक को अपनाने में संकोच करते हैं। व्यावसायिक विकास कार्यक्रमों को इन विभिन्न श्रेणियों की विशेषताओं के अनुसार रणनीतिक रूप से डिजाइन किया जाना चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का संदर्भ :– राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 शिक्षकों के निरंतर व्यावसायिक विकास को भारतीय शिक्षा प्रणाली की सर्वोच्च प्राथमिकताओं में से एक मानती है। नीति में स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि शिक्षकों को डिजिटल उपकरणों, ऑनलाइन शिक्षण विधियों एवं ई–सामग्री निर्माण में दक्ष बनाया जाए। दीक्षा प्लेटफॉर्म, एफएलएन. मिशन तथा निष्ठा कार्यक्रम इस दिशा में केंद्र सरकार के प्रयास हैं। तथापि उच्च शिक्षा स्तर पर इन कार्यक्रमों की पहुँच और प्रभावशीलता अभी भी सीमित है।

डिजिटल प्रौद्योगिकी एवं व्यावसायिक विकास अवधारणात्मक विश्लेषण :– व्यावसायिक विकास की अवधारणा केवल औपचारिक प्रशिक्षण तक सीमित नहीं है। यह एक सतत, जीवनपर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें शिक्षक नए ज्ञान, कौशल, अभिवृत्ति एवं क्षमताएँ अर्जित करते हुए अपने व्यावसायिक प्रदर्शन में निरंतर सुधार करता रहता है। गुस्के (2002) के अनुसार, प्रभावी व्यावसायिक विकास वह है जो शिक्षकों के विश्वासों और व्यवहारों में स्थायी परिवर्तन लाए और अंततः छात्रों के अधिगम में सुधार हो। डिजिटल प्रौद्योगिकी के आगमन ने व्यावसायिक विकास के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाए हैं। ई–लर्निंग, मुक्स, वेबिनार, पॉडकास्ट, वर्चुअल कम्युनिटीज ऑफ प्रैक्टिस, लर्निंग मैनेजमेंट सिस्टम, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस आधारित अनुकूली शिक्षण तथा डिजिटल पोर्टफोलियो ये सभी आधुनिक व्यावसायिक विकास के प्रमुख साधन बन गए हैं। स्वयं, कोर्सेरा, एडक्स, लिंक्डिंग लर्निंग जैसे प्लेटफॉर्म उच्च शिक्षा के शिक्षकों को विश्वस्तरीय शिक्षण सामग्री उपलब्ध कराते हैं।

प्रमुख मुद्दे एवं चुनौतियाँ

डिजिटल विभाजन की समस्या :– भारत में डिजिटल विभाजन एक गंभीर समस्या है जो उच्च शिक्षा संस्थानों में भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। शहरी एवं ग्रामीण संस्थाओं के मध्य तकनीकी अवसंरचना का भारी असंतुलन है। प्रतिष्ठित केंद्रीय विश्वविद्यालयों और राज्य के दूरदराज महाविद्यालयों में डिजिटल संसाधनों की उपलब्धता में आकाश–पाताल का अंतर है। यह विभाजन न केवल भौगोलिक है, बल्कि लैंगिक, सामाजिक–आर्थिक एवं सांस्कृतिक आयाम भी रखता है। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन के आँकड़े बताते हैं कि ग्रामीण भारत में इंटरनेट पहुँच अभी भी सीमित है। जब शिक्षक स्वयं डिजिटल संसाधनों तक समान पहुँच नहीं रखते, तो उनका व्यावसायिक विकास डिजिटल माध्यम से कैसे सुनिश्चित हो सकता है? यह एक मौलिक प्रश्न है जिसका उत्तर नीति–निर्माताओं को खोजना है।

अवसंरचनात्मक बाधाएँ :– उच्च शिक्षा संस्थानों में डिजिटल अवसंरचना की स्थिति अनेकत्र दयनीय है। स्मार्ट कक्षाओं का अभाव, उच्च गति के इंटरनेट की अनुपलब्धता, पुराने कंप्यूटर, अपर्याप्त डिजिटल उपकरण एवं बिजली की अनियमित आपूर्ति – ये सभी व्यावसायिक विकास के डिजिटल कार्यक्रमों में बड़ी बाधाएँ हैं। विशेष रूप से उत्तर–पूर्व, पहाड़ी एवं आदिवासी क्षेत्रों के संस्थानों में यह समस्या अत्यंत गंभीर है। इसके अतिरिक्त, बैंडविड्थ की सीमाएँ ऑनलाइन प्रशिक्षण कार्यक्रमों को प्रभावित करती हैं। जब एक ही संस्थान में

सैकड़ों उपयोगकर्ता एक साथ इंटरनेट का उपयोग करते हैं तो गति अत्यंत धीमी हो जाती है, जिससे वेबिनार, वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग एवं ऑनलाइन पाठ्यक्रम प्रभावी रूप से नहीं चल पाते।

डिजिटल साक्षरता एवं कौशल की न्यूनता :– अनेक अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि उच्च शिक्षा में कार्यरत एक बड़ा वर्ग डिजिटल रूप से पर्याप्त सक्षम नहीं है। बुनियादी कंप्यूटर कौशल से लेकर उन्नत डिजिटल शिक्षण उपकरणों (जैसे– लर्निंग मैनेजमेंट सिस्टम, आर्टिफिशियल इंटेलिज आधारित टूल्स) तक के कौशल में भारी कमी है। वरिष्ठ शिक्षकों में तकनीकी परिवर्तन के प्रति प्रतिरोध की प्रवृत्ति अधिक देखी जाती है। टीपीएसीके ढाँचे के संदर्भ में देखें तो अधिकांश शिक्षकों के पास विषय–वस्तु ज्ञान तो है, परंतु प्रौद्योगिकीय ज्ञान की कमी के कारण वे तीनों आयामों के एकीकरण में असमर्थ हैं। यह न केवल उनके शिक्षण को प्रभावित करता है, बल्कि उनके स्वयं के व्यावसायिक विकास में भी बाधा बनता है।

तकनीकी प्रतिरोध एवं परिवर्तन का भय :– रोजर्स के सिद्धांत के अनुसार, किसी भी नवाचार को अपनाने की प्रक्रिया में 'परिवर्तन का भय' एक महत्त्वपूर्ण बाधा है। उच्च शिक्षा संस्थानों में कई शिक्षक नई तकनीक को अपनाने में इसलिए संकोच करते हैं क्योंकि उन्हें यह भय होता है कि वे इसे सही तरीके से उपयोग नहीं कर पाएंगे, या फिर इससे उनकी पारंपरिक विशेषज्ञता कमजोर पड़ जाएगी। इसके अलावा, प्रौद्योगिकी भय एवं तकनीक प्रेमी बनाम प्रौद्योगिकी भय की खाई भी संस्थागत संस्कृति को प्रभावित करती है। जो शिक्षक तकनीक को पसंद करते हैं और जो इससे दूर भागते हैं, दोनों के बीच सहयोग एवं संवाद का अभाव व्यावसायिक विकास के सामूहिक प्रयासों को खंडित करता है।

प्रशिक्षण कार्यक्रमों की अपर्याप्तता एवं अनिरंतरता :– भारतीय उच्च शिक्षा संस्थानों में आयोजित होने वाले डिजिटल प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रायः एक बार के अल्पकालिक एवं सतही होते हैं। ये कार्यक्रम शिक्षकों की वास्तविक आवश्यकताओं का विश्लेषण किए बिना बनाए जाते हैं और एक आकार सबके लिए उपयुक्त के सिद्धांत पर चलते हैं। जबकि व्यावसायिक विकास के लिए निरंतर, गहन एवं व्यक्तिकृत कार्यक्रम आवश्यक हैं। ओरिएंटेशन और रिफ्रेशर कोर्स जो यूजीसी–मालवीय मिशन शिक्षक प्रशिक्षण केंद्र द्वारा संचालित होते हैं, उनमें डिजिटल घटक अभी भी पर्याप्त नहीं है। इन कार्यक्रमों में प्रशिक्षण के बाद फॉलो–अप, मेंटरशिप एवं सहकर्मी समूह सीखने का अभाव रहता है, जिसके कारण प्रशिक्षण के दौरान अर्जित कौशल कक्षा में हस्तांतरित नहीं हो पाते।

संस्थागत सहयोग एवं नेतृत्व की कमी :– डिजिटल प्रौद्योगिकी का प्रभावी उपयोग तभी संभव है जब संस्थागत नेतृत्व स्वयं इसके प्रति प्रतिबद्ध हो। परंतु अनेक संस्थाओं में प्रबंधन स्तर पर डिजिटल परिवर्तन के प्रति उदासीनता, बजट की कमी एवं दूरदृष्टि का अभाव स्पष्ट दिखता है। शिक्षकों को व्यावसायिक विकास के लिए समय, संसाधन एवं प्रोत्साहन नहीं मिलता। इसके अलावा, तकनीकी सहायता का अभाव भी एक बड़ी समस्या है। जब शिक्षक नए डिजिटल उपकरण आजमाते हैं और समस्या आती है, तो संस्थागत तकनीकी सहायता न मिलने से वे निराश होकर पुरानी विधियों की ओर लौट जाते हैं। फुलन (2007) ने ठीक ही कहा है कि परिवर्तन तभी स्थायी होता है जब संस्थागत सहयोग, संसाधन एवं क्षमता तीनों एक साथ उपलब्ध हों।

भाषाई एवं सामग्री संबंधी चुनौतियाँ :– भारत की बहुभाषिक विविधता डिजिटल व्यावसायिक विकास में एक विशेष चुनौती प्रस्तुत करती है। अधिकांश ऑनलाइन शिक्षण सामग्री एवं मुक्स अंग्रेजी में हैं, जबकि देश के एक बड़े वर्ग के शिक्षकों की प्राथमिक भाषा हिंदी या क्षेत्रीय भाषाएँ हैं। यह भाषाई बाधा उन्हें वैश्विक ज्ञान–संसाधनों से वंचित रखती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने मातृभाषा में शिक्षण पर बल दिया है, परंतु डिजिटल व्यावसायिक विकास के लिए हिंदी एवं क्षेत्रीय भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण सामग्री का विकास अभी भी अपर्याप्त है। यह एक ऐसी खाई है जिसे शीघ्रता से भरने की आवश्यकता है।

साइबर सुरक्षा एवं डेटा गोपनीयता की चिंताएँ :– डिजिटल प्लेटफॉर्म के उपयोग के साथ साइबर सुरक्षा एवं डेटा गोपनीयता की गंभीर चिंताएँ भी उभरती हैं। शिक्षकों को उनकी व्यक्तिगत जानकारी एवं शोध डेटा की

सुरक्षा के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं होती। ऑनलाइन प्रशिक्षण प्लेटफॉर्म पर व्यक्तिगत डेटा की सुरक्षा एवं साइबर अपराध के बढ़ते खतरे शिक्षकों को डिजिटल माध्यम से दूर रखते हैं।

कार्यभार एवं समय की कमी :– उच्च शिक्षा के शिक्षकों पर शिक्षण, शोध, प्रशासनिक कार्य एवं मूल्यांकन का भारी बोझ होता है। इस व्यस्त दिनचर्या में डिजिटल व्यावसायिक विकास के लिए समय निकालना एक वास्तविक चुनौती है। ऑनलाइन पाठ्यक्रम, वेबिनार एवं डिजिटल प्रशिक्षण के लिए अतिरिक्त समय की आवश्यकता होती है, जो शिक्षकों के पास प्रायः नहीं होती। इसके अतिरिक्त, व्यावसायिक विकास को संस्थागत कार्यभार में सम्मिलित न किए जाने के कारण शिक्षक इसे अपनी व्यक्तिगत जिम्मेदारी मानते हैं, न कि संस्थागत दायित्व। यह मानसिकता भी व्यावसायिक विकास की भागीदारी को सीमित करती है।

मूल्यांकन एवं गुणवत्ता नियंत्रण की कमी :– डिजिटल व्यावसायिक विकास कार्यक्रमों की प्रभावशीलता का मूल्यांकन एक महत्त्वपूर्ण किंतु उपेक्षित क्षेत्र है। अधिकांश संस्थाओं में प्रशिक्षण के बाद यह नहीं देखा जाता कि शिक्षक ने जो सीखा, वह कक्षा में कितना लागू हुआ। किर्कपैट्रिक के मूल्यांकन मॉडल के चार स्तर (प्रतिक्रिया, सीखना, व्यवहार, परिणाम) में से अधिकांश कार्यक्रम केवल प्रथम स्तर– शिक्षार्थियों की प्रतिक्रिया– तक ही सीमित रहते हैं।

भारतीय सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ में विशिष्ट चुनौतियाँ :– भारत की विविधता – सामाजिक, सांस्कृतिक, भाषाई, आर्थिक– उच्च शिक्षा में डिजिटल व्यावसायिक विकास के सामने अनेक अनूठी चुनौतियाँ प्रस्तुत करती है। ग्रामीण–शहरी, उच्च–निम्न आय वर्ग, और विभिन्न सामाजिक श्रेणियों के शिक्षकों के मध्य तकनीकी पहुँच एवं उपयोग में विद्यमान असमानता इस विभाजन को और गहरा करती है। पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचनाओं के कारण महिला शिक्षकों को डिजिटल प्रशिक्षण में भाग लेने के अवसर कम मिलते हैं। घरेलू उत्तरदायित्वों एवं सामाजिक प्रतिबंधों के कारण वे ऑनलाइन कार्यक्रमों में नियमित रूप से भाग नहीं ले पातीं। यह लैंगिक डिजिटल विभाजन एक महत्त्वपूर्ण नीतिगत मुद्दा है। इसके अतिरिक्त, पारंपरिक गुरु–शिष्य परंपरा में शिक्षक की अधिकारपूर्ण भूमिका की अवधारणा डिजिटल शिक्षण के सहयोगी एवं सह–शिक्षार्थी के मॉडल से टकराती है। यह सांस्कृतिक द्वंद्व भी शिक्षकों को डिजिटल परिवर्तन अपनाने से रोकता है।

उभरती संभावनाएँ एवं अवसर :– चुनौतियों के बावजूद, डिजिटल प्रौद्योगिकी ने उच्च शिक्षा में शिक्षकों के व्यावसायिक विकास के लिए अभूतपूर्व अवसर भी प्रस्तुत किए हैं। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस आधारित व्यक्तिगत सीखने के अनुभव, गेमिफिकेशन, माइक्रो–लर्निंग, पॉडकास्ट एवं वर्चुअल रियलिटी आधारित सिमुलेशन नए एवं प्रभावी शिक्षण अनुभव प्रदान करते हैं। प्रोफेशनल लर्निंग कम्युनिटी एवं ऑनलाइन कम्युनिटीज ऑफ प्रैक्टिस शिक्षकों को भौगोलिक सीमाओं से परे एक–दूसरे से जोड़ते हैं। स्वयं पर उपलब्ध मुक्स, एनपीटीइएल के तकनीकी पाठ्यक्रम तथा यूजीसी–मुक्स पोर्टल ने व्यावसायिक विकास के नए द्वार खोले हैं। ओपन एजुकेशनल रिसोर्सेज के माध्यम से शिक्षक विश्व के सर्वोत्तम शिक्षण–सामग्री तक निःशुल्क पहुँच बना सकते हैं।

सुझाव एवं नीतिगत निहितार्थ :– उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत हैं–

- संस्थागत डिजिटल नीति का निर्माण प्रत्येक उच्च शिक्षा संस्था को एक व्यापक डिजिटल व्यावसायिक विकास नीति बनानी चाहिए, जिसमें बजट आवंटन, प्रशिक्षण कार्यक्रम की रूपरेखा एवं मूल्यांकन तंत्र स्पष्ट हो।
- टीपीएसीके आधारित प्रशिक्षण व्यावसायिक विकास कार्यक्रम टीपीएसीके ढाँचे के अनुसार डिजाइन होने चाहिए, जो केवल तकनीकी कौशल नहीं बल्कि शैक्षणिक एवं विषय–वस्तु ज्ञान के साथ इसके एकीकरण पर भी ध्यान दें।
- हिंदी एवं क्षेत्रीय भाषाओं में सामग्री विकास दिक्षा एवं स्वयं जैसे प्लेटफॉर्म पर हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण व्यावसायिक विकास सामग्री का विकास किया जाए।
- मेंटरशिप एवं सहकर्मी शिक्षण प्रत्येक संस्था में डिजिटल रूप से दक्ष शिक्षकों को डिजिटल चौंपियन बनाकर उन्हें अन्य शिक्षकों का मार्गदर्शन करने की जिम्मेदारी दी जाए। ऑनलाइन कम्युनिटी ऑफ प्रैक्टिस का निर्माण हो।

- प्रोत्साहन एवं पुरस्कार प्रणाली शिक्षकों को डिजिटल व्यावसायिक विकास में भाग लेने के लिए पदोन्नति, शोध अनुदान एवं अकादमिक प्रदर्शन संकेतक में क्रेडिट जैसे प्रोत्साहन दिए जाएँ।
- अवसंरचना निवेश पीएम ई–विद्या एवं भारत नेट जैसी योजनाओं का लाभ उठाते हुए ग्रामीण एवं दूरदराज संस्थाओं में इंटरनेट कनेक्टिविटी एवं डिजिटल उपकरणों का तीव्र विस्तार किया जाए।
- लैंगिक समावेशन महिला शिक्षकों के लिए विशेष डिजिटल प्रशिक्षण कार्यक्रम एवं लचीले शेड्यूल की व्यवस्था हो, ताकि वे डिजिटल व्यावसायिक विकास में समान रूप से भाग ले सकें।
- निरंतर एवं व्यक्तिगत प्रशिक्षण एआई आधारित अनुकूली शिक्षण प्रणाली का उपयोग करके प्रत्येक शिक्षक की आवश्यकता के अनुसार व्यक्तिगत व्यावसायिक विकास योजना तैयार की जाए।

निष्कर्ष :– उच्च शिक्षा संस्थानों में अध्यापकों के व्यावसायिक विकास के लिए डिजिटल प्रौद्योगिकी एक शक्तिशाली माध्यम है, किंतु इसके प्रभावी उपयोग की राह में अनेक जटिल मुद्दे एवं चुनौतियाँ विद्यमान हैं। डिजिटल विभाजन, अवसंरचनात्मक कमियाँ, डिजिटल साक्षरता का अभाव, तकनीकी प्रतिरोध, संस्थागत उदासीनता, भाषाई बाधाएँ, कार्यभार एवं साइबर सुरक्षा की चिंताएँ – ये सभी मिलकर एक जटिल चुनौती का निर्माण करती हैं। टीपीएसीके ढाँचे एवं रोजर्स के नवाचार प्रसार सिद्धांत के प्रकाश में यह स्पष्ट होता है कि सफल डिजिटल व्यावसायिक विकास के लिए केवल तकनीकी उपकरण पर्याप्त नहीं हैं। इसके लिए आवश्यक है– संस्थागत प्रतिबद्धता, सहायक वातावरण, व्यक्तिगत अभिप्रेरणा, निरंतर सहयोग एवं प्रभावी मूल्यांकन का समेकित प्रयास। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने जो संभावनाएँ और दिशा–निर्देश प्रस्तुत किए हैं, उन्हें धरातल पर उतारने के लिए ठोस, समावेशी एवं दीर्घकालिक नीतिगत प्रयास अनिवार्य हैं। भारत जैसे विविधताओं से भरे देश में डिजिटल व्यावसायिक विकास की सफलता इसी बात पर निर्भर है कि हम सभी शिक्षकों तक चाहे वे किसी भी क्षेत्र, भाषा या सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि के हों समान डिजिटल अवसर सुनिश्चित कर सकें। तभी हम विकसित भारत 2047 के स्वप्न को शिक्षा के माध्यम से साकार कर सकते हैं।

संदर्भ–सूची :–

1. गुस्के, टी. आर. (2002). प्रोफेशनल डेवलपमेंट एंड टीचर चेंज. टीचर्स एंड टीचिंग थ्योरी एंड प्रैक्टिस, 8(3),381–391।
2. कोहलर, एम. जे., एवं मिश्रा, पी. (2009). व्हाट इज टेक्नोलॉजिकल पेडागॉजिकल कंटेंट नॉलेज (टीपीएसीके)? कॉन्टेम्पररी इश्यूज इन टेक्नोलॉजी एंड टीचर एजुकेशन, 9(1), 60–70।
3. मिश्रा, पी., एवं कोहलर, एम. जे. (2006). टेक्नोलॉजिकल पेडागॉजिकल कंटेंट नॉलेज ए फ्रेमवर्क फॉर टीचर नॉलेज– टीचर्स कॉलेज रिकॉर्ड, 108(6), 1017–1054।
4. रोजर्स, ई. एम. (2003). डिफ्यूजन ऑफ इनोवेशन्स (5जी मक.). फ्री प्रेस।
5. फुलन, एम. (2007). द न्यू मीनिंग ऑफ एजुकेशनल चेंज (4जी मक.). टीचर्स कॉलेज प्रेस।
6. मिनिस्ट्री ऑफ एजुकेशन, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया. (2020). नेशनल एजुकेशन पॉलिसी 2020, न्यू दिल्ली. एमओई।
7. यूजीसी. (2022). नेशनल हायर एजुकेशन क्वालिफिकेशन्स फ्रेमवर्क. यूनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन।
8. यूनेस्को. (2021). टीचर्स एंड द कोविड–19 क्राइसिसरू इनसाइट्स ऑन टेक्नोलॉजी–एन्हांस्ड लर्निंग फॉर प्रोफेशनल डेवलपमेंट. यूनेस्को आईआईटीई।
9. डार्लिंग–हैमंड, एल., हाइलर, एम. ई., एवं गार्डनर, एम. (2017). इफेक्टिव टीचर प्रोफेशनल डेवलपमेंट. लर्निंग पॉलिसी इंस्टिट्यूट।
10. भूषण, एस., एवं मेहता, पी. (2021). डिजिटल डिवाइड इन इंडियन हायर एजुकेशनरू ए पोस्ट–पैंडेमिक एनालिसिस. जर्नल ऑफ एजुकेशन एंड प्रैक्टिस, 12(4), 45–56।
11. शुक्ला, आर. के. (2020). टीपीएसीके फ्रेमवर्क एंड इट्स एप्लिकेबिलिटी इन इंडियन हायर एजुकेशन इंस्टिट्यूशन्स. इंडियन जर्नल ऑफ एजुकेशनल टेक्नोलॉजी, 2(1),12–25।
12. एनएसएसओ. (2019). हाउसहोल्ड सोशल कंजम्प्शनरू एजुकेशन इन इंडिया. नेशनल सैम्पल सर्वे ऑफिस, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया।
13. किर्कपैट्रिक, डी. एल. (1994). इवैल्यूएटिंग ट्रेनिंग प्रोग्राम्सरू द फोर लेवल्स. बेरेट–कोहलर पब्लिशर्स।
14. प्रेन्स्की, एम. (2001). डिजिटल नेटिव्स, डिजिटल इमिग्रेंट्स. ऑन द होराइजन, 9(5),16।
15. वेंगर, ई. (1998). कम्युनिटीज ऑफ प्रैक्टिस : लर्निंग, मीनिंग, एंड आइडेंटिटी. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

डिजिटल भारत और ई-शिक्षा का रूपांतरण : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के परिप्रेक्ष्य में 2026 तक की प्रगति
(अवसर और चुनौतियों का गहन विश्लेषण)

मनीष कुमार*

मानव सभ्यता का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि शिक्षा के माध्यम और उसकी पद्धतियां सदैव तकनीकी विकास के समानांतर परिवर्तित होती रही हैं। प्राचीन काल की मौखिक परंपराओं से लेकर भोजपत्र, तत्पश्चात मुद्रणालय की क्रांति और अब डिजिटल स्क्रीन तक की इस सहस्राब्दी यात्रा ने ज्ञान के प्रसार को न केवल सुलभ बनाया है, बल्कि इसे लोकतांत्रिक भी किया है। वर्तमान में वैश्विक समाज 'चतुर्थ औद्योगिक क्रांति' के मुहाने पर खड़ा है, जहां भौतिक, डिजिटल और जैविक क्षेत्रों का संगम हो रहा है। इस नवीन युग में शिक्षा का उद्देश्य केवल सूचनाओं का संचय करन ही नहीं, बल्कि विश्लेषणात्मक सोच, जटिल समस्या–समाधान और डिजिटल साक्षरता विकसित करना है। भारत, अपनी 1.4 अरब से अधिक की जनसंख्या और विशाल युवा शक्ति के साथ, इस तकनीकी परिवर्तन के केंद्र में है। इस विशाल मानव–संसाधन को 'मानव–पूंजी' में बदलने की चुनौती और अवसर दोनों ही भारतीय नीति–निर्माताओं के समक्ष एक गंभीर दायित्व के रूप में विद्यमान है। भारत सरकार द्वारा 2015 में प्रारंभ किए गए 'डिजिटल इंडिया' अभियान ने देश के तकनीकी ढांचे को सशक्त करने में एक आधारभूत भूमिका निभाई है। इस अभियान का मूल उद्देश्य ब्रॉडबैंड हाइवे, मोबाइल कनेक्टिविटी और ई–गवर्नेंस के माध्यम से भारत को एक डिजिटल रूप से सशक्त समाज और ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था में परिवर्तित करना था। इसी तकनीकी पृष्ठभूमि में, राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 का आगमन भारतीय शिक्षा–प्रणाली में एक क्रांतिकारी मोड़ सिद्ध हुआ है। यह नीति केवल पाठ्यक्रम में सुधार का दस्तावेज नहीं है, बल्कि यह 21वीं सदी के भारत के लिए एक विजन डॉक्यूमेंट है, जो शिक्षा के केंद्र में प्रौद्योगिकी के व्यापक एकीकरण, ऑनलाइन शिक्षण और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के न्यायसंगत प्रयोग पर विशेष बल देता है। कोविड–19 महामारी ने इस नीतिगत दृष्टिकोण को एक अपरिहार्यता में बदल दिया, जहां पारंपरिक कक्षा शिक्षण के समानांतर डिजिटल शिक्षण एक अनिवार्य आवश्यकता बन गया। वर्ष 2026 के नवीनतम आंकड़ों के आलोक में, यह शोध पत्र डिजिटल शिक्षा के उभरते परिदृश्य का एक सूक्ष्म और आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: डिजिटल एकीकरण का सैद्धांतिक और दार्शनिक ढांचा :– राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारत की शिक्षा प्रणाली में प्रौद्योगिकी के समावेश के लिए एक व्यापक और बहुआयामी रोडमैप प्रदान करती है। नीति का दर्शन स्पष्ट रूप से उपकरण–केंद्रित न होकर 'मानव–केंद्रित' है, जहां तकनीक शिक्षक का विकल्प नहीं बनती, बल्कि उसे और अधिक सशक्त बनाती है। नीति के अध्याय 23 और 24 विशेष रूप से प्रौद्योगिकी के उपयोग और ऑनलाइन शिक्षा के पारिस्थितिकी तंत्र को विकसित करने पर केंद्रित हैं। यह स्वीकार किया गया है कि प्रौद्योगिकी का उपयोग शिक्षा की पांच प्रमुख स्तंभों– पहुँच (Access) समानता (Equity), गुणवत्ता (Quality), सामर्थ्य (Affordability) और जवाबदेही (Accountability) को सुनिश्चित करने के लिए किया जाना चाहिए।

नेशनल एजुकेशनल टेक्नोलॉजी फोरम (NETF) की भूमिका और प्रगति :– एनईपी 2020 की सबसे रणनीतिक अनुशंसाओं में से एक 'नेशनल एजुकेशनल टेक्नोलॉजी फोरम' (NETF) की स्थापना है। यह एक स्वायत्त निकाय के रूप में कार्य करता है जो भारत में शैक्षिक प्रौद्योगिकी के लिए दिशा–निर्देश तय करता है और केंद्र व राज्य सरकारों को स्वतंत्र, साक्ष्य–आधारित सलाह प्रदान करता है। मार्च 2026 तक की स्थिति के अनुसार, NETF ने न केवल भारत के भीतर बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराई

***असिस्टेन्ट प्रोफेसर–राजनीति विज्ञान, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय हमीरपुर (उ0प्र0)**

है, जिसमें टोक्यो और सिंगापुर जैसे वैश्विक केंद्रों में आयोजित सम्मेलनों के माध्यम से ज्ञान साझाकरण की प्रक्रियाओं को बल मिला है। NETF के अध्यक्ष डॉ. अनिल सहस्रबुद्धे ने तकनीकी शिक्षा के भविष्य पर बल देते हुए स्पष्ट किया है कि आगामी समय में 'स्व–अधिगम' (Self-learning) और 'आजीवन सीखना' (Lifelong learning) अनिवार्य कौशल होंगे, क्योंकि पाठ्यक्रमों की वैधता अब चार–पांच वर्षों के बजाय वार्षिक आधार पर बदल रही है। NETF की कार्यात्मक भूमिका के अंतर्गत नवाचार को बढ़ावा देना, डिजिटल सामग्री के लिए गुणवत्ता मानक निर्धारित करना और शिक्षकों की संस्थागत क्षमता निर्माण करना शामिल है। यह निकाय यह सुनिश्चित करने के लिए उत्तरदायी है कि भारत में एड–टेक (EdTech) का विकास अनियंत्रित न हो, बल्कि वह राष्ट्रीय शैक्षिक लक्ष्यों और नैतिक मानकों के अनुरूप हो। विशेष रूप से, 'प्रॉम्प्ट इंजीनियरिंग' और 'ऑगमेंटेड इंटेलिजेंस' जैसे उपकरणों के प्रभावी उपयोग पर NETF का विशेष ध्यान है, ताकि छात्र बदलती औद्योगिक आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं को ढाल सकें ।

डिजिटल समावेशन और समानता का सिद्धांत :– नीति इस वास्तविकता के प्रति पूर्णतः सचेत है कि यदि डिजिटल शिक्षा के प्रसार में सावधानी न बरती गई, तो यह समाज के संपन्न और वंचित वर्गों के बीच की खाई को और गहरा कर सकती है। इसलिए, 'डिजिटल समावेशन' एनईपी 2020 का एक मूल मंत्र है। इसमें सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित समूहों (SEDGs) के लिए डिजिटल उपकरणों तक पहुंच सुनिश्चित करने, बिजली की निर्बाध उपलब्धता और दिव्यांग छात्रों के लिए सहायक तकनीक (Assistive Technology) विकसित करने पर विशेष बल दिया गया है। 2026 तक, 'यूनिक डिसेबिलिटी आईडी' (UDID) योजना के माध्यम से 1.34 करोड़ से अधिक डिजिटल विकलांगता कार्ड जारी किए गए हैं, जो दिव्यांग छात्रों के लिए कल्याणकारी योजनाओं और डिजिटल शिक्षण संसाधनों तक पहुंच को सुलभ बना रहे हैं ।

डिजिटल बुनियादी ढांचे का विश्लेषणः 2025–26 की सांख्यिकीय स्थिति :– किसी भी डिजिटल शिक्षा नीति की सफलता उसके आधारभूत ढांचे की मजबूती पर निर्भर करती है। 'डिजिटल इंडिया' अभियान के निरंतर प्रयासों के परिणाम अब स्पष्ट रूप से आंकड़ों में परिलक्षित हो रहे हैं। वर्ष 2025 और 2026 के नवीनतम आंकड़े भारत में कनेक्टिविटी और डिवाइस उपलब्धता की एक उत्साहजनक, किंतु मिश्रित तस्वीर प्रस्तुत करते हैं।

इंटरनेट उपयोगकर्ताओं का विस्तार और टेली–घनत्व :– अक्टूबर 2025 तक की रिपोर्ट के अनुसार, भारत में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या 1.03 बिलियन (103 करोड़) तक पहुँच गई है, जिससे देश की इंटरनेट पैठ दर कुल जनसंख्या की 70 प्रतिशत हो गई है। इसी अवधि में सक्रिय इंटरनेट उपयोगकर्ताओं (AIU) की संख्या 958 मिलियन दर्ज की गई है, जो 8 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर को दर्शाती है। भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण (TRAI) के मार्च 2026 के आंकड़ों के अनुसार, भारत का समग्र टेली–घनत्व 93.26 प्रतिशत के स्तर पर है, जो वैश्विक मानकों के अनुरूप एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है ।

मीट्रिक (मार्च 2026 के अंत तक)	**समग्र भारत**	**शहरी भारत**	**ग्रामीण भारत**
कुल टेली–घनत्व (M2M सहित)	93.26 %	151.47%	60.46%
वायरलेस टेली–घनत्व	89.88%	143.10%	59.89%
वायरलेस टेली–घनत्व	3.38%	8.37%	0.57%
कुल टेलीफोन ग्राहक (मिलियन में)	1330.58	778.79	551.79

डेटा स्रोतः TRAI रिपोर्ट संख्या 53/2026 आंकड़ों का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि यद्यपि शहरी क्षेत्रों में टेली–घनत्व संतृप्ति (Saturation) के स्तर को पार कर गया है, ग्रामीण भारत में अभी भी विस्तार की व्यापक संभावनाएं शेष हैं। हालांकि, ग्रामीण क्षेत्रों में सक्रिय इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या अब 548 मिलियन हो गई है, जो कुल उपयोगकर्ताओं का 57% है। यह एक ऐतिहासिक संरचनात्मक बदलाव है जहां ग्रामीण भारत में डिजिटल अपनाने की गति शहरी भारत की तुलना में लगभग चार गुना अधिक तीव्र है।

कनेक्टिविटी की गुणवत्ता और डेटा सामर्थ्य :– ई–शिक्षा की प्रभावशीलता के लिए केवल इंटरनेट कनेक्शन पर्याप्त नहीं है, बल्कि निर्बाध और उच्च गति वाले डेटा की उपलब्धता अनिवार्य है। वर्ष 2025 तक, भारतनेट परियोजना के तहत ऑप्टिकल फाइबर केबल का विस्तार 42.36 लाख मार्ग किलोमीटर तक पहुँच गया है, जो 2019 के 19.35 लाख किलोमीटर की तुलना में एक बड़ी छलांग है। वर्तमान में 2.15 लाख से अधिक ग्राम पंचायतें इस नेटवर्क से जुड़ी हुई हैं, जो ग्रामीण शिक्षा के लिए एक मजबूत रीढ़ तैयार कर रही हैं।

डेटा की लागत में भारी गिरावट ने ई–शिक्षा को आम छात्र के लिए सुलभ बनाया है। वर्ष 2014 में डेटा की औसत लागत ₹269 प्रति GB थी, जो 2025–26 में घटकर मात्र ₹8–10 प्रति GB (+0.10) रह गई है। सामर्थ्य के इस स्तर ने भारत को विश्व के सबसे सस्ते डेटा बाजारों में से एक बना दिया है, जिससे नवंबर 2025 में ब्रॉडबैंड ग्राहकों की संख्या 1 बिलियन (100 करोड़) को पार कर गई। इसके अतिरिक्त, 5G रोलआउट ने देश के 99.9ः जिलों को कवर किया है, जिसमें 5.18 लाख से अधिक बेस ट्रांसीवर स्टेशन (BTS) कार्यरत हैं, जो वीडियो–आधारित शिक्षण और वर्चुअल लैब्स के लिए आवश्यक उच्च बैंडविड्थ प्रदान कर रहे हैं।

प्रमुख डिजिटल प्लेटफॉर्म और उनका शैक्षिक प्रभाव :– राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए भारत सरकार ने 'पीएम ई–विद्या' (PM eVIDYA) पहल के तहत एक एकीकृत डिजिटल पारिस्थितिकी तंत्र विकसित किया है। यह पहल डिजिटल, ऑनलाइन और ऑन–एयर शिक्षा के सभी प्रयासों को एकजुट करती है।

दीक्षा (DIKSHA): स्कूली शिक्षा का राष्ट्रीय आधार' :– दीक्षा' (Digital Infrastructure for Knowledge Sharing) स्कूली शिक्षा के लिए भारत का 'एक राष्ट्र, एक डिजिटल प्लेटफॉर्म' है। यह मंच एनसीईआरटी (NCERT) और विभिन्न राज्य बोर्डों की सामग्री को एकीकृत करता है।

- विस्तार और उपयोगः मार्च 2026 तक, दीक्षा पर पंजीकृत उपयोगकर्ताओं की संख्या 2.00 करोड़ को पार कर गई है। वर्ष 2025–26 की अवधि में, इस प्लेटफॉर्म ने 19,698 से अधिक पाठ्यक्रमों की मेजबानी की, जिनमें 18.23 करोड़ नामांकन और 14.57 करोड़ पाठ्यक्रम पूर्णता दर्ज की गई।
- **तकनीकी विशेषताएँ:** यह प्लेटफॉर्म 31 से अधिक भारतीय भाषाओं में सामग्री प्रदान करता है, जो भारत की भाषाई विविधता को देखते हुए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसमें 'क्यूआर कोड' (QR Code) युक्त ऊर्जावान पाठ्यपुस्तकों का उपयोग किया गया है, जिन्हें स्कैन करके छात्र सीधे संबंधित डिजिटल सामग्री तक पहुँच सकते हैं।
- **एआई का समावेशः** दीक्षा अब एआई–सक्षम संसाधनों का भी उपयोग कर रहा है, जिसमें वीडियो में कीवर्ड खोज और दृष्टिबाधित छात्रों के लिए 'रीड–अलाउड' (Read-aloud) विशेषताएं शामिल हैं।

स्वयं (SWAYAM) और स्वयं प्रभाः उच्च शिक्षा का लोकतंत्रीकरण :– 'स्वयं' (Study Webs of Active&Learning for Young Aspiring Minds) उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण पहलों में से एक है। यह मंच उन छात्रों तक सर्वोत्तम शिक्षण संसाधन पहुँचाने का प्रयास करता है जो पारंपरिक भौगोलिक या आर्थिक कारणों से वंचित रहे हैं।

- **नामांकन सांख्यिकीः** जनवरी 2026 तक, स्वयं पर संचयी नामांकन 5.80 करोड़ से 6.1 करोड़ के बीच पहुँच गया है, और 53.7 लाख से अधिक प्रमाणपत्र प्रदान किए जा चुके हैं। केवल जनवरी 2026 के सत्र में ही लगभग 50 लाख नए नामांकन हुए, जो इसकी बढ़ती लोकप्रियता को दर्शाता है।
- **क्रेडिट मोबिलिटीः** यूजीसी (UGC) के 2021 के नियमों के अनुसार, उच्च शिक्षण संस्थान अपने कार्यक्रमों के कुल पाठ्यक्रमों का 40% तक **स्वयं** के माध्यम से पेश कर सकते हैं। यह प्रावधान छात्रों को अपनी पसंद के अनुसार सीखने और विभिन्न संस्थानों से क्रेडिट अर्जित करने की अभूतपूर्व स्वतंत्रता देता लें
- **स्वयं प्रभा :** उन क्षेत्रों के लिए जहां इंटरनेट कनेक्टिविटी कमजोर है, 'स्वयं प्रभा' के तहत 40 से 48 डीटीएच चौनल 24x7 उच्च गुणवत्ता वाले शैक्षिक कार्यक्रम प्रसारित कर रहे हैं।

वर्चुअल लैब्स और कौशल ई–लैब्स :– विज्ञान, प्रौद्योगिकी और इंजीनियरिंग की शिक्षा में प्रयोगशाला अनुभव के अंतराल को पाटने के लिए 750 वर्चुअल लैब्स और 75 स्किलिंग ई–लैब्स स्थापित की गई हैं। ये प्रयोगशालाएँ छात्रों को सिमुलेशन के माध्यम से प्रयोग करने की अनुमति देती हैं। कोविड–19 के दौरान इन लैब्स का उपयोग कई गुना बढ़ गया था, और वर्तमान में ये हाइब्रिड लर्निंग मॉडल का एक अनिवार्य हिस्सा बन गई हैं शोध बताते हैं कि वर्चुअल लैब्स के उपयोग से इंजीनियरिंग छात्रों के सीखने के परिणामों और जुड़ाव में 0.686 का महत्त्वपूर्ण 'इफेक्ट साइज' देखा गया है।

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) का एकीकरण : एक नवीन क्रांति :– वर्ष 2026 तक, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस भारतीय शिक्षा प्रणाली में केवल एक अध्ययन का विषय नहीं, बल्कि एक शक्तिशाली शिक्षण उपकरण के रूप में उभरा है। एनईपी 2020 एआई की क्षमता को व्यक्तिगत शिक्षण और शिक्षक क्षमताओं को बढ़ाने के एक स्मअमत के रूप में पहचानती है। भाषाई बाधाओं का समाधानः 'अनुवादिनी' और भाषा एआईभारत में तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेजी का प्रभुत्व अक्सर ग्रामीण और क्षेत्रीय भाषा के छात्रों के लिए एक बड़ी बाधा रहा है। एआई–आधारित 'अनुवादिनी' (Anuvadini) टूल ने इस परिदृश्य को बदल दिया है।

- **बहुभाषी अनुवादः** एआईसीटीई द्वारा विकसित यह प्लेटफॉर्म वैज्ञानिक और तकनीकी सामग्री का 13 क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद करने में सक्षम है। मार्च 2026 में, 'आयुर्वेद' अनुसंधान को 13 भाषाओं में उपलब्ध कराने के लिए केंद्रीय आयुर्वेद अनुसंधान परिषद (CCRAS) और अनुवादिनी के बीच एक ऐतिहासिक समझौता हुआ
- **क्षमताः** यह उपकरण पाठ (Text), दस्तावेज, भाषण और वीडियो का रीयल–टाइम अनुवाद कर सकता है, जिससे क्षेत्रीय भाषाओं में उच्च गुणवत्ता वाली अध्ययन सामग्री की उपलब्धता सुनिश्चित हो रही है।

पाठ्यक्रम में एआई और कोडिंग :– शैक्षणिक वर्ष 2026–27 से, एनईपी 2020 और नए नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क (NCF) के अनुरूप कक्षा 3 से ही एआई और 'कम्प्यूटेशनल थिंकिंग' को पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है। सीबीएसई (CBSE) वर्तमान में कक्षा 6 से 15 घंटे का एआई कौशल मॉड्यूल प्रदान कर रहा है और कक्षा 9 से 12 तक इसे एक वैकल्पिक विषय के रूप में पेश किया जा रहा है। पंजाब और ओडिशा जैसे राज्यों ने अपनी सरकारी स्कूलों में व्यापक एआई पाठ्यक्रम और लैब्स की स्थापना में अग्रणी भूमिका निभाई है।

जेनरेटिव एआई (GenAI) का प्रभाव :– वर्ष 2025–26 के सर्वेक्षण बताते हैं कि एड–टेक का उपयोग करने वाले 35 प्रतिशत छात्र अब अपनी पढ़ाई के लिए जेनरेटिव एआई का सहारा ले रहे हैं। ओईसीडी (OECD) डिजिटल एजुकेशन आउटलुक 2026 के अनुसार, 57 प्रतिशत शिक्षक मानते हैं कि एआई पाठ योजनाओं को बेहतर बनाने में सहायक है। हालांकि, 72 प्रतिशत शिक्षक शैक्षणिक अखंडता (Academic Integrity) को लेकर चिंतित हैं, जिसके कारण 'सुरक्षित और विश्वसनीय एआई' (Safe & Trusted AI) जैसे ढांचों का विकास किया जा रहा है ताकि पूर्वाग्रहों को कम किया जा सके और गोपनीयता सुनिश्चित की जा सके ।

शिक्षक सशक्तिकरण और प्रशिक्षण :– डिजिटल युग के मार्गदर्शक किसी भी शैक्षिक तकनीक की प्रभावशीलता अंततः शिक्षक की योग्यता पर निर्भर करती है। भारत ने 'निष्ठा' (NISHTHA) कार्यक्रम के माध्यम से दुनिया का सबसे बड़ा शिक्षक प्रशिक्षण अभियान चलाया है।

निष्ठा कार्यक्रम के चरण	लक्षित समूह	प्रगति (2025–26 तक)
निष्ठा 1.0	प्रारम्भिक स्तर (कक्षा I-VIII)	लगभग 41–42 लाख शिक्षकों का प्रशिक्षण
निष्ठा 2.0	माध्यमिक स्तर (कक्षा IX-XII)	10 लाख शिक्षकों का लक्ष्य, 7.64 लाख प्रमाणित
निष्ठा 3.0 (FLN)	बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान	25 लाख शिक्षकों का लक्ष्य, लाख प्रमाणित
निष्ठा 4.0	ईसीसीई (ECCE) और आंगनवाड़ी	प्री–प्राइमरी शिक्षकों के लिए नवीन पहल

शिक्षक प्रशिक्षण के इन मॉड्यूल्स में न केवल डिजिटल उपकरणों का उपयोग शामिल है, बल्कि कला–एकीकृत शिक्षण, समावेशी शिक्षा और छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य के लिए 'प्रथम–स्तर के परामर्श' (First&level counselling) जैसे महत्वपूर्ण विषय भी शामिल हैं। शोध इंगित करते हैं कि इन डिजिटल प्रशिक्षणों से शिक्षकों की दक्षता में 20–30: का सुधार हुआ है, जो सीधे तौर पर छात्रों के परीक्षा परिणामों में 10–15: की वृद्धि में परिलक्षित हो रहा है ।

मानसिक स्वास्थ्य और डिजिटल कल्याणः एक उभरता हुआ वैश्विक संकट :– डिजिटलीकरण की तीव्र गति ने छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य पर गंभीर और अक्सर चिंताजनक प्रभाव डाले हैं। वर्ष 2025–26 की रिपोर्टें एक गहरे पीढ़ीगत संकट की ओर इशारा करती हैं।

ग्लोबल माइंड हेल्थ रिपोर्ट 2025 और भारत की स्थिति :– सैपियन लैब्स (Sapien Labs) द्वारा जारी 'ग्लोबल माइंड हेल्थ 2025' रिपोर्ट के अनुसार, भारत के युवा (18–34 वर्ष) मानसिक कल्याण के मामले में 84 देशों में 60वें स्थान पर हैं।

- **पीढ़ीगत अंतराल :** 55 वर्ष से अधिक आयु के भारतीयों का 'मानसिक स्वास्थ्य भागफल' (MHQ) 96 है, जो सामान्य कार्यात्मक मानदंडों के करीब है। इसके विपरीत, 18–34 आयु वर्ग के युवाओं का औसत स्कोर मात्र 33–36 है।
- **कारण विश्लेषण :** रिपोर्ट इस गिरावट के लिए प्रारंभिक स्मार्टफोन जोखिम (Early smartphone exposure), परिवार के साथ कम होते संबंधों और अल्ट्रा–प्रोसेस्ड भोजन की अधिक खपत को जिम्मेदार मानती है। भारत में स्मार्टफोन प्राप्त करने की औसत आयु 16.5 वर्ष है, जो युवाओं में 'डिजिटल व्यसन' (Digital addiction) और एकाग्रता की कमी को बढ़ावा दे रही है।
- शिक्षा पर प्रभावः एनसीईआरटी (NCERT) के सर्वेक्षण के अनुसार, 81% स्कूली छात्र पढ़ाई और परीक्षाओं को लेकर तीव्र चिंता महसूस करते हैं।

सरकारी प्रतिक्रिया : मनोदर्पण और टेली–मानस – इस मानसिक स्वास्थ्य संकट को दूर करने के लिए, शिक्षा मंत्रालय ने 'मनोदर्पण' (Manodarpan) पहल के माध्यम से मनोवैज्ञानिक सहायता प्रदान करना जारी रखा है।

- **सहयोग सत्रः** एनसीईआरटी नियमित रूप से 'सहयोग' (Sahyog) लाइव सत्र आयोजित करता है जहां काउंसलर्स छात्रों की समस्याओं का समाधान करते हैं। ये सत्र 'पीएम ई–विद्या' चौनलों पर प्रसारित होते हैं।
- **बजटीय प्रावधानः** बजट 2026–27 में मानसिक स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देते हुए उत्तर भारत में एक नवीन निमहंस (NIMHANS–2) संस्थान की स्थापना और मौजूदा केंद्रों के उन्नयन की घोषणा की गई है।

बजटीय आवंटन और नीतिगत क्रियान्वयन : 2024–2027 – राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के महत्वाकांक्षी लक्ष्यों को साकार करने के लिए भारत सरकार ने शिक्षा बजट में निरंतर वृद्धि की है। वर्ष 2026–27 का बजट 'विकसित भारत 2047' के लक्ष्य की ओर एक महत्वपूर्ण कदम है।

शिक्षा मंत्रालय का बजट 2026–27 – शिक्षा मंत्रालय को कुल ₹1,39,289.48 करोड़ आवंटित किए गए हैं, जो पिछले वर्ष की तुलना में 8.27 प्रतिशत से 14 प्रतिशत तक की वृद्धि (संशोधित अनुमानों के आधार पर) दर्शाता है।

प्रमुख व्यय शीर्ष	आवंटन (रू. करोड़ में)	पिछले वर्ष (RE) से परिवर्तन
स्कूल शिक्षा एवं साक्षरता विभाग	83,562.26	+18%
उच्च शिक्षा विभाग	55,727.22	+8%

समग्र शिक्षा	42,100.00	+11%
पीएम श्री स्कूल	6,050.00	(NEP शोकेस स्कूल)
एवीजीसी (AVGC) लैब्स स्थापना	(15,000 स्कूल)	

बजट में युवाओं को भविष्य के रोजगार के लिए तैयार करने हेतु 15,000 माध्यमिक स्कूलों और 500 कॉलेजों में एनिमेशन, विजुअल इफेक्ट्स, गेमिंग और कॉमिक्स (AVGC) प्रयोगशालाएँ स्थापित करने का एक ऐतिहासिक निर्णय लिया गया है।

पीएम श्री (PM SHRI) स्कूलों की प्रगति और डिजिटल सैचुरेशन पीएमश्री (Prime Minister^s Schools for Rising India) योजना के तहत 14,500 से अधिक स्कूलों को आधुनिक सुविधाओं से लैस 'आदर्श स्कूलों' के रूप में विकसित किया जा रहा है।

- **सैचुरेशन मॉडलः** इन स्कूलों में स्मार्ट क्लास रूम, आईसीटी लैब्स, कौशल लैब्स और अटल टिंकरिंग लैब्स (ATL) की 100% उपलब्धता सुनिश्चित की जा रही है।
- **क्षेत्रीय प्रगतिः** उदाहरण के लिए, राजस्थान में मार्च 2026 तक 639 स्कूलों में बुनियादी ढांचा कार्य पूरा हो चुका है, जहां डिजिटल लाइब्रेरी और कंप्यूटर लैब्स का जाल बिछाया गया है। पंजाब में भी 356 स्कूलों को इस योजना के तहत अपग्रेड किया जा रहा है।

'एक राष्ट्र, एक छात्र आईडी': अपार (APAAR) आईडी :– डिजिटल शिक्षा के पारिस्थितिकी तंत्र को सुव्यवस्थित करने के लिए 'स्वचालित स्थायी शैक्षणिक खाता रजिस्ट्री' (Automated Permanent Academic Account Registry & APAAR) आईडी को अनिवार्य किया गया है।

- **उपयोगिताः** यह 12–अंकीय विशिष्ट आईडी छात्र की शैक्षणिक यात्रा, उपलब्धियों और क्रेडिट को डिजिटल रूप से संग्रहीत करती है। इसे 'एकेडमिक बैंक ऑफ क्रेडिट्स' (ABC) के साथ एकीकृत किया गया है।
- **2026 की स्थितिः** शैक्षणिक वर्ष 2026–27 के लिए सीबीएसई और अन्य बोर्डों ने अपार आईडी पंजीकरण को अनिवार्य कर दिया है। यह कॉलेज प्रवेश और छात्रवृत्ति आवेदनों के लिए एक अनिवार्य दस्तावेज बन गया है।

डिजिटल विभाजन की चुनौतियाँ और लैंगिक अंतराल :– तमाम तकनीकी प्रगति के बावजूद, 'डिजिटल विभाजन' (Digital Divide) भारत के लिए एक कठोर सामाजिक वास्तविकता बनी हुई है। यह विभाजन भौगोलिक, आर्थिक और लैंगिक स्तरों पर व्याप्त है।

ग्रामीण बनाम शहरी विभाजन का विश्लेषण :– ट्राई (TRAI) के मार्च 2026 के आंकड़ों के अनुसार, ग्रामीण टेली–घनत्व (60.46%) अभी भी शहरी क्षेत्रों (151.47%) की तुलना में काफी पीछे है। यद्यपि ग्रामीण भारत में इंटरनेट पैठ की वृद्धि दर तीव्र है, लेकिन हाई–स्पीड फिक्स्ड ब्रॉडबैंड अभी भी शहरी क्षेत्रों तक सीमित है। ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट का प्राथमिक स्रोत अभी भी मोबाइल डेटा है, जो वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग और भारी शैक्षणिक फाइलों के लिए कभी–कभी अस्थिर सिद्ध होता है।

लैंगिक अंतराल के सांख्यिकीय साक्ष्य :– 2025–26 के आंकड़ों के अनुसार, डिजिटल साक्षरता और उपकरण स्वामित्व में महिलाओं की स्थिति अभी भी पुरुषों की तुलना में कमतर है।

- **सोशल मीडिया और उपयोगः** अक्टूबर 2025 तक, भारत के सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं में केवल 35.6% महिलाएं थीं। यूट्यूब विज्ञापन पहुंच के मामले में भी 38.8% वयस्क महिला दर्शक हैं, जो पुरुषों (61.2%) की तुलना में कम है।
- **साझा उपकरणों पर निर्भरताः** ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएं अक्सर परिवार के साझा उपकरणों पर निर्भर रहती हैं। एएसईआर (ASER) 2023 की रिपोर्ट बताती है कि ग्रामीण युवा पुरुषों के पास निजी स्मार्टफोन होने की संभावना महिलाओं की तुलना में दोगुनी है।

- **सकारात्मक संकेतः** हालांकि, 'फ्यूचर स्किल्स प्राइम' के तहत पंजीकृत 29 लाख उम्मीदवारों में से 41% महिलाएं हैं, और 'इंस्पायर–मानक' योजना में 52ः विचार लड़कियों द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं, जो विज्ञान और प्रौद्योगिकी में उनकी उभरती भूमिका को दर्शाता है।

केस स्टडीजः डिजिटल शिक्षा की जमीनी सफलता :– एंडिजिटल शिक्षा के प्रभाव को समझने के लिए कुछ प्रेरक क्षेत्रीय उदाहरणों का सूक्ष्म विश्लेषण आवश्यक है।

1. **पश्चिम बंगाल का डिजिटल लर्निंग रूम (DLRP):** सुंदरबन के दुर्गम भौगोलिक क्षेत्रों में 'सेंटर फॉर सोशल चेंज एंड डेवलपमेंट' (CSCD) ने एक रीयल–टाइम 'सिंक्रोनस लर्निंग' मॉडल चलाया। इसमें 267 किमी दूर बैठे एक विशेषज्ञ शिक्षक ने गूगल मीट के माध्यम से दो दूरस्थ स्कूलों के बच्चों को एक साथ पढ़ाया। इस मॉडल ने सिद्ध किया कि तकनीक भौगोलिक बाधाओं को पार कर उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा प्रदान कर सकती है।
2. **बिहार के गया जिले की सफलताः** एक सरकारी बालिका विद्यालय में एआई–आधारित भाषा ऐप्स और टैबलेट्स के उपयोग से एक वर्ष के भीतर छात्रों की अंग्रेजी साक्षरता दर 32 प्रतिशत से बढ़कर 71 प्रतिशत हो गई। यह दर्शाता है कि लक्षित तकनीकी हस्तक्षेप से सीखने के परिणामों (Learning Outcomes) में नाटकीय सुधार संभव है।
3. लद्दाख के सौर–संचालित केंद्रः बिजली की अनुपस्थिति में 'ग्लोबल हिमालयन एक्सपीडिशन' (GHE) ने सौर ऊर्जा से चलने वाले डिजिटल शिक्षा केंद्र स्थापित किए हैं। यह दुर्गम और पर्वतीय क्षेत्रों के लिए एक अनुकरणीय मॉडल है।
4. ई–विद्यालय (E-Vidyaloka): यह गैर–लाभकारी संस्था शहरी स्वयंसेवकों को स्काइप और अन्य उपकरणों के माध्यम से 49 से अधिक सुदूर ग्रामीण स्कूलों से जोड़ती है, जिससे शिक्षकों की कमी की समस्या का समाधान हो रहा है।

भविष्य की रूपरेखा और सामरिक सुझाव :–भारत को 2030 और 2040 के अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए डिजिटल शिक्षा की रणनीति में निरंतर सुधार करने की आवश्यकता है।'

- **फजिटल' (Phygital) मॉडल को अपनाना :** भविष्य न तो पूरी तरह ऑनलाइन होगा और न ही पूरी तरह ऑफलाइन। हमें एक हाइब्रिड मॉडल विकसित करना होगा जहां प्रयोगशाला कार्य, खेल और सामाजिक कौशल के लिए छात्र स्कूल आएं, जबकि सैद्धांतिक ज्ञान डिजिटल रूप से प्राप्त किया जा सके। बुनियादी ढांचे का अंतिम मील तक विस्तारः भारतनेट और पीएम–वाणी (PM-WANI) योजनाओं को युद्ध स्तर पर पूर्ण करना होगा ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में डेटा की लागत और कम हो सके और गति बढ़ सके।
- **ऑफलाइन–फर्स्ट डिजिटल लर्निंग :** ग्रामीण भारत के लिए ऐसी एड–टेक प्रणालियों की आवश्यकता है जो बिना निरंतर इंटरनेट के भी काम कर सकें, जैसे 'संपर्क टीवी' (Sampark TV), जो सामान्य टीवी को स्मार्ट क्लासरूम में बदल देता है।
- **शिक्षकों का निरंतर व्यावसायिक विकास (CPD) :** शिक्षकों को केवल तकनीकी उपयोगकर्ता नहीं, बल्कि 'डिजिटल पेडागोगी' के विशेषज्ञ के रूप में विकसित करना होगा। एनईपी 2020 की वार्षिक 50 घंटे के प्रशिक्षण की सिफारिश को कड़ाई से लागू करना होगा।
- **एआई और डेटा गोपनीयता :** शिक्षा में एआई के उपयोग के साथ–साथ छात्रों के डेटा की गोपनीयता और एल्गोरिद्मिक पूर्वाग्रहों से सुरक्षा के लिए सख्त कानूनी ढांचे की आवश्यकता है।

निष्कर्ष :– राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भारत की शिक्षा प्रणाली को 21वीं सदी की आवश्यकताओं और 'डिजिटल भारत' के सपनों के अनुरूप ढालने के लिए एक साहसिक और दूरदर्शी रूपरेखा प्रदान की है। वर्ष 2025–26 के नवीनतम आंकड़े यह स्पष्ट करते हैं कि भारत ने कनेक्टिविटी, डिजिटल प्लेटफॉर्मों के उपयोग और नवीन प्रौद्योगिकियों (जैसे एआई) के एकीकरण में अभूतपूर्व प्रगति की है। दीक्षा, स्वयं और पीएम श्री जैसी पहलें शिक्षा के लोकतंत्रीकरण की दिशा में निर्णायक कदम सिद्ध हो रही हैं। तथापि,

'डिजिटल विभाजन' की गहरी खाई, युवाओं का गिरता मानसिक स्वास्थ्य और भाषाई बाधाएं अभी भी ऐसी चुनौतियां हैं जो इस प्रगति की गति को अवरुद्ध कर सकती हैं। सफलता की असली कसौटी यह होगी कि क्या तकनीक वास्तव में समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़े छात्र के लिए 'समान अवसर' का द्वार खोल पाती है। तकनीक केवल एक साधन (Means) है, साध्य (End) है– एक प्रबुद्ध, कौशलयुक्त और संवेदनशील नागरिक समाज का निर्माण। यदि सरकार, निजी क्षेत्र और नागरिक समाज एक साथ मिलकर काम करते हैं, तो भारत निश्चित रूप से एक वैश्विक ज्ञान महाशक्ति और 'विश्व गुरु' के रूप में अपनी ऐतिहासिक पहचान को पुनः प्राप्त करने में सफल होगा।

संदर्भ–सूची :–

1. Ministry of Education. (2020). *National Education Policy 2020*. Government of India.
2. Internet and Mobile Association of India & Kantar. (2026, January 29). *Internet in India Report 2025*.
3. Sapien Labs. (2026, February 27). *Global Mind Health in 2025 Report*. Sapien Labs.
4. Telecom Regulatory Authority of India. (2026, April 23). *The Indian Telecom Services Performance Indicators March 2026* (Press Release No. 53/2026). Government of India.
5. Ministry of Education. (2026, February). *Budget Estimates 2026-27: Department of School Education & Literacy*. Government of India.
6. National Council of Educational Research and Training. (2026). *NISHTHA: National Initiative for School Heads' and Teachers' Holistic Advancement*.
7. Central Board of Secondary Education. (2026, April 1). *CBSE Mandatory APAAR ID (One Nation, One Student ID) Integration 2026-27*.
8. All India Council for Technical Education. (2026, March 30). *Ayurveda Research Accessible in 13 Languages: CCRAS Signs MoU with Anuvadini AI*. PIB Delhi.
9. ASER Centre. (2024, March 11). *ASER 2023 Evidence Brief: Digital Readiness of India's Youth*.

ꕥ★ꕥ

21वीं सदी के कथा साहित्य में किन्नरों की सामाजिक चुनौतियाँ

डॉ. गिरजेश कुमार*

शोध सार :– साहित्य का संबंध समाज से होने की वजह से उसका स्वरूप भी परिवर्तनशील होता हैं इसी परिवर्तनशीलता की वजह से हमारा साहित्य विमर्श की दुनिया तक पहुँचा है। जैसे साहित्य समाज का दर्पण है, वैसे ही विमर्श उस दबे हुए विशेष क्षेत्र या समुदाय की अस्मिता की सम्मान देना है। आज के समय में साहित्य को माध्यम बनाकर सभी विमर्श अपने मूलभूत अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं। वह चाहे स्त्री, दलित, आदिवासी हो या किन्नर समुदाय के क्यों न हो? यद्यपि किन्नर समुदाय हमारे समाज का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है परंतु इसकी उपस्थिति हमारे बीच नहीं होती और न ही इसका कोई अपना अस्तित्व है। किन्नर समुदाय को हमेशा तिरस्कृत भावना और अपमान की दृष्टि से देखा गया है। हर समय अपमान के दंश को झेलने के लिए विवश होना पड़ा है। आधुनिक के दौर में भी किन्नर समुदाय समाज में उपहास के पात्र बन अपना जीवन–यापन कर रहे है परंतु उपहास करने वाला हमारा तथाकथित समाज भी इसके दर्द और पीड़ा को समझ नहीं पाया। सिर्फ और सिर्फ वह व्यक्ति जो इस अपमान का सामना कर चुका है, वही इस समुदाय का दर्द समझ सकता है। किन्नर समाज के लोग अपनी अलिंगी शरीर को लेकर जन्म से मृत्यु तक अपमानित और तिरस्कृत होते हुए अपना जीवन व्यतीत करते है और जीवन भर अपनी अस्मिता की तलाश में बार–बार ठोकरें खाते रहते है। साहित्य जनक्रांति का भी माध्यम रहा है। वह एक ओर जहाँ संकीर्ण मानसिकता को बदलने की भूमिका निभाता है, वहीं दूसरी ओर समय–समय पर होने वाले आंदोलनों को भी मजबूत जमीन प्रदान करता है। वर्तमान में कई भाषाओं की विविध विधाओं में इस विषय पर लेखन कार्य हो रहे है। हिंदी साहित्य के भी कई विधाओं में इस विषय को केंद्र में रखकर अनेक कार्य किये जा रहे हैं।

बीज शब्द :– अस्मिता, तिरस्कृत, अस्तित्व, अलिंगी, जनक्रान्ति, संकीर्ण मानसिकता।

किन्नर विमर्श हिंदी साहित्य के तमाम विमर्शों को नया आयाम प्रदान करता हुआ, समाज के सर्वाधिक उपेक्षित ग्लानि–ग्रस्त वर्ग को पाठकों की सोच के केंद्र में लाने वाला विमर्श है। हमारे मानस को कुरेदने वाला यह विमर्श हमारी सहिष्णुता पर करारा प्रहार करता है। हाशिए के समाज के अन्य विमर्शों की अपेक्षा किन्नर विमर्श वर्तमान समय में भी अपने प्रारंभिक दौर में है। डॉक्टर पुनीत बिसारिया इनके संदर्भ में कहते है– 'यह कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य और समाज की मानसिकता में अभी किन्नर विमर्श बेहद अपरिपक्व तथा पूर्वाग्रह पूर्ण अवस्था में है। समाज की वैचारिकी अभी इन्हें स्वीकार करने में हिचक रही है। फिर भी यह तो मानना ही होगा कि दिन–प्रतिदिन खुल रहे और विकसित हो रहे समाज ने अब इन्हें थोड़ा सा स्पेस देना शुरू कर दिया है और शीघ्र ही हम वह दिन भी देखेंगे जब यह भी समाज में सामान्य लोगों की भांति अपने मानवाधिकारों के साथ जीवन–यापन कर सकेंगे।'[1] साहित्यिक दृष्टिकोण से गौर करें तो उनका कथन सही प्रतीत होता है। हिंदी साहित्य में किन्नरों की जिजीविषा, संघर्ष, आकांक्षाएं, द्वंद्व और पीड़ा का भावपूर्ण चित्रण हुआ है। इस वर्ग की समस्या को आधार बनाते हुए सुधीश पचौरी कहते है कि– 'असमान्य लिंगी होने के साथ ही समाज के हाशिए पर धकेल दिये गये इनकी सबसे बड़ी समस्या आजीविका है जो उन्हें अंततः इनके समुदाय में ले जाती है। अकेले बहिष्कृत ये किन्नर आर्थिक रूप में भी हाशिए पर डाले जाते हैं।......नपुंशक लिंगी कहां से जिएंगे ? समाज का स्वीकृत हिस्सा कब बनेगें ?[2]

किन्नर को किस बात की सजा मिलती है जिसमें उसका कोई हाथ ही नहीं। उसने किन्नर का जन्म लिया तो उसमें उसका क्या दोष ? जब कोई बच्चा जन्म लेता है तो उसे पता नहीं होता कि वह किस योनि में पैदा हुआ है या किस घर, परिवार, समुदाय, धर्म, जाति, वर्ग, कस्बा, शहर या महानगर में जन्म लिया हुआ है। वह सिर्फ सजा इसलिए पाता है कि वह एक किन्नर है। प्रकृति ने उसके साथ न्याय नहीं किया। उसके साथ सभ्य कहे जाने वाले लोगों ने भी इंसाफ नहीं किया। उसे समाज में दोहरे शोषण का सामना करना पड़ा है। प्रकृति और मनुष्य दोनों के ही हाथों उसका शोषण हो रहा है। वे तमाशा नहीं करते, बल्कि प्रकृति और ईश्वर द्वारा बनाया गया खुद एक तमाशा है, जो सभ्य समाज को कठपुतली बना रहा है। जिसको सभ्य मानव समझ नहीं पाता फिर भी लोग तमाशबीन बने उनका तमाशा देख रहे है। जसवीर राणा की कहानी 'घुंघरू' में हिजड़ों की इसी मानसिक व्यथा को दिखाया गया है। इस कहानी में एक किन्नर सामाजिक उपेक्षा से खिन्न हो भगवान द्वारा उनके साथ की गई नाइंसाफी तथा अपनी जमात की पीड़ा को बयां करती हुई कहती है कि– 'भगवान ने भी हमारे साथ अच्छा नहीं किया। जिस दिन मरूंगी सीधा उसी खसम के पास जाऊँगी। उसने हमें दिया ही क्या है, जिसका हिसाब मांगेगा ! मैं दूंगी उसे हिसाब ठेंगा।[3]

***सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय गैरसैंण चमोली, उत्तराखंड**

लंबे समय से किन्नरों को समाज में हाशिए पर रखा जाता है और उन्हें दोयम दर्जे का जीव माना जाता रहा है। ये भी मानव स्नायियों से उत्पन्न हांड–मांस के जीव हैं, जो हमारे बीच समाज में रहते हैं, लेकिन इनका कोई वजूद या अस्तित्व नहीं है। ये भी हमारे समाज का एक अंग हैं। यद्यपि वे अस्तित्वहीन है और समाज के लिए भी आवश्यक है। ये भी समाज का एक भाग है,लेकिन इन सबके बावजूद वे अनुपस्थिति का दंश झेल रहे हैं। उन्हें जन्म से सामाजिक अस्वीकृति और अवहेलना का सामना करना पड़ता है। नौ महीने तक जो औरत उसे अपने गर्भ में रखती है, उसे अपने लहू से सींचती है। जन्म होते ही उस अबोध बालक को सामाजिक लोक–लाज के कारण उसको त्याग देती है। उस नवजात शिशु को जिसको यह तक भी नहीं पता की लड़का–लड़की या किन्नर कौन होते है? किन्नर बच्चे को मां की गोद छोड़कर समाज के गलियारों में जाना पड़ता है, जहाँ उसे पलना–बढ़ना पड़ता है। भले ही हमारा समाज उनको अपनाने से डरता हो लेकिन उनका जन्म भी हमारे समाज की महत्वपूर्ण इकाई पति–पत्नी या माता–पिता के द्वारा ही होता है। इस नाते माता–पिता का स्नेह पाने का उसको भी उतना ही हक है जितना कि सामान्य बच्चे का। अपने इस जायज बच्चे को उसका जायज हक भी नहीं दे पाते हैं। अपना नाम तो दूर उसे अपना ममत्व और प्रेम भी नहीं दे पाते। मां,जिसे ममत्व का खान माना जाता है, वे भी अपने उभयलिंगी बच्चे को अपना प्यार तक नहीं दे पाती। अंजना वर्मा की कहानी 'कौन तार से बनी चदरिया' में किन्नरों के साथ हो रहे इसी मानवीय भेदभाव और संवेदना को व्यक्त किया गया है। इस कहानी की किन्नर पात्र सुंदरी जब अपनी मां तथा परिवार के लोगों से मिलने के लिए जाती है, किन्तु सामाजिक दबाव के कारण वे लोग उससे सही से मिलते नहीं हैं। वे कहती है– "उसकी माँ भी उठी। स्नेह कातर होकर अपने कमजोर हाथों से सुंदरी का गाल छूती हुई ठुड्डी पकड़कर उसे कई पलों तक देखती रही, कुछ बोल न सकी। सुंदरी ने माँ को पकड़ लिया और उसके गाल से अपना गाल सटा लिया। माँ के गाल की गोरी कोमल त्वचा बुढ़ा के और भी कोमल लग रही थी सटने पर द्य सीने पर चिपकी सूती साड़ी का मुलायम एहसास वह अपने कलजे में संजोती रही। अलग हुई तो देख माँ रो रही थी।"[4]

किन्नर जैसा की नाम से ही लग रहा है न ही नर न ही मादा। बल्कि इन दोनों के बीच की स्थिति है, जिसे बोलने या लिखने से ही हमारी आत्मा झकझोर जाती है। कल्पना कीजिए कि इस जीवन को जी रहे लोगों पर क्या गुजरती होगी ? एक ओर आम लोग हैं जो सम्मानपूर्वक समाज में रहते है। जिन्हें अपना घर,परिवार और समाज है। जो शादी–विवाह करके एक खुशहाल वैवाहिक जीवन व्यतीत करते हैं। जिनके आँगन में बच्चों की किलकारियाँ गूंजती हैं, उन्हें अपने बच्चों का पालन–पोषण, उनकी शिक्षा–दीक्षा, शादी–विवाह की चिंताएं, सुखमय जीवन की कामनाएं और भविष्य की बड़ी–बड़ी योजनाओं के बारे में बहुत कुछ करना पड़ता है। किंतु इसके विपरीत, किन्नर हैं जो न तो घर, परिवार, माता–पिता, वैवाहिक सुख का अनुभव कर पाते हैं और न ही इनके घर बच्चों की किलकारियाँ गूंजती है। डॉक्टर शिवप्रसाद सिंह की कहानी शबिंदा महाराजश इन्हीं अपूर्णलिंगी हिजड़ों की मन की वेदना को व्यक्त करती हैं। इसमें बिंदा नामक हिजड़ा अपने मन में दबे इक्षा जो कि पारिवारिक सुख को लेकर कहती है– "मर्द होता तो बीबी बच्चे होते, पुरुषत्व का शासन होता, स्त्री भी होता तो किसी पुरुष का सहारा मिलता, बच्चों की किलकारियाँ से आत्मा के कण–कण तृप्त हो जाते।"[5]

जेंडर हमारे समाज में फैली एक बुराई है। यह भी हमारे पितृसत्तात्मक समाज की ही देन है जहाँ बेटा–बेटी में केवल बेटे को ही महत्व दिया जाता है और लड़की का अस्तित्व गौण माना जाता है। ऐसे में भला ये पितृसत्तात्मक समाज उभयलिंगी अर्थात थर्ड जेंडर को कैसे स्वीकार कर सकता है। जेंडर मानसिकता से पीड़ित लोगों ने जब बेटा–बेटी में ही भेद कर दिया है तो फिर किन्नरों का वजूद ही क्या हैं ? जिस जेंडर की आग में किन्नर समुदाय झुलस रहे हैं आखिर उसमें उनका क्या कुसूर? किन्नर होना या न होना किसी के बस की बात नहीं। लेखक भगवंत अनमोल ने अपने उपन्यास 'जिंदगी 50–50' के माध्यम से किन्नर जीवन की व्यथा कथा, उपेक्षा दुर्व्यवहार को दर्शाते हुए परिवार और समाज की सोच में परिवर्तन लाने का प्रयास किये है। वे कहते है– "अगर हम चाहें और किन्नरों को भी उचित शिक्षा और सुविधाएं मुहैया कराई जाए तो वे भी एक सामान्य व्यक्ति की तरह घर–परिवार और समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वाह बखूबी कर सकते है।"[6]

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 14 भारत के सभी नागरिकों को समानता का अधिकार देता है। तो वही अनुच्छेद 15 किसी भी व्यक्ति को धर्म, जाति,लिंग या किसी भी अन्य आधार पर विभेद करने से रोकता है। तब भी यह किन्नर समुदाय समाज में वंचित, विभेदित और तिरस्कृत जीवन जीने को विवश है। वही अनुच्छेद 16 भारत के सभी नागरिकों को लोक नियोजन का अवसर प्रदान करता है किन्तु आज समाज में किन्नर समुदाय का लोक नियोजन में भूमिका नगण्य है। किन्नर समुदाय शोषण,उत्पीड़न,हिंसात्मक व्यवहार तथा अत्याचार का शिकार होता है। नौकरियों का पाने का अधिकार बहुत कम मिलता है। आय का कोई निश्चित साधन न होने के कारण ये समुदाय भीख मांगने,वेश्यावृती करने तथा शुभ अवसरों पर नेग मांगने को विवश है, जिस वजह से इनकी आर्थिक स्थिति

दयनीय है। आलोचक मधुरेश के शब्दों में– "शास्त्रों में उनकी उपस्थिति भले ही शुभ सगुण के रूप में उल्लेखित हो, समाज में उनके प्रति सामान्य मानवीय और संवेदनशील व्यवहार का भी घोर अभाव है। चित्रा मुद्‌गल पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा में इस वर्ग की उपस्थिति को, उसकी व्यावहारिकता एवं भावनात्मक समस्याओं को प्रयाप्त संवेदनशील ढंग से अंकित करती है।"[7] चित्रा मुद्‌गल ने अपने उपन्यास पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा में महज एक शारीरिक कमी के चलते किसी इंसान को इंसान के रूप में अस्वीकार करने की घृणित मानसिकता का कड़ा विरोध किया है। लेखिका के शब्दों में– 'अपने ही घर से निकाल दिए गए विनोद की मर्मान्तक पीड़ा उसके अपनी बा को लिखे पत्रों में इतनी गहरी से उजागर हुई कि पाठक खुद यह सोचने पर विवश हो जाता है कि क्या शब्द बदल देने भर से अवमानना समाप्त हो सकती है? परिवार के बीच से छिटककर नाटकीय जीवन जीने को विवश किए जाने वाले ये बीच के लोग आखिर मनुष्य क्यों नहीं माने जाते।'[8]

आम लोगों की तरह किन्नरों का भी सामाजिक,न्यायिक,आर्थिक और राजनीतिक का अपना स्तर है। किन्नर लोग पूरी उम्र तन्हाई में बिताने के बावजूद आम लोगों की अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करते है। समाज में किन्नरों के प्रति दृष्टिकोण बदलने की आवश्यकता है। स्त्री–पुरुष में विभाजित इस समाज को किन्नर विमर्श पर विचार करने का समय नहीं हैं। इस गलती के लिए सरकार और हमारा समाज दोषी है। बाजारों,सड़कों,ट्रेनों आदि में तालियों के शोर से हर कोई बचना चाहता है। किन्नरों का दर्द सुनना,समझना या महसूस करना दुनिया में कोई जीव नहीं चाहता। वे यह भी नहीं जानते कि किन्नरों की शारीरिक संरचना,समुदाय के नियम,आजीविका के साधन,बिरादरी का ताना–बाना, जीवन भर के दर्द और मरने पर होने वाली रस्में क्या हैं? किन्नरों की अपनी अलग दुनिया है और अपनी ही पीड़ाजनक जिंदगी जिससे तथाकथित हमारा समाज अनजान है। मानवीय दृष्टिकोण से अगर परखे तो रोज–रोज तिलतिल कर मरने वालों का नाम है 'किन्नर'। गिरिजा भारती के उपन्यास अस्तित्व में लेखिका ने समाज में विद्यमान इसी तरह की मानसिकता को दिखाया है। इसमें लेखक ने सामाजिक व्यक्ति और हिजड़े समुदाय के इसी तरह की वार्तालाप को दिखाया है– 'अरे पहले तुम लोग शादी–विवाह या बच्चे के जन्म होने पर ही मांगते थे या किसी त्यौहार पर खुशी मनाने आते थे। अब हर बस–ट्रेन को अपनी समझकर घुस जाते हो.....तभी एक किन्नर बोला. ...हम भी क्या करे बेटा, मां–बाप ने त्याग दिया, घर परिवार का पता नहीं और कोई काम आता नहीं.....दूसरा यात्री बोला...अरे कोई व्यवसाय करो, किन्नर बोला....क्या व्यवसाय करें? हमारे पास जमा पूंजी तो है नहीं बेटा।[9] इस तरह हम देखे तो इनका भूत और भविष्य दोनों अंधकारमय होता है और वर्तमान भी बहुत अच्छा नहीं होता बल्कि कष्टदायक होता है। किंतु इनके पास वर्तमान के अलावा कोई दूसरा विकल्प ही नहीं होता।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मानव सभ्यता के प्रारंभ से ही किन्नर अस्तित्व में रहे हैं, लेकिन उन्हें समाज में विशेष स्थान नहीं दिया गया। हमेशा उपेक्षित पूर्ण ही अपना जीवन–यापन करते हुए आये है। उनका हमेशा उपहास ही किया गया। उनके पास न ही उतनी साहस है और न ही उतने शिक्षित, जिससे वे अपनी आवाज को समाज के समक्ष रखें एवं अपनी पीड़ा को व्यक्त कर समाज में अपनी उपस्थिति दर्ज करा सकें। लेकिन आज 21वीं सदी में उनके हालात में बहुत कुछ बदलाव हुआ है। किन्नर शिक्षित है, जागरूक है और अपनी भावनाओं को भी समाज के समक्ष प्रस्तुत कर सकते है। इतना ही नहीं, किन्नरों के प्रति लोगों के नजरिया में भी कुछ हद तक बदलाव आया है, लेकिन जो बदलाव हुआ है वे आधुनिकता के दौर में न के बराबर है। आगे और भी बदलाव की आवश्यकता है, जिससे वे भी अपनी उपस्थिति समाज में दर्ज करा सके और हमारे बीच खुलकर अपनी बात एवं पीड़ा को रख सकें। हिंदी साहित्यकारों ने भी किन्नरों की दुख,दर्द एवं पीड़ा को अपनी रचनाओं में स्थान दिया और उनकी भावनाओं को भी व्यक्त करने का प्रयास किये है। साथ ही, उन्होंने किन्नरों को भी अपनी रचनाओं का मुख्य विषय भी बनाया है ताकि वे भी हमारे सभ्य समाज में शामिल हो सके।

संदर्भ ग्रंथ–सूची :–

1. डॉ. पुनीत बिसारिया, विमर्श का तीसरा पक्ष,संपादक–डॉक्टर विजेंद्र प्रताप सिंह, रवि कुमार गोंड, पृष्ठ संख्या –54।
2. किन्नर विमर्श साहित्य के आईने में : डॉक्टर इकरार अहमद, पृष्ठ संख्या –70।
3. घुंघरू कथा : जसवीर राणा, पृष्ठ संख्या –127।
4. कौन तार से बिनी चदरिया : अंजना वर्मा, पृष्ठ संख्या –18।
5. बिंदा महाराज : शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ संख्या –23।
6. जिंदगी 50–50 : भगवंत अनमोल , पृष्ठ संख्या –67।
7. साहित्य, समाज और किन्नर (विशेषांक) : संपादक – डॉक्टर नरेश सिहाग एडवोकेट, बोहल शोध मंजुषा, मई 2019, पृष्ठ–18।
8. पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा : चित्रा मुद्‌गल, पृष्ठ संख्या –153।
9. अस्तित्व : गिरिजा भारती, पृष्ठ संख्या –100

৯★৫

परिवर्तनशील विश्व में भारत की रणनीति
(पुस्तक समीक्षा)

डॉ. रितु तिवारी*

समीक्षा के लिए प्रस्तुत 'परिवर्तनशील विश्व में भारत की रणनीति' शीर्षक नामक पुस्तक भारत के विदेश मंत्री डॉ सुब्रमण्यम जयशंकर (प्रमुख भारतीय राजनीतिज्ञ और पूर्व वरिष्ठ राजनयिक) के द्वारा लिखित एक महत्वपूर्ण पुस्तक है, जो भारत की विदेश नीति और वैश्विक परिदृश्य में उसकी भूमिका पर एक महत्वपूर्ण और गहन दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। यह पुस्तक दीपक नरेश के द्वारा अनुवादित की गई है, जो वर्तमान वैश्विक चुनौतियों के बीच भारत की कूटनीतिक रणनीतियों और नीतिगत प्रक्रियाओं का व्यापक दृष्टि से विश्लेषण करती है।

भारत के प्रमुख प्रकाशन–गृहों में से एक साहित्यिक, सांस्कृतिक, और राष्ट्रवादी पुस्तकों के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध प्रभात प्रकाशन, दिल्ली के द्वारा वर्ष 2020 में इस पुस्तक का प्रकाशन किया गया। जब हम इस पुस्तक के लेखक डॉ. सुब्रह्मण्यम जयशंकर की बात करते हैं तो यह सर्वविदित है कि विदेश मामलों को लेकर एस. जयशंकर जी की विशेषज्ञता और अनुभव पर किसी भी तरह का प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है। सभी जानते है कि वह अमेरिका, चीन, सिंगापुर और चेक गणराज्य जैसे देशों में भारत के राजदूत रह चुके हैं। इसके अतिरिक्त भी उनके द्वारा समय–समय पर अलग–अलग भूमिकाओं का निर्वहन किया गया है। लंबे राजनयिक अनुभव के बाद वर्तमान समय में वह विदेश मंत्री के रूप में प्रत्यक्ष रूप से विदेश नीति की बागडोर को संभाल रहे हैं। यह पुस्तक उनके विस्तृत अनुभव के साथ ही भारतीय संस्कृति को लेकर उनकी स्पष्ट समझ को भी दर्शाती है। 228 पृष्ठों की इस पुस्तक के कवर पृष्ठ को जब हम देखते तो इसकी कलात्मक डिजाइन इसके विषय के साथ न्याय करती दिखाई देती है जोकि अत्यंत ही आकर्षक है, और इसके पन्नों की गुणवत्ता भी उच्च्य कोटि की रखी गई है।

पुस्तक के प्रमुख बिंदु :– "बुद्धिमता यही हैं कि बदलते विश्व की बदलती चालों (या शैलियों) की लय में निरंतर चलते रहें।" तिरुवल्लवर के इस कथंन को जब प्रस्तावना में लिखते हुए पुस्तक की शुरुआत होती है तब यह चार दशकों के राजनयिक अनुभवों पर आधारित एक व्ययवाहरिक विश्लेषण को व्यक्त करती है, जिसमें लेखक के द्वारा वैश्विक स्तर पर विद्यमान तमाम जटिलताओं का उल्लेख करते हुए सूक्ष्म दृष्टि से हर कूटनीतिक बिन्दु पर बारीकी से प्रकाश डाला गया है।

जयशंकर के विशाल राजनयिक अनुभव और उनकी गहरी समझ लिए यह पुस्तक वर्ष 2008 के वैश्विक संकट से लेकर वर्ष 2020 तक के दौरान कोविड के विश्वस्तरीय व्यवस्था में परिवर्तन का जो दौर विद्यमान रहा, जिसमें भारत एक नेतृत्वकारी शक्ति की राह में सभी प्रमुख शक्तियों के साथ संबंधों को उत्कृष्ट बनाने हेतु निरंतर प्रयासरत था, उसका विश्लेषण ऐतिहासिक तथ्यों के साथ करते हुए परिवर्तनशील विश्व की चुनौतियों के संदर्भ में भारत की संभावित नीतिगत प्रक्रियाओं पर विचार–विमर्श करती है।

पुस्तक को कुल आठ अध्यायों में विभक्त किया गया है जिसका विस्तार से अध्ययन करने पर आभास होता है कि विदेश नीति का संबंध केवल बाहरी संबंधों तक ही सिमटा नहीं होता है बल्कि यह आंतरिक रूप में विद्यमान सामाजिक–राजनीतिक वास्तविकताओं से भी प्रभावित होता है जोकि विश्व व्यवस्था में भारत की विदेश नीति को गहराई से समझने में सहायता प्रदान करता है। इस पुस्तक में लेखक के द्वारा भारत के उभरते हुए विश्वस्तरीय प्रभाव और उसकी विदेश नीति के विभिन्न पहलुओं पर विस्तृत रूप से चर्चा की है। इसलिए इस पुस्तक को एक महत्वपूर्ण प्राथमिक दस्तावेज के रूप में देखा जा सकता है, जिसके माध्यम से हम देश की विदेश नीति के एक प्रभावशाली वास्तुकार की सोच को समझ सकते हैं।

***सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, करामत हुसैन मुस्लिम गर्ल्स पी.जी कॉलेज, लखनऊ।**

पुस्तक का मुख्य विषय :– यह पुस्तक प्रबल प्रतिस्पर्धी भावना और प्रखर रणनीतिक समझ का समर्थन करते हुए वर्तमान समय में आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास को किसी भी देश के लिए मुख्य मानदंड मानती है।महाभारत के तमाम उद्धरण का जिक्र कर लेखक ने अपने विषय को ऐतिहासिक और सांस्कृतिक आधार प्रदान किया है। उत्कृष्ट निर्णायक क्षमता के साथ मुख्य रूप से 21वीं सदी में किस तरह से भारत की विदेश नीति ने किस प्रकार विकास के विभिन्न स्तरों को पार किया है, उसका विस्तार से वर्णन करते हुए उसके विभिन्न आयामों पर भी गहन चर्चा यह पुस्तक करती है। इतना ही नहीं बदलते विश्व में भारत की क्या रणनीति रहीं है और उसके समक्ष किस प्रकार की चुनौतियों समय–समय पर आती रही, इस पर भी ध्यान केंद्रित करती पुस्तक यह भी बताने में सफल प्रतीत होती है कि किस प्रकार भारत स्वयं के उद्भव हेतु पूर्ण रूप से सक्षम है।

लेखक के द्वारा वर्तमान समय में भारत की विदेश नीति को आकार देने वाले विभिन्न कारकों जैसे कि भू–राजनीतिक परिवर्तन, आर्थिक विकास, तकनीकी परिवर्तन और क्षेत्रीय सहयोग पर विस्तृत चर्चा करते हुए वैश्विक स्तर पर हो रहे बदलावों जैसे कि बहुध्रुवीय विश्व का उदय, अमरीका दृचीन प्रतिस्पर्धा, ऊर्जा संकट जलवायु परिवर्तन, आतंकवाद और व्यापार युद्धों का जैसे तमाम मुद्दों का गहराई पूर्वक और समग्र रूप से तार्किक परीक्षण किया गया है।

लेखक के द्वारा ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भारत की विदेश नीति के इतिहास को संक्षिप्त में प्रस्तुत करते हुए लेखक द्वारा पड़ोसी देशों के साथ संबंधों और क्षेत्रीय सहयोग पर विशेष बल दिया गया है। विभिन्न ऐतिहासिक और समसामयिक घटनाओं का संदर्भ देते हुए लेखक ने भारत की विदेश नीति की चुनौतियों और अवसरों को हम सबके सामने रखा है। विशेष रूप से चीन और पाकिस्तान के संदर्भ में, उन्होंने न केवल वर्तमान रणनीतियों का वर्णन किया है, बल्कि उन ऐतिहासिक गलतियों का भी उल्लेख किया है जो अतीत में भारत ने की थीं। पुस्तक का शुरुआती भाग अवध की सीख से शुरू होता है, जो यह दर्शाता है कि जयशंकर भारतीय संस्कृति और इतिहास के संदर्भ में कूटनीति को कितनी गहराई से समझते हैं।

विषय की संवेदनशीलता को समझते हुए वह राष्ट्रीय हित के साथ–साथ अंतरराष्ट्रीय दायित्वों का संतुलन साधने में भी सतर्क रहे हैं। भारत के आर्थिक विकास और उसकी विदेश नीति के साथ उसके घनिष्ट सम्बन्ध को विवेचनात्मक ढंग से व्यक्त करते हुए लेखक ने भारत की उभरती हुई वैश्विक भूमिका और उसकी जिम्मेदारियों पर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

विदेश नीति का विषय बहुत गूढ़ और दुरूह है। ऐसे में इस विषय को सरल शब्दों में सामने रखना भी बड़ी चुनौती है। पुस्तक इस चुनौती पर खरी उतरती दिखती है। इतना ही नही लेखक के द्वारा पुस्तक में जटिल अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का सरलता पूर्वक तथ्यात्मक विवेचन करने के साथ स्पष्ट भाषा एवं शब्दावली में गहन जानकारी को समझाने का प्रयास किया गया है।

पुस्तक में तथ्यों और आंकड़ों का अधिकतम प्रयोग करके विश्वसनीयता को बढ़ाने का प्रयास किया गया है,जिसमें निसंदेह लेखक ने सफलता अर्जित की हैं।घटनाओं, प्रकरणों और व्यवस्थाओं को जिस सहजता के साथ उदाहरण देते हुए सामने लाया गया है, वह सराहनीय है। जब पुस्तक में महाभारत के प्रकरण और श्रीकृष्ण की नीति को संदर्भित किया जाता है तो पाठक स्वतः ही इतिहास और वर्तमान के बीच की कडियां जोड़कर पूरे प्रसंग को समझता चला जाता है। एक लेखक के रूप में यह निसंदेह बड़ी सफलता है। यह कहना बिल्कुल भी गलत नहीं होगा कि लेखक के द्वारा विशेष रूप से इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि किस तरह से भारत को अपने राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुए अंतरराष्ट्रीय जिम्मेदारियों का निर्वहन करना चाहिए।

पुस्तक में रूस–यूक्रेन युद्ध और कोविड–19 महामारी जैसे समसामयिक वैश्विक घटनाओं का परीक्षण करते हुए लेखक ने यह दिखाया है कि कैसे भारत ने इन चुनौतियों का सामना किया हैं। विशेष रूप से रूस–यूक्रेन युद्ध के दौरान जब भारत ने 20,000 से अधिक भारतीय छात्रों को सुरक्षित वापस लाने

की जो रणनीति अपनाई, वह भारतीय कूटनीति की सफलता को ही दर्शाता है। लेखक के द्वारा इस पुस्तक में इस बात पर सुझाव भी दिया गया है कि भारत को कैसे अपने कूटनीतिक संबंधों को विकसित करना होगा ताकि उसकी वैश्विक पहचान और सशक्त हो, जिसका सीधा लाभ उसके नागरिकों को मिले।

इस प्रकार इस पुस्तक को पढ़ना एक समृद्ध और ज्ञानवर्द्धक अनुभव है। विशेषकर पुस्तक का हिंदी संस्करण हिंदी भाषी क्षेत्रों में इतने महत्वपूर्ण विषय के प्रति रुचि को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ऐसे में यह पुस्तक यह उन पाठकों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है, जो अंग्रेजी में लिखित समकालीन विषयों पर आधारित पुस्तकों तक आसानी से पहुँच नहीं पाते हैं। इसकी लोकप्रियता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि इसे विभिन्न ऑनलाइन प्लेटफॉर्म जैसे अमेजन आदि पर व्यापक रूप से उपलब्ध कराया गया है। इस कारण अनमोल जानकारी का स्रोत यह पुस्तक वर्तमान परिदृश्य में और भी पठनीय हो गई है।

हालांकि रणनीति जैसे महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर मंथन करते हुए लेखक के द्वारा कुछ विषयों जैसे कि भारत की परमाणु नीति और अंतरिक्ष कार्यक्रम पर और अधिक गहराई से चर्चा की जा सकती थी, जिसकी कमी पुस्तक में अवश्य दिखाई पड़ती है। इतना ही नहीं इस पुस्तक में भविष्य में भारत की विदेश नीति के लिए संभावित दिशाओं पर और अधिक विस्तारपूर्वक चर्चा की जा सकती थी क्योंकि जो पाठक अंतरराष्ट्रीय राजनीति और कूटनीति के विषय में अधिक जानकारी नहीं रखते, उन्हें शुरुआत में कुछ अवधारणाएँ जटिल लग सकती हैं।

पुस्तक की लेखन शैली मूलतः सरल हैं पर स्वाभाविक रूप से अनुवादित प्रति में कहीं–कहीं पर वो सरलता बाधित होती दिखाई देती है। निस्संदेह उनकी लेखन शैली में शैक्षणिक और व्यावहारिक अनुभव की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। पर कहा जा सकता है कि हिन्दी माध्यम वालें पाठकों के लिए पढ़ने लायक यह एक अच्छी पुस्तक है जो भारतीय नीति निर्माण के प्रति एक दृष्टिकोण को सबके समक्ष रखने का सार्थक प्रयास करती हैं।

सारांशतः यह पुस्तक वर्तमान स्थिति में अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होती है क्योंकि एस. जयशंकर ने अपने अनुभव और ज्ञान को इस पुस्तक में न केवल कूटनीतिक दृष्टिकोण से बल्कि एक सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से भी प्रस्तुत किया है। यह पुस्तक उन सभी अधेयाताओं और विद्यार्थियों के लिए महत्वपूर्ण है जो भारतीय विदेश नीति, कूटनीति, और अंतरराष्ट्रीय संबंधों में रुचि रखते हैं। विशेष रूप से राजनीति विज्ञान के छात्र–छात्राओं हेतु समकालीन वैश्विक राजनीति को समझने में सहायक यह पुस्तक समग्र रूप से एक विस्तृत, गहन और संतुलित दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है, जो वर्तमान वैश्विक चुनौतियों और भारत की रणनीतिक प्राथमिकताओं को समझने में सहायक है। साथ ही, यह पुस्तक नीति निर्माताओं, पत्रकारों और उन सभी पाठकों के लिए भी लाभप्रद है जो भारतीय राजनीति, भारत की विदेश नीति, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों और वैश्विक राजनीति में रुचि रखते हैं। अगर कहा जाए तो गलत नहीं होगा कि संरचित प्रस्तुति और स्पष्ट लेखन इस पुस्तक को प्रबंधनीय बनाता है जो भारत की विदेश नीति के विकास को समझने के लिए एक मूल्यवान संदर्भ है।

★

अद्वैतविशिष्टाद्वैत वेदान्तयोः विभेद : स्वभावः विषयाश्च

डॉ. शशिभूषण भट्ट*

आपाततः सर्वेषामपि भारतीयदर्शनानां लक्ष्यं मोक्ष एव। संसारस्य स्वरूपं ,तस्यै कारणञ्च परिशीलयान्ति एते दार्शनिकाः। संसारस्य स्वरूपे, संसारिणो जीवस्य स्वरूपे, तस्य संसारसम्बन्धे, जीवेश्वरस्य सम्बन्धे संसारहेतौ, तदपगमोपायेषु, तस्य जीवस्य भोग्यभोगायतनादिषु, प्रमाणप्रमेयव्यवहारादि अन्यत् बहुषु विषयेषु एतेषां दार्शनिकानां महत् वैमत्यं वर्तते। अयं भेद एव विविध दर्शनानां विकासस्य साक्षात् हेतु– इति निश्चयेन वयं वक्तुं शक्यामहे। वेदान्तसम्प्रदायानां विषयेऽपि अयं पक्षः सम्यक् एव।

ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यमाश्रित्य प्रवर्तते अद्वैतविशिष्टाद्वैत वेदान्तयोर्मध्ये प्रचलितो विवादः। शाङ्करभाष्योक्तानां सिद्धान्तानां तत्त्वानां च प्रतिषेधार्थं श्रीमद्रामानुजेन ब्रहासूत्रस्योपरि श्रीभाष्यं विरचितम्। तदानीम् आरभ्य विशिष्टाद्वैतदार्शनिकैः अनेकशः ग्रन्थाः विरचिताः। तेषां श्रद्धा विश्वासः अद्वैतखण्डने आसीत्। किन्तु विशिष्टाद्वैतदर्शनखण्डने प्रतिषेधे वा षोडशशतकात् पूर्वं काऽपि विशिष्टाः प्रयत्नः अद्वैतिभिः न कृतं इति दृश्यते।

यद्यपि षोडशशतकात् पूर्वमेव अद्वैते वादप्रस्थानम् आरब्धं तथापि विशिष्टाद्वैतनिरासे यत्नः षोडशशताब्दिकेन उमामहेश्वरशास्त्रिणैवारब्ध इति इतिहास समालोचनायाम् अवगम्यते। आदौ मीमांसा–न्यायवैशेषिकादि दर्शनविमर्शनपराः वादग्रन्थाः विरचिता अद्वैतिभिः। ततः मध्वस्य द्वैतवेदान्तनिरासे आसीत् तेषां श्रद्धा।

षोडश–एकोनविंशति शतकयोर्मध्ये भारतीयदर्शनानां विकासौ खण्डनमण्डनश्च स्थिरभूतरू इति अवगम्यते। अत एकोनविंशतिशतकादारभ्य एव अद्वैतविशिष्टाद्वैतर्मध्ये विवादस्य द्वितीया आवृत्तिः अभवत् इति दृश्यते।यत्नः षोडशशताब्दिकेन उमामहेश्वरशास्त्रिणैवारब्ध इति इतिहास समालोचनायाम् अवगम्यते। आदौ मीमांसा–न्यायवैशेषिकादि दर्शनविमर्शनपराः वादग्रन्थाः विरचिता अद्वैतिभिः। ततः मध्वस्य द्वैतवेदान्तनिरासे आसीत् तेषां श्रद्धा। षोडश–एकोनविंशति शतकयोर्मध्ये भारतीयदर्शनानां विकासो स्थगितीकृत इति अवगम्यते।

अत एकोनविंशतिशतकादारभ्य एव अद्वैतविशिष्टाद्वैतयोर्मध्ये विवादस्य द्वितीया आवृत्तिः समभवत् इति दृश्यते। एतच्च इदानीमपि प्रचलति। पूर्वाचार्यैः स्थापितानां विवदितानां च विषयाणां समीक्षात्मकं समालोचनं विविधैः ग्रन्थैः कृतं सम्प्रदायिकैराधुनिकैश्च विद्वद्भिः। अद्वैतवेदान्ते मोक्षाय ज्ञानमार्गमेव निर्दिष्टं भवति। विशिष्टाद्वैतादि दर्शनानि ज्ञानकर्मसमुच्चयः तथा भक्तिश्च मोक्षस्य परमहेतुत्वेन स्वीकुर्वन्ति। ज्ञानस्य क्लिष्टत्वात् स्त्रीशूद्रादीनां ज्ञाने अधिकाराभावाच्च सर्वोपकारकत्वेन भक्तिमुपदिशन्ति एते।

भारते नानासम्प्रदायप्रवर्तितानि दर्शनानि आसन् इति सर्वविदितमेव। 'वादे वादे जायते तत्त्वबोधः' इति तत्त्वं स्मारयन् शास्त्रेषु खण्डनमण्डनपरा वादपन्था आसीदिति दर्शनानां प्राचीनग्रन्थेभ्योऽवगम्यते। ब्रह्मसूत्रभाष्ये पाञ्चरात्रपाशुपतादि आगमप्रामाणिका ईश्वरकारण सिद्धान्ताः[1], सांख्ययोगन्यायवैशेषिकबौद्धजैनादि दर्शनानि च श्रुतियुक्तिप्रमाणाभासादीन् हेतून् प्रदर्थ्य श्रीशाङ्कराचार्येण निरस्तः।[2]

भगवद्गीताभाष्ये[3] तथा उपनिषद्भाष्येषु[4] च आचार्य शाङ्करेण ज्ञानकर्मसमुच्चयवादस्य नसाक्षान्मोक्षहेतुत्वं निराकृतम्। भक्तेः मोक्षोपयोगित्वं शाङ्करस्याप्यभिमतम्। किन्तु तन्न साक्षाद् मोक्षोपयोगीति– 'मोक्षसाधनसामग्रीषु भक्तिरेव गरीयसी' इति तस्य मतम्। अतएव अवगम्यते यत् शाङ्करात् प्रागपि ज्ञान–कर्म–ज्ञानकर्मसमुच्चय भक्त्यादि मोक्षोपायवादिनः सम्प्रदायाश्च आसन् इति। एते सम्प्रदायाः शाङ्करोत्तरकाले विशिष्टाद्वैतादि दर्शनरूपेण प्रसिद्धा अभवन्। अतोऽवगम्यते सम्प्रदायभेद एव अद्वैतविशिष्टाद्वैतयोः विवादहेतुरिति।

---

* **विभागाध्यक्ष–संस्कृत, नालंदा कॉलेज, बिहारशरीफ, नालंदा–बिहार।**

सर्वेषामपि वेदान्तसम्प्रदायानां मध्ये सिद्धान्तसंबन्धिषु च विषयेषु मतभेदः विवादश्च विद्येते। एतेषु अंशेषु अद्वैतेतरसम्प्रदायेषु समवायोऽस्ति। अद्वैतेतरसम्प्रदायेषु विद्यमानो भेदः सम्प्रदायभेदकृतं इति निश्चयेन वक्तुं शक्यते। अद्वैतं विशिष्टाद्वैतं च वेदान्ते विद्यमानौ द्वौ सम्प्रदायौ भवतः। विशिष्टाद्वैतदर्शने स्वीकृतानि पूर्वोत्तरमीमांसयोरेकशास्त्रत्वे मतभेदात् एव अहैतविशिष्टाद्वैत योर्भेदः। ब्रह्मविद्यायाः पूर्ववृत्तं किमिति विचार्यते अथशब्दार्थविचार ब्रह्मसूत्रस्य सर्वेऽपि भाष्यकाराः। 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' (ब्र.सू.१–१–१.) इति जिज्ञासासूत्रे अथशब्द आनन्तर्यं बोधयति इति सुविदितम्। अत्र अथशब्दार्थविचारे शाङ्करभाष्योक्तं साधनचतुष्टयसम्पत्त्यानन्तर्यमथशब्दार्थ इति मतं निरस्य कर्मावबोधानान्तर्यमेव (पूर्वमीमांसाध्ययनानन्तर्यम्) अथशब्दार्थो भवितुमर्हति इति रामानुजः वदति।[5] श्रीभाष्योक्तसिद्धान्तस्य अस्य निराकरणम् अद्वैतिभिः कृतम्।[6]

अधिकारिभेदात् शास्त्रभेदः – अद्वैतवेदान्तिनोऽपि अथशब्दस्य आनन्तर्यार्थं स्वीकुर्वन्ति। तत्तु साधनचतुष्टय सम्पत्यानन्तर्यम् एव अत्र अद्वैतिभिरथशब्देन विवक्षितम्।[7] साधनचतुष्टयसम्पन्नः प्रमाता ब्रह्मज्ञानाधिकारी।[8] नित्यानित्यवस्तुविवेकः, इहामुत्रार्थफलभोगविरागः, शमादिषट्कसम्पत्तिः, मुमुक्षुत्वं च साधनचतुष्टयम्। अत्र ब्रह्मैव नित्यं वस्तु ब्रह्मव्यतिरिक्तं सर्वम् अचेतनमनित्यं च भवति इति विवेकः नित्यानित्यवस्तुविवेकः। अस्मिन् लोके विद्यमानेषु अनित्येषु वनितादिविषयेषु तथा स्वर्गादिषु फलभोगेषु च जातो विरक्तिरिहामुत्रार्थफलभोगविरागः। विषया अनित्याः, अशाश्वताः, क्षणिकाश्च। अतः विषयेषु विरागः सम्पादयितव्यः। शमो नाम अन्तकरणस्य अनात्मविषयेभ्यो व्यावृत्तिः, दमो बाह्येन्द्रियाणां निग्रहः, द्वन्द्वसहिष्णुता तु तितिक्षा, समाधानं समाधिः, श्रद्धा तु गुरुवाक्येषु विश्वासः।[9]

शाङ्कराचार्यविरचितायाम् उपदेशसाहस्यां मुमुक्षो प्रदत्ते उपदेशे मोक्षसाधनानां विस्तृतोपाख्यानं वर्तते। तच्च एवं– तदिदं मोक्षसाधनं ज्ञानं साधनसाध्यादनित्यात्सर्वस्माद्विरक्ताय त्यक्तपुत्रवित्तलोकैषणाय प्रतिपन्नपरमहंसपरिव्राज्याय शमदमदयादियुक्ताय शास्त्रप्रसिद्धशिष्यगुणसम्पन्नाय शुचयेब्राह्मणाय विधिवदुपसन्नाय शिष्यायजातिकर्मवृत्तविद्याभिजनैः परीक्षिताय ब्रूयात् पुनः पुनः।[10]

कर्तृभेदात् शास्त्रभेदः– कर्तृभेदादपि उभयोः शास्त्रयोः भेद अवगम्यते। जैमिनिकृता पूर्वमीमांसा 'कर्ममीमांसा', 'षोडशलक्षणी' इत्यादि नामाभ्यामपि प्रसिद्धा। 'ब्रह्ममीमांसा', 'चतुर्लक्षणी', 'वेदान्त' इत्यादि पर्यायवाची उत्तरमीमांसा बादरायणेन प्रणीता। सूत्रप्रतिपादितविषयभेदात् सिद्धान्तभेदात् शास्त्रवैरुद्धयात् च कर्तृभेद अवगम्यते। तस्मादनयोरेकशास्त्रत्वम् अङ्गीकर्तुं न शक्यते। अतः भिन्नपुरुषविरचितत्वात् एकशास्त्रत्वम् अनयोः पूर्वोत्तरमीमांसयोः न युज्यते।[11]

इत्यत्र श्रूयमाणो मीमांसा शब्दः 'पूर्वमीमांसा उत्तरमीमांसा इति नामाभ्यां व्यवह्रियमाणं काण्डद्वयात्मकम् एकमेव मीमांसाशास्त्रं सूचयति' इति रामानुजमतम्। वेदाश्चत्वारो मीमांसान्यायविस्तर इत्यत्र विद्यास्थानत्वेन याज्ञवल्क्योक्तानि वेद–वेदाङ्ग–न्याय–मीमांसा–पुराणानि शास्त्राणि, आहत्य चतुर्दश इति रामानुजीयाः वदन्ति। अत्र पूर्वोत्तरमीमांसयोर्भेदः न विवक्षितः, अतोऽनयोर्भेदे न प्रमाणम्। अतोऽप्रामाणिकत्वात् पूर्वोत्तरमीमांसाभेदो न अङ्गीकुर्वन्ति विशिष्टाद्वैतिनः।

अत्र धर्ममीमांसा सङ्कर्षकाण्डान्ता 'अथातो धर्मजिज्ञासा' इत्यारभ्य 'सविष्णुराह इत्यन्ता जैमिनिकृता षोडशलक्षणी इति नाम्नापि प्रसिद्धा। अथातो ब्रह्मजिज्ञासा इति। सूत्रमिदम् अद्योलभ्यमाने सङ्कर्षकाण्डसूत्रेषु नास्ति। सम्प्रदायिकैराचार्यैः, विशिष्य द्वैतिभिः, विशिष्टाद्वैतिभिश्व इदं प्रामाण्यत्वेन उद्धृतं तेषां ग्रन्थेषु।

फलभेदात् शास्त्रभेदः– फलभेदेन अपि एकशास्त्रत्वं न उचितम्। ब्रह्मज्ञानस्य प्रयोजनं मोक्ष इति अद्वैतिनः।

अनुष्ठानेन अनुष्ठेयफलकारित्वं धर्मज्ञानस्य सिद्धं, किन्तु सिद्धफलज्ञानं ब्रह्मज्ञानम् अनुष्ठानापेक्षितं न भवति। द्वयोः प्रस्थानयोः प्रमेयं प्रयोजनं च भिन्नम्। अतोऽनयोः विचारतात्पर्यमपि भिन्नं भवेत्। अद्वैतिभिः मोक्षसाधनं ज्ञानमिति स्वीक्रियते। फलाधिकरणे– तथा च तदर्थविचारात्मिका चतुर्लक्षणी शारीरकमीमांसा नारब्धव्याष इति अध्यासभाष्यान्ते, 'चतुर्लक्षणीव्युत्पाद्यं ब्रह्म केनचित्केनचिदंशेनैकैकेन लक्षणेन व्युत्पाद्यते' इति जिज्ञासासूत्रभाष्यव्याख्याने च।[12] इत्यनेन सर्वफलप्रदत्वं परमात्मन एव इति स्थापितम्।

अत्र यागदानहोमोपासनारूपमेव धर्मः तस्यफलमेव श्रेष्टमिति जैमिनेः मतम्। यागादिकर्मणा उत्पद्यमानस्य अपूर्वस्य कालान्तरे परम्परया फलसाधनत्वमुपपद्यते। कर्मानुष्ठानेन अनित्यास्थिरफलकं स्वर्गादिरेव सिद्ध्यति। अतोऽधिकारिभेदेन, विषयभेदेन, कर्तृत्वभेदेन, तथा फलभेदेन च पूर्वोत्तरमीमांसाशास्त्रयोः भेद एव अवगम्यते इति अद्वैतमतमेव साधुरिति स्थापयति रामरायकविः।

अद्वैते ब्रह्मस्वरूपम्– अद्वैतिनां मते ब्रह्म एकम् अद्वितीयं च भवति। अर्थात् ब्रह्मणि सजातीयविजातीयस्वगतभेदो नास्ति। अद्वैते ब्रह्मशब्दतात्पर्यः नित्यशुद्धमुक्तस्वभावे आत्मनि एव। उपनिषदश्च श्एकमेवाद्वितीयं ब्रह्मश इति अन्वयमुखेन, श्नेति नेतिश इति निषेधरूपेण च ब्रह्मशब्दप्रतिपादितं सद्रूपमात्मानं प्रतिपादयन्ति। 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'[13]

ब्रह्मस्वरूपलक्षणम् इति गम्यते। अयम् आत्मा निर्धर्मकः, निर्गुणः, नित्यः, चेतनश्च। ब्रह्म सत् चित् आनन्दम् अनन्तं च। सत् पदेन ब्रह्मणः शून्यत्वादिकं निरस्यते। चित् पदेन जडत्वं निरस्यते। आनन्दपदेन दुःखादिराहित्यं सूचितम्। अनन्तशब्देन उत्पत्याद्यभावः सूच्यते। त्रिकालाबाध्यं च सत् पदार्थः। चतुर्भिः महावाक्यैः सर्वेषां श्रुतीनां तात्पर्यं परस्मिन् निर्गुणे ब्रह्मणि एव इति अद्वैतिभिः समर्थितम्।[14]

विशिष्टाद्वैते ब्रह्मस्वरूपम् – विशिष्टाद्वैतवेदान्ते 'चित्', 'अचित्', 'चिदचिद्विशिष्टः' इति पदत्रयेण जीवः, प्रकृतिः, ईश्वर इति त्रीणि तत्त्वानि निर्दिशन्ति। रामानुजेन श्रीभाष्ये 'ब्रह्मशब्देन च स्वभावतो निरस्तनिखिलदोषो अनवधिकातिशयासङ्ख्येयकल्याणगुणगणः पुरुषोत्तमोऽभिधीयते' इति उक्तम्।[15]

'बृहति बृहयति तस्मादुच्यते परं ब्रह्म' इति वाक्यं ब्रह्मणो बृहत्वं बृंहणत्वं च ग्राहयति, स्मृतिश्च। स्वरूपगत उत्कर्षो बृहत्वम्य गुणद्वारा उत्कर्षः बृह्मणत्वम्।

ब्रह्मशब्दस्तु भगवद्वाचकः।

इति भगवच्छब्दः विष्णुपुराणे ब्रह्मतात्पर्येण उक्तम्। –

वेदे भूरिप्रयोगाच्च गुणयोगाच्च शाङ्गिणि तस्मिन्नेव ब्रह्मशब्दो मुख्यवृत्तो महामुने।'

इति ब्रह्मशब्दतात्पर्यं गरुडपुराणे प्रदर्शितम्। नारायणः, विष्णुः, श्रीनिवास इत्यादि शब्दानामपि तात्पर्यो ब्रह्मैवेति रामानुजः वदति। आल्वारा अपि विष्णुः, नारायणः, वासुदेव इत्यादि नामभिर्व्यवहृत एव उपास्य इति स्वीकुर्वन्ति।

अद्वैतवेदान्ते ईश्वरः– अद्वैतवेदान्ते ब्रह्म–ईश्वर–जीवभेदेन आत्मनो रूपत्रयमङ्गीकृतम्। अद्वैतिनः ब्रह्मणः पारमार्थिकत्वम् इतरयोः कल्पितत्वं च स्वीकुर्वन्ति। प्रकटार्थविवरणकारमते अनाद्यनिर्वचनीयायां मायायां चित्प्रतिबिम्बः ईश्वरः। तत्त्वविवेककारमते मायाप्रतिबिम्ब ईश्वरः। मूलप्रकृतेः विक्षेपशक्तिः माया, तदुपाधिकः ईश्वर इति केचन अद्वैतिनः। संक्षेपशारीरककारमते ईश्वरोऽविद्यायां चित्प्रतिबिम्बः। अज्ञानसमष्टिः ईश्वरस्य उपाधिः, तदुपहितं चौतन्यम् ईश्वर इति वेदान्तसारकारः वदति। सर्वज्ञत्व–सर्वेश्वरत्व–सर्वनियन्तृत्वादि धर्मावच्छिन्नः सर्वान्तर्यामी जगत्कारणम् ईश्वरः तत्पदवाच्यार्थः भवति। ईश्वरः मायायाः नियन्ता, अतः मायी इति ज्ञायते। अद्वैतवेदान्ते ईश्वरः सगुणः कल्पितोऽपारमार्थिकश्च भवति।

विशिष्टाद्वैते ईश्वरः – विशिष्टाद्वैते जीवेश्वरयोः पारमार्थिकत्वम् अङ्गीकृतम्। 'सर्वेश्वरत्वं सर्वशेषित्वं सर्वकर्माराध्यत्वं सर्वफलप्रदत्वं सर्वाधारत्वं सर्वकार्योत्पादकत्वं स्वज्ञानस्वेतरसमस्तद्रव्य शरीरत्वं' च ईश्वरलक्षणमिति यतीन्द्रमतदीपिकाकारः। अत्र चिदचिद्विशिष्टः ईश्वरः सर्वज्ञः स एव नियन्ता शेषी च। स्वतन्त्रम् आनन्दस्वरूपम् आश्रित्य सर्वे प्रवर्तते। स ईश्वरः सृष्टेः प्राक् अन्तर्यामी भूत्वा स्वेच्छया स्वयम् एव प्रवर्तते। अतः स एव प्रपञ्चकार इति समर्थयन्ति विशिष्टाद्वैतिनः। सः नारायण–ईश्वरादिनामभिरपि ज्ञायत।

अद्वैतवेदान्ते जीवः ऋ – जीवब्रह्मणोरभेद उपनिषत्सु प्रसिद्धः। शतत्त्वमसिश श्अहं ब्रह्मास्मिश्त्यादि उपनिषद्वाक्यानि जीवब्रह्मणोरभेदोपपादकानि। 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' इति भवति शाङ्करमतम्। अद्वैतिन उपनिषदमनुसरन् जीवब्रह्मणोरभेदमनुवदन्ति। अयं ब्रह्मण आभासो वा प्रतिबिम्बो वा, अंशो' वा भवितुमर्हति। सर्वथा अपि अयं ब्रह्मणो न भिन्नः। 'अस्त्यात्मा जीवाख्यः शरीरेन्द्रियपञ्जराध्यक्षः कर्मफलसम्बन्धी' इति

शङ्करेण भाष्ये उक्तम्। अविद्यावशात् सः सुखदुःखादिभोगान् अनुभवति। अज्ञाननाशे सति ब्रह्मात्मैक्ये मोक्षं प्राप्नोति। इति अवच्छेदवादिनः मन्यन्ते।

जीवः विशिष्टाद्वैते – जीवेश्वरयोः द्वयोरपि प्रत्यक्त–चेतनत्व–आत्मत्व–कर्तृत्वादिधर्माधिकरणत्वं विशिष्टाद्वैतिनोऽङ्गीकुर्वन्ति। विशिष्टाद्वैतमतानुसारं जीवश्चेतन एव। ष्प्रत्यक्त्वचेतनत्वात्मत्व कर्तृत्वादीनि ईश्वरजीवसाधारण लक्षणानि। अत्र चेतनत्वं ज्ञानाश्रयत्वं भवति। ईश्वरः विभुरणुश्च जीवः।

चित्, अचित्, ईश्वरः, इत्येतेषु ईश्वरो मुख्यः। चिदचिदौ अस्य विशेषणौ एव। अतश्चिदचिद्भ्यां विशिष्टः ईश्वरः। ईश्वरस्य विशेषणभूता चिदंशाः जीवात्मानः भवन्ति। अयं जीवः स्वप्रकाशः, आनन्दमयः, देहेन्द्रियादिभ्यः मनोऽहङ्कारबुद्धिप्राणदिभ्यश्च भिन्नः, नित्यः, अणुः, ज्ञानाश्रयश्च भवति। जीवेश्वरयोर्मध्ये महदन्तरं वर्तते। जीवोऽल्पज्ञः। अग्निस्फुलिङ्गवज्जीवः ईश्वरस्य अंशत्वेन तिष्ठति। जीवः सर्वदा ईश्वरप्रेरणया एव चरति। सः परतन्त्रः। सर्वं तस्मै परमेश्वरप्रदत्तमेव। यत् किञ्चिदपि कार्यं स्वयं कर्तुं जीवः न प्रभवति। जीवस्य स्वीयं स्वत्वं मोक्षावस्थायां न विनश्यति। अतः जीवेश्वरयोरुभयोरपि नित्यत्वं भेदश्च सर्वदा वर्तते।

विशिष्टाद्वैते मायाऽविद्याऽज्ञानानि – विशिष्टाद्वैते मायाशब्दः प्रकृतिपर्यायवाचकः। सा माया त्रिगुणात्मिका ईश्वरभिन्ना ईश्वराधीना नित्या च। माया परमात्मनोऽचिदंशः। अचेतनवस्तूनि अस्मात् जायन्ते। परिणामशीला सा न मिथ्या किन्तु वस्तुसदेव। अतः जगदादि विषयाणां सत्यत्वं वदन्ति विशिष्टाद्वैतिनः। मायाशब्दः जीवात्मनोऽविद्या इत्यर्थेऽपि विशिष्टाद्वैतिनः स्वीकुर्वन्ति येन जीवात्मपरमात्मनोः यथार्थस्वरूपावगतिः न सम्भवति। 'अविद्या कर्मसंज्ञान्याश इत्यादि विष्णुपुराणवाक्यं विवृण्वन् रामानुजः माया परमात्मन आश्चर्यजनकशक्तिः भवति इति सूचयति। सा संसारं रचयति। तथा सा परमात्माधीना अस्वतन्त्रा च भवति। अविद्या शब्दस्यसप्तविधानुपत्तयः।

अद्वैतवेदान्ते अव्यक्तं, शक्तिः, त्रिगुणात्मिका, परा, माया इत्यादिभिः नामभिरविद्या ज्ञायते (विवेकचूड़ामणि. ११०)। एषा अनिर्वचनीया भावरूपा च। ईश्वरस्य शक्तिरिति स्वीकृतत्वात् अस्या आश्रयो ब्रह्म भवितुम् अर्हति। अविद्यायाः विषयमपि ब्रह्म एव। तस्या आवरणविक्षेपशक्ती ब्रह्मणो अभानादिकं तथा ब्रह्मणि प्रपञ्चं च उद्भावयति। अत्र विवरणानुयायिनः, वार्तिककारानुयायिनश्च ब्रह्मैव अविद्याया आश्रयं विषयं चेति वदन्ति। वाचस्पतिमिश्रास्तु शुद्धे ब्रह्मणि अविद्यासम्भवात् तस्मिन् अविद्याश्रयत्वं प्रतिषिद्धयते।

अद्वैतवेदन्तस्य अविद्यातत्त्वस्य निरासः प्रथमतया भास्कराचार्येण नवमशतकान्ते ब्रह्मसूत्रभाष्ये कृतम्। भास्करचार्येण तस्य भेदाभेददर्शनप्रतिपादके भाष्ये अद्वैत्यभिमताया अनिर्वाच्यायाः, ज्ञानविरोधिन्यः भावरूपायाः मायान्यपर्याया।

सप्तविधानुपत्तयः – अद्वैतवेदान्ते अव्यक्तं, शक्तिः, त्रिगुणात्मिका, परा, माया इत्यादिभिः नामभिरविद्या ज्ञायते (विवेकचूड़ामणि. ११०)। एषा अनिर्वचनीया भावरूपा च। ईश्वरस्य शक्तिरिति स्वीकृतत्वात् अस्या आश्रयो ब्रह्म भवितुम् अर्हति। अविद्यायाः विषयमपि ब्रह्म एव। तस्या आवरणविक्षेपशक्ती ब्रह्मणो अभानादिकं तथा ब्रह्मणि प्रपञ्चं च उद्भावयति। अत्र विवरणानुयायिनः, वार्तिककारानुयायिनश्च ब्रह्मैव अविद्याया आश्रयं विषयं चेति वदन्ति। वाचस्पतिमिश्रास्तु शुद्धे ब्रह्मणि अविद्यासम्भवात् तस्मिन् अविद्याश्रयत्वं प्रतिषिद्धयते।

अद्वैतवेदन्तस्य अविद्यातत्त्वस्य निरासः प्रथमतया भास्कराचार्येण नवमशतकान्ते ब्रह्मसूत्रभाष्ये कृतम्। भास्करचार्येण तस्य भेदाभेददर्शनप्रतिपादके भाष्ये अद्वैत्यभिमताया अनिर्वाच्यायाः, ज्ञानविरोधिन्यः भावरूपायाः मायान्यपर्याया अविद्याया अयुक्तिकतां प्रदर्थ्य निराकृतम। अनन्तरं रामानुजेन तस्य विशिष्टाद्वैतदर्शने अविद्यायां दोषमारोप्य महासिद्धान्ते निराकृतम्। अविद्यातत्त्वनिरासार्थं रामनुजाचार्येण तस्यां सप्तविधानुपपत्तीः प्रदर्शिताः। सप्तविधानुपपत्तयः विशिष्टाद्वैतसम्प्रदाये महत्वपूर्णं स्थानमावहति, यत इमाम् आश्रित्य प्रवर्तते विशिष्टाद्वैतिनाम् अद्वैतखण्डनम्।

एते न केवलमविद्यां विमर्शन्ति अपितु जीवब्रह्ममोक्षप्रपञ्चव्यवस्थादि सर्वाणि तत्त्वानि निर्मूलं छिनत्ति। रामनुजस्य इमा अनुपपत्तयः सर्वैरादृता वर्तन्ते। अन्यैर्वादिभिरपि अद्वैतिभिः सह संजाते विवादे एतेषामुपयोगः कृ

तः। सप्तविधानुपपत्तय एते १. आश्रयानुपपत्तिः, २. तिरोधानानुपपत्तिः, ३. स्वरूपानुपपत्तिः, ४. अनिर्वचनीयत्वानुपपत्तिः, ५. प्रमाणानुपपत्तिः, ६. निवर्कानुपपत्तिः, ७. निवृत्त्यनुपपत्तिः च।

सिद्धान्तानां प्रभावः दृश्यते – अद्वैतविशिष्टादयो मध्ये विद्यमान विवादस्य मुख्यानां विषयाणां संग्रहः . आस्मिन् शोधपत्रे कृतः। अत्र शास्त्रैक्यवादः, ब्रह्म, जीवः, साक्षी, मिथ्यात्वम्, अविद्या, प्रमाणमीमांसा, मोक्षः,अहंकारः, भेदश्च संक्षिप्य विचारितम्। बहुषु विषयेषु अद्वैतविशिष्टाद्वैतयोः मतभेदः विवादश्व विद्यन्ते। वेदान्तदेशिकादिभिराचार्यैः शतदूषण्यादिषु षडङ्घष्ठि विषयाः प्रत्याख्यानाय स्वीकृतमिति दृश्यते। किन्तु एतेषां विवेचने सति पूर्वोक्तानां दशविषयाणां विस्तृतविचार एव तैः शतदूषण्यादिषु कृतं इति ज्ञायते। अन्ये विषयाः केवलम् आचार्यपराणि एव साम्प्रदायिकानां श्रीवैष्णवानाम् आचारसम्बन्धीनि एव। तेषां दार्शनिकप्राधान्यं नास्ति इत्यतः पृथक् न विवेचितमत्र। रामानुजपूर्ववर्तीनां शङ्करपूर्ववर्तीनां च आचार्याणां तैरनुसृतानां सम्प्रदायानां च भेदोऽस्मिन् विवादविषयेषु सुष्ठ भाति। शङ्करात् शतकद्वयानन्तरं भवति रामानुजस्य कालः। शङ्करेण ब्रह्मसूत्रस्य द्वितीयाध्याये तर्कपादे कृतस्य पाञ्चरात्रपाशुपतादि आगमिकेश्वरवादानां तथा केवलनिमित्तकारणेश्वरवादानां निरासस्य प्रत्याखानरूपेण आविर्भूतेषु वेदान्तसिद्धान्तेषु मुख्यो भवति विशिष्टाद्वैतम्। अत उभयोः मध्ये विद्यमानस्य विवादस्य विषयाणां संग्रहः विश्लेषश्च शोधदृष्ट्या अस्मिन् पत्रे संक्षेपेण कृतम्।

संदर्भ–सूची :–

1. ज्ञानाधिकरणम् आत्मा, सर्वं ज्ञानं सत्यं, सर्वं ज्ञानं विशिष्टं, ज्ञानस्य अचेतनत्वं च। – ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य विवरण १/१/१
2. ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य १–१–१)।
3. ''तस्माद्गीताशास्त्रे ईषन्मात्रेणापि श्रौतेन स्मार्तेन वा कर्मणा आत्मज्ञानस्य समुच्चयो न केनचिद्दर्शयितुं शक्यः'' तस्माद्गीताशास्त्रे केवलादेव तत्त्वज्ञानान्मोक्षप्राप्तिः न कर्मसमुच्चितात् इति निश्चितोऽर्थः। भगवद्गीता शांकरभाष्य द्वितीयाध्यायः
4. ''परिसमाप्तं कर्म सहापरब्रह्मविषयविज्ञानेन। सैषा कर्मणो ज्ञानसहितस्य परा गतिरुक्थविज्ञानद्वारेणोपसंहृता एतत्सत्यं ब्रह्म प्राणाख्यम्। एष एको देवः। एतस्यैव प्राणस्य सर्वे देवा विभूतयः। एतस्य प्राणस्यात्मभावं गच्छन् देवता अप्येति इत्युक्तम्। सोऽयं देवताप्ययलक्षणः परः पुरुषार्थः। एष मोक्षः। स चायं यथोक्तेन ज्ञानकर्मसमुच्चयेन साधनेन प्राप्तव्यो।
5. कर्मज्ञानं विना ब्रह्ममीमांसाधिकारित्वाशक्यत्वात् ब्रह्मजिज्ञासुना निश्चयेन पूर्वमीमांसाधिगन्तव्यमिति साधयन्ति रामानुजीयाः तदनुसारिणाश्च।अत्र श्रीभाष्यकारः तदनुयायिनश्च पूर्वोत्तरमीमांसे एकस्यैव शास्त्रस्य भागद्वयं वर्तते इति कृत्वा उभयोरेकशास्त्रत्वं समर्थयन्ति।
6. ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य १–१–१
7. तत्रैव।
8. तत्रैव।
9. वेदान्तसार सदानन्दयतिः 4–5।
10. उपदेशाहस्री–1/2–6
11. षोडशलक्षणी सङकर्षकाण्ड
12. फलमत उपपत्तेः" (ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य.. ३।२। ३८)
13. तैतिरीयोपनिषद् –२।१।१, सदेव सोम्येदमग्र आसीत् छान्दोग्योपनिषद्. ६।२।१, तत्त्वमसि छान्दोग्योपनिषद् ६।८।७, इत्यादिश्रुतिभ्यः सत्यज्ञानानन्तानन्दादिकं।
14. श्रुतिस्मृतिन्यायेभ्यो न देशकालादिविशेषयोगः परमात्मनि कल्पयितुं शक्यते– ब्र.सू.शा.भा. ४–३–१४
15. सर्वं खल्विदं ब्रह्म (छान्दोग्योपनिषद्. ३।१४। १.

॥★॥

Relevance of the Indian Knowledge System for Life Skills Development in the AI Era

Dr. Poonam Tiwari*

Abstract :- Artificial Intelligence (AI) is transforming the education, communication, workplaces, jobs and life at a rapid pace. Artificial intelligence helps to improve the efficiency, automation and technological advancement but it also raises some issues like reduction in interpersonal communication, ethical dilemmas, emotional disparity and over dependence on technology. Life skills, for example, critical thinking, communication, empathy, emotional regulation, decision making, adaptability and ethical reasoning, have become even more significant in the overall development of the human being. The present paper tries to explore the significance of life skills, the relevance of Indian Knowledge System (IKS) in the development of life skills and strategies for integrating Indian Knowledge System (IKS) with life skills education in the era of Artificial Intelligence (AI).

The study is conceptual and descriptive in nature and is based on secondary sources including books, policy documents, journal articles, and traditional Indian texts. The paper also points out that Indian Knowledge systems like Yoga, Ayurveda, Bhagavad Gita, Gurukul pedagogy, Panchatantra and Nyaya philosophy give a meaningful approach to the development of self-awareness, resilience, moral understanding, communication skills and holistic wellbeing. An integration of IKS-based approaches in curriculum, pedagogy and teacher education programmes using experiential and value-oriented learning practices is further recommended from the study. The paper concludes that AI can fociletate external advancement and technological growth while Indian Knowledge System can build the internal capacities and life skills required to live in a responsible, ethical and balanced way in the contemporary era.

Keywords:- Indian Knowledge System, Artificial Intelligence, Life Skills, Emotional Intelligence Yoga and Well-being, Value-Based Education

Introduction :- The twenty-first century has seen an unprecedented technological revolution. Artificial Intelligence (AI) is one of the most influential developments of modern times. AI is the ability of machines and digital systems to perform tasks usually associated with human intelligence, like learning, reasoning, problem-solving, language processing, and decision-making. Artificial intelligence is quickly changing the way people live, learn, work and communicate – from virtual assistants and smart devices to automated industries, healthcare systems, digital education platforms and predictive analytics. Its growing presence has opened new avenues for innovation, efficiency and convenience in a variety of sectors of society.

AI-based tools are increasingly being utilized in the domain of education for personalized learning, intelligent tutoring systems, automated assessment, content generation, and learner analytics. The workplaces are also evolving to accommodate automation, data-driven management and AI-driven decision-making. Social relations are also affected by digital platforms, algorithms and digital communication tools. However, there are a few drawbacks to these developments such as human dependence on technology, decline in inter-personal relationships, ethical issues, emotional disconnect, privacy issues and the increasing need to adapt to quickly changing environments. In an era of Artificial Intelligence, it's not only a matter of technology and tools – but also a question of human skills that AI can't measure up to. In this direction, there has been recognition of the significance of life skills.

***Assistant Professor, AIBAS, Amity University, Noida, Uttar Pradesh, India.**

Life skills are the skills needed to cope with daily life. The World Health Organization (WHO) identifies core life skills as the following: self-awareness, empathy, critical thinking, creative thinking, decision making, problem solving, effective communication, interpersonal relationship skills, coping with stress, and coping with emotions.

These are the attributes of personal development, emotional health, social competence, responsible citizenship and work readiness. In an age shaped by AI, however, life skills are more important than ever, referring to the uniquely human attributes like emotional intelligence, ethical decision-making, resilience, creativity, compassion and the ability to grasp the context.

Empathy, wisdom, inner discipline and value-driven decision making – those things are not things a machine can simulate, they are things a person can. As such, societies are now witnessing a greater acceptance that the development of technologies alone cannot lead to a holistic development. An example of that is a student who uses AI tools for their studies but also demonstrates self-control, empathy with others, critical thinking, emotional regulation and ethical reasoning is more likely to be a good citizen than just a student who knows how to use a tech tool. This way, learners can build a solid foundation for life, able to take advantage of technology without losing the sight of what really matters in life. By doing so, we can raise a generation of people who are not only tech-savvy but also compassionate, thoughtful, and responsible members of society. Human beings need strengths to use technology wisely and balance their personal and social lives. This is why life skills education has become crucial for people to handle the challenges of the world.

The Indian Knowledge System is rich and diverse and offers a framework for developing life skills. The Indian Knowledge System is a collection of knowledge gathered over centuries in India through means like philosophy, science, education, culture and practical wisdom. It includes insights from the Vedas, Upanishads, Bhagavad Gita, Yoga, Ayurveda, Buddhist and Jain traditions, Gurukul pedagogy, Nyaya logic, Artha Shastra, Panchatantra, and numerous indigenous knowledge practices. It has the potential to empower individuals to live fulfilling lives. It can accelerate individuals to develop the life skills they need. Life skills education based on the Indian Knowledge System can help people navigate uncertainty and complexity in the contemporory age. It can also help individuals make decisions and act responsibly in their personal and social lives.

IKS emphasizes the harmony of body, mind, intellect, society and nature and thus supports a holistic vision of human development. There are several things that are supportive of building life skills in relation to IKS. Yoga makes a person aware of him/herself, helps to concentrate, brings emotional stability and helps to manage stress. The teachings of Bhagavad Gita help in making decisions, awareness of duty, self-control and coping with difficulties. The Gurukul system has the focus of discipline, polite talking, practical learning, good mentor-student relationship. Ayurveda helps in maintaining health, harmony and well-being. Nyaya philosophy strengthens reasoning and logical analysis, while stories from Panchatantra and Jataka tales cultivate communication skills, ethical understanding, and problem-solving abilities. These traditions indicate that life skills were deeply embedded in Indian educational and cultural practices long before the term became popular in modern discourse.

In the age of Artificial Intelligence, the significance of IKS is that it can be used to complement the scientific advancement with human intelligence. AI can help with productivity and efficiency, but IKS can help to develop practices that promote ethical behaviour, mindful living, self-discipline, and empathy. Thus, AI is about changing systems, and IKS is about changing people. In the present times where a student is expected not just to be digitally literate and technically proficient, but emotionally prepared, critically aware, socially responsible and values driven is an equally important mix.

In recent years, the significance of the Indian Knowledge System in the promotion of value-based education, twenty first-century skills, and holistic development have been recognized in recent education reforms in India, particularly in the National Education Policy (NEP) 2020. Likewise, NCERT's reflections on Indian educational heritage highlight the vibrant legacy of Indian knowledge systems and how they remain pertinent in cultivating cultural identity, moral values and holistic growth of learners (NCERT, 2023). Moreover, literature indicates that the use of AI in conjunction with the Indian Knowledge System can foster a learning environment that is balanced, encompassing a blend of technological skills and life skills, ethical awareness and human values, and contributing to the holistic development of the individual in the realm of AI(Priya, 2025; Singh, 2026; Kumbhakar et al., n.d.).

Thus, the Indian Knowledge System offers evergreen knowledge and practices which remain relevant to today's problems related to human dimensions. Combining IKS and LSE can provide learners with the ability to navigate the balance between technological skills and ethical awareness, emotional regulation, and responsible citizenship in an AI-driven world.

Objectives of the Study :-

1. To study the significance of life skills in the AI era.
2. To identify the relevance of Indian Knowledge System for life skills development.
3. To suggest measures/strategies for integrating Indian Knowledge System with life skills education.

Methodology :- The present study is conceptual and descriptive in nature and is based on secondary sources of data. Relevant information was collected from books, research articles, policy documents, reports, and traditional Indian texts. A content analysis of the selected literature was carried out. The literature was reviewed and analysed to examine the significance of life skills in the AI era, explore the relevance of the Indian Knowledge System for life skills development and suggest strategies for its integration into life skills education.

Findings of the Study :- Based on the review and analysis of relevant secondary sources the following findings emerged in accordance with the stated objectives of the study:

1. Significance of Life Skills in the AI Era - The importance of life skills has become more crucial than ever in the age of Artificial Intelligence. AI can analyse vast amounts of data, spot patterns and efficiently perform repetitive tasks, but it does not possess human consciousness, emotional understanding, ethical judgment or lived experience. This will further elevate the demand for distinctly human competencies such as critical thinking, creativity, emotional intelligence, adaptability, communication, collaboration and ethical reasoning, as a greater role of AI in day-to-day, data-intensive roles will emerge. These life skills are crucial to help people effectively handle the changing social and professional challenges. According to the Central Board of Secondary Education (CBSE, 2010), life skills empower individuals to deal effectively with the demands and challenges of everyday life. In the AI era, these competencies are increasingly important for helping learners adapt to technological change while maintaining emotional well-being, ethical awareness and positive social relationships.

The *Future of Jobs Report* published by the World Economic Forum identifies analytical thinking, resilience, leadership, and creative thinking among the most important skills for the future workforce (World Economic Forum-2025). Similarly, UNESCO emphasizes the need for inclusive and relevant competencies alongside digital transformation in education (Singh, 2003).

Moreover, in an AI-driven lifestyle, humans tend to have obsessive computer use, less face-to-face communication and heightened stress and decision fatigue. In such stressful situations, life skills are essential in keeping emotional equilibrium, healthy relationship and responsible use of digital technology. Thus, life skills are not only personal competencies but also survival skills in the digital

age. In the AI era, life skills empower individuals to complement technological intelligence with human wisdom, enabling them to think critically, act ethically, maintain meaningful relationships and contribute responsibly to society.

2. Relevance of Indian Knowledge System for Life Skills Development in the AI Era - The Indian Knowledge System (IKS) is found to be as rich, useful and meaningful in the context of life skills development in the comprehensive sense, the study notes. The objectives of life skills education are in tune with Indian culture that emphasizes balanced development of the body, mind, intellect, emotions and character. Treatments that are deeply rooted and traditional like yoga, meditation, mindfulness, ethical reflections and value-based living help the person to maintain a healthy life physically and emotionally and improve their personal and social well-being. There are numerous examples from ancient Indian texts and contemporary studies that illustrate that life skills have long been embedded in Indian culture and traditions, even before the concept emerged in its contemporary form.

Rea (2019) reported that yoga and mindfulness practices were associated with improvements in self-regulation, stress management and social-emotional competencies among learners and teachers. Similarly, study of Yadav & Yadav demonstrated the positive impact of yoga and mindfulness on concentration, emotional regulation, self-awareness, mental well-being and stress management among students (Yadav & Yadav, 2025). These practices not only support academic achievement but also foster resilience, emotional balance, and healthy interpersonal relationships. These are the key skills that people need to navigate the ever-evolving technological landscape, understand how to handle digital stress, and make informed choices and decisions while cultivating healthy relationships in today's tech-savvy world. It is important to take note of these benefits and the Ministry of AYUSH has been actively encouraging yoga and Mindfulness Based practices in educational institutions including schools, universities etc (Ministry of AYUSH, 2021). The Common Yoga Protocol gives a structured framework for yoga practice in a uniform way to improve physical and emotional well-being. Moreover, Morarji Desai National Institute of Yoga (MDNIY) have come up with age so appropriate yoga modules for children, adolescent, adult, older adult and for mental health promotion, which indicate that yoga has age-appropriate education and therapeutic potential in various age groups. The interventions highlight the potential of embedding IKS in life skills education to support all-round development and build the required skills and competencies for life in the AI era.

In addition, the Bhagavad Gita provides important lessons that help develop life skills, such as decision making, resilience, self-discipline and responsibility based on the principle of Karma Yoga. Karma Yoga promotes emotional balance and good stress management by focusing on a commitment to action without results. This is reflected in Bhagavad Gita, Chapter 2, Verse 47: *You are entitled to do your duties but not the results of your duties.* The teachings encourage learners to think of effort, perseverance and ethical behaviour instead of external rewards.

Similarly, the Gurukul tradition promoted life skills through close teacher–student interaction, experiential learning, discipline, cooperation, respect and effective communication. These qualities contribute to the holistic development of learners and align closely with the competencies envisioned in the National Education Policy 2020 (Ministry of Education, 2020).

Additionally, Ayurveda promotes healthy habits, balanced routine, and well-being, which are closely related to self-management life skills (Sharma, 1994). The World Health Organization also recognizes the importance of traditional and holistic health practices, focusing on physical as well as mental health and wellbeing (WHO, 2013). In the era of artificial intelligence, the principles of holistic development and self-management are becoming even more crucial for promoting well-being and healthy living.

The Nyaya philosophy provides an encouragement to logical thinking, analytical thinking and analytical reasoning by conducting a systematic inquiry, critical examination and structured argument. It helps the learners to develop critical thinking, problem solving abilities and rational decision-making skills through its emphasis on evidence-based reasoning and informed judgment (Vidyabhusana, 1921). Such competencies continue to be the requisite life skills to deal with the complexities of the contemporary world. For instance, students can learn to consider and evaluate the reliability of information they come across online via social media platforms: they can check the evidence, the sources and the logic behind the information before believing it is correct. Likewise, if learners are presented with a genuine problem like deciding on their educational or career choice, they may consider the various options, deliberate their pros and cons and make an informed decision. These activities develop rational thinking, informed decision making and problem-solving skills that are life-long skills needed in the twenty-first century and the AI era.

Similarly, the stories based on the Panchatantra and Jataka tales have traditionally been successful means of passing on values and practical wisdom. Using stories, characters and dilemmas, they engage with learners and develop their communication, problem solving, empathy, moral understanding and decision-making skills. The Panchatantra teaches practical wisdom and ethical decision-making skills relevant to everyday life (Ryder, 1925). Jataka tales encourage reflection on values, empathy and ethical behaviour, fostering the holistic development of learners (NCERT, 2023). These stories are still very relevant in the age of AI as they cultivate human qualities such as empathy, creativity, ethical judgment and responsible decision-making that complement technological intelligence and are difficult for machines to imitate.

Overall, the evidence suggests that many contemporary life skills have deep roots in Indian traditions. As a culturally relevant and value-based framework, the Indian Knowledge System offers significant potential for life skills development. The integration of yoga, mindfulness, and other IKS-based practices can foster holistic development, emotional well-being, ethical awareness and sustainable personal growth. These qualities are increasingly important in the AI era, as they help learners develop the human competencies needed to adapt to technological advancements while maintaining meaningful personal and social well-being.

3. Strategies for Integrating Indian Knowledge System with Life Skills Education in the AI Era - Effective integration of Indian Knowledge System (IKS) with life skills education requires well-planned curricular and pedagogical initiatives. Life skills modules may include yoga, mindfulness, storytelling, ethical discussions, reflective practices and experiential learning embedded in Indian traditions. Such approaches support holistic development and value-oriented learning (NEP 2020). The National Education Policy also emphasizes developing *"a rootedness and pride in India, and its rich, diverse, ancient and modern culture and knowledge systems and traditions* (NEP 2020)*."* NEP 2020 further recommends the promotion of life skills among students as well as in adult education to support lifelong learning and personal development. In this context, integrating IKS into life skills education can help learners develop life skills such as self-awareness, empathy, emotional balance, ethical values, cooperation and responsible citizenship. It also promotes cultural connectedness and prepares students to face the challenges of the AI era with human values and social sensitivity.

In school education, a few minutes of deep breathing exercises or meditation at the beginning of the school day can help students improve emotional regulation and enhance concentration of students. According to research, yoga and mindfulness practices can help decrease stress levels, improve emotional balance and boost overall mental wellbeing (Khajuria, Kumar, Joshi, & Kumaran, 2023). Panchatantra can be used in storytelling sessions to build decision making skills, interpersonal skills; Bhagavad Gita can be used in role play activities and drama to build the understanding of learners about ethical choices and conflict resolution. The recitation of poetry and Bhagavad Gita

shlokas will enable learners to build confidence in self-expression in communication, develop a stronger bond with cultural and ethical values. The purpose of an educational excursion or a field trip to historic sites with links to India's historical heritage can foster a sense of belonging, experience, observation, social awareness and environmental sensitivity. IKS based project learning can enhance critical thinking, cooperation, problem solving and decision-making abilities. Such practices make learning more meaningful, real world, experiential and value based.

Teacher education programmes are key in this integration as they prepare teachers to meaningfully integrate IKS principles into existing classroom practices. The National Education Policy 2020 also stresses on holistic and multidisciplinary learning, value-based education and Indian Knowledge Systems in the curriculum (NEP 2020, MOE). As a response to this, various educational institutions and universities have established IKS cells and yoga clubs and organised value education programmes to encourage the development of life skills.

These strategies reflect how the Indian Knowledge System can be integrated meaningfully into life skills education through curricular as well as co-curricular activities. Such integration can enhance the cognitive, emotional, social and ethical competences of learners to face the opportunities and challenges of the AI era with wisdom, responsibility and cultural rootedness.

Conclusion :- The study reiterates the relevance of Indian Knowledge System (IKS) in the present landscape of AI-driven era to impart life skills. As Artificial Intelligence revolutionizes the field of education, the workplace, and everyday life, certain human attributes like self-awareness, empathy, resilience, ethical decision making, communication, and emotional regulation are still irreplaceable. The Indian Knowledge System provides a culturally grounded, comprehensive, and values-based approach to fostering the development of these competencies using practices like yoga, mindfulness, ethical reflection, experiential learning, and traditional stories. The content of the Bhagavad Gita, Yoga and Jataka and Panchatantra stories add value to the life skills that promote individual development and social welfare.

The findings conclude that the use of IKS in the life skills education can enhance the learning outcomes of learners to be not only technically capable but emotionally balanced, ethically and socially responsible as well. In a world becoming more dominated by AI, the capacity to blend technology and humanity will play a vital role in the success and integrity of both individuals and societies. Thus, the Indian Knowledge System continues to be very relevant as a source of life skills education and holds a treasure trove of knowledge that can be used in conjunction with the technological advancements of today. In the age of AI, the key to a successful future of education is the integration of technological innovation with a human-centric approach for a comprehensive and responsible education.

Further, the IKS integration should not be symbolic but rather be inclusive and evidence-based or action-based. Traditional knowledge needs to be interpreted in the context of present-day needs, scientific validation and diversity of learners. In this way, IKS can make a valuable contribution to the development of life skills for a responsible, balanced and ethical life in the AI era.

References :-

1. Central Board of Secondary Education. (2010). *Life skills education and CCE: Class IX and X*. CBSE. http://www.cbse.nic.in/cce/life_skills_cce.pdf. *Retrieved ,September, 2016*, from http://www.cbse.nic.in/cce/life_ skills_cce.pdf
2. Cowell, E. B. (Ed.). (1895). *The Jataka or stories of the Buddha's former births* (Vol. 1). Cambridge University Press.
3. Khajuria, A., Kumar, A., Joshi, D., & Kumaran, S. S. (2023). Reducing stress with yoga: A systematic review based on multimodal biosignals. *International Journal of Yoga, 16*(3), 156–170. https://doi.org/10.4103/ijoy.ijoy_218_23
4. Kumbhakar, M. M., Kumar, D., & Kumar, N. (n.d.). *Integrating artificial intelligence and Indian knowledge systems for 21st century skills development*. ResearchGate. https://www.researchgate.net/publication/

400814109_Integrating_Artificial_Intelligence_and_Indian_Knowledge_Systems_for_21st_Century_Skills_Development

5. Ministry of AYUSH. (2021). *Common Yoga Protocol*. Government of India. https://yoga.ayush.gov.in/
6. Ministry of Education, (2020). *National Education Policy, 2020,* GOI**.** Retrieved, December, 2020, from **https://innovateindia.mygov.in/wp-content/uploads/2020/08/NEP_Final_English_0.pdf**
7. Morarji Desai National Institute of Yoga. (2024). *Yoga protocols for different age groups and wellness needs*. Ministry of AYUSH, Government of India. https://y-break.ayush.gov.in/cms/yoga-protocols
8. National Council of Educational Research and Training. (2005). *National Curriculum Framework 2005*. NCERT. http://www.ncert.nic.in/rightside/links/pdf/framework/english/nf2005.pdf Retrieved from http://www.ncert.nic.in/rightside/links/pdf/framework/english/nf2005.pdf on March 2016.
9. National Council of Educational Research and Training. (2023). *National Curriculum Framework for School Education 2023*. NCERT. https://ncf.ncert.gov.in/
10. Priya, M. (2025). Challenges and opportunities in integrating AI with Indian knowledge systems for future-ready education. *International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)*. https://www.ijfmr.com/papers/2025/5/63816.pdf
11. Radhakrishnan, S. (1948). *The Bhagavadgita*. George Allen & Unwin Ltd. https://archive.org/
12. Rea, J. (2019). *The impact of yoga and mindfulness on stress reactivity, self-regulation and social-emotional competencies of pre-school learners and teachers*. https://doi.org/10.13140/RG.2.2.12715.31529
13. Ryder, A. W. (Trans.). (1925). *The Panchatantra* (1st ed.). University of Chicago Press. https://archive.org/details/panchatantra00ryde
14. Sharma, P. V. (Ed. & Trans.). (1994). *Charaka Samhita* (Vol. 1). Chaukhambha Orientalia.
15. Singh, M. (2003). *Understanding life skills*. Background paper prepared for the Education for All Global Monitoring Report 2003/4: *Gender and Education for All: The Leap to Equality*. UNESCO. http://unesdoc.unesco.org/images/0014/001469/146963e.pdf
16. Singh, P. (2026). *Indian knowledge system and artificial intelligence: Towards ethical, sustainable, and human-centric innovation*. ICERT. https://icert.org.in/index.php/2026/03/11/indian-knowledge-system-and-artificial-intelligence-towards-ethical-sustainable-and-human-centric-innovation/
17. Tiwari & Bajpai (2018). Strategies for inculcating Life Skills in Classroom Settings. *AED Journal of Educational Studies, 7*(2), 58-68.
18. UNESCO. (2024). *Digital learning and transformation of education*. UNESCO. https://www.unesco.org/en/digital-education
19. United Nations Children's Fund. (2012). *Global evaluation of life skills education programmes*. UNICEF.
20. Vidyabhusana, S. C. (Trans.). (1921). *The Nyaya sutras of Gautama* (Vol. 1). Panini Office.
21. World Economic Forum. (2025). *The future of jobs report 2025*. World Economic Forum.
22. World Health Organization. (1997). *Life skills education for children and adolescents in schools*. World Health Organization.
23. World Health Organization. (2013). *WHO traditional medicine strategy 2014–2023*. World Health Organization.
24. Yadav, J., & Yadav, R. (2025). Mindfulness and yoga based practices for reducing academic procrastination and enhancing well-being among students: A systematic literature review. *International Journal of Indian Psychology, 13*(4), 2400–2415. https://doi.org/10.25215/1304.217

ஐ★ஐ

Digital Proficiency in the context of Industry 4.0
(A Comparative Study of Pre-service Teachers in Rajasthan)

Deepak Shukla *
Dr. Ganesh Datt**

Abstract :- In the era of Industry 4.0, digital competence has become a critical skill for teachers to successfully incorporate the technology in the teaching and learning process. The present study aimed at investigating the digital proficiency with respect to Industry 4.0 among the prospective teachers of Ajmer city of Rajasthan. The study adopts a descriptive survey method with a quantitative approach and the objectives are a) to find out the level of digital proficiency among preservice teachers in the context of Industry 4.0 b) to find out the difference in digital proficiency between the 4-year Integrated Teacher Education Program and the 2-year Bachelor of Education Program (B.Ed.) in the context of Industry 4.0 and c) to find out the difference in digital proficiency of prospective teachers concerning gender (male & female), locality (urban & rural), and their stream (science & humanities). A total of 120 prospective teachers from Ajmer city were selected as the representative sample of the whole population. The researcher has developed a Digital Proficiency Scale (DPS) to measure the digital proficiency of prospective teachers. The data were subjected to t-test at 0.05 level of significance. The results suggest that prospective teachers possess a moderate to high level of digital competence. The study showed that prospective teachers in integrated programmes had higher proficiency level. There was no significant difference based on gender and locality. However, science stream students demonstrated greater digital skills than those from the humanities stream. The study emphasizes the need for curriculum reforms and strategies to develop digital skills in teacher education, offering insights for policymakers and educators in preparing future-ready teachers.

Keywords: digital proficiency, prospective teachers, industry 4.0, teacher education, digital competence, DigCompEdu

Introduction :- As stated in the National Education Policy 2020, the future of education depends on teachers who can harness technology to inspire, innovate, and transform learning. As education plays a crucial role in shaping a nation's future, teachers are central to this process. In India, those aspiring to become teachers and undergoing formal training in teacher education programs are referred to as prospective teachers (Nasreen & Chaudhary, 2018). The rapid digitalization of our lives, surroundings, and work environments represents one of the major drivers of change in the new century. The word "Industry 4.0" first became famous to represent the new period of technological progress (Purwanto, Hartono, & Wahyuni, 2023). 4th Industrial Revolution builds on the inventions of the Third Industrial Revolution—or digital revolution—which unfolded from the 1950s to the early 2000s and brought us computers, other kinds of electronics, the Internet, and much more (McKinsey, 2019). In 2012, the German government introduced the term "Industry 4.0" to signify the potential fourth industrial revolution, widely recognized as the "Industrial Internet." It represents an evolutionary stage of the manufacturing industry, characterized by integrating digital technologies into the production part.

To align with these technological advancements, the education sector must evolve accordingly. The emerging concept of "Teacher 4.0" reflects the shift, emphasizing the integration of advanced digital tools in pedagogy. Further adaptation of Teacher 4.0 concept will become common for teachers to present concepts to a classroom or a virtual audience, for instance, wearing smart augmented reality devices (Abdelrazeq et al., 2016). In another setup, a combination of sensing devices and audience

*** Research Scholar, Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi.**
****Assistant Professor, Regional Institute of Education, NCERT, Ajmer**

response systems will allow teachers to receive direct feedback on their students' status (i.e., activity level, focus level, and stress level) and what captures their attention in the taught content (Kozuh, Maksimovic & Osmanovic, 2021). Additionally, teachers will receive self-feedback on their performance through a smart notification system.

The integration of Industry 4.0 and Education 4.0 represents a transformative shift in how education systems prepare learners for the future. Industry 4.0, characterized by advancements in artificial intelligence (AI), the Internet of Things (IoT), big data, and automation, has revolutionized industries into smart, interconnected systems (Schwab, 2016). Similarly, Education 4.0 seeks to align educational practices with these technological advancements (Sari & Wilujeng, 2020), fostering critical thinking, creativity, and digital literacy among learners (Redecker & Punie, 2017; Sharma & Desai, 2020).

This alignment ensures that learners are equipped with workforce skills in navigating complex data-driven environments. As industries adopt automation and data-driven decision-making, educational institutions must prioritize teaching skills such as problem-solving, collaboration, and digital proficiency (World Economic Forum, 2018). For example, the National Education Policy (NEP) 2020 in India emphasizes integration of technology to bridge the gap between access and quality in education (Ministry of Education, Government of India, 2020). By aligning curricula with Industry 4.0 requirements, Education 4.0 ensures that graduates are not only job-ready but also capable of driving innovation in their respective fields. For prospective teachers undergoing pre-service teacher education, this technological shift presents both opportunities and challenges. Traditional teacher education models must evolve to integrate digital pedagogy, data-driven decision-making, AI-assisted learning, and emerging EdTech tools. Preparing teachers for Industry 4.0 is essential to ensure that future educators are equipped to handle technology-driven, adaptive, and student-centered learning environments (Singh & Gupta, 2021).

Some of the major impacts of Industry 4.0 on teacher education:

1. Digital and Adaptive Learning- Learning management systems (LMS) such as Moodle, Google Classroom, and Blackboard to manage coursework. AI-powered platforms like Coursera, SWAYAM, and DIKSHA offer interactive, self-paced training modules. Microlearning and gamification enhance engagement, ensuring continuous professional development
2. Artificial Intelligence (AI) in Teacher Preparation- AI tools reduce teachers' workload, allowing them to focus on higher-order thinking skills and mentoring. It helps prospective teachers analyse learning patterns and identify struggling students using predictive analytics
3. Smart Classrooms and IoT- Thease tools Enhances student engagement by making learning interactive and immersive. Provides real-time monitoring of student behavior and learning patterns, allowing teachers to adjust teaching strategies accordingly. Enables remote teacher training through virtual classrooms and webinars
4. Virtual Reality and Augmented Reality (VR/AR)- VR simulations allow prospective teachers to practice classroom management and pedagogy in risk-free settings. AR-based applications help visualize complex concepts in subjects like science, mathematics, and geography. Google Expeditions and VR-based training modules allow teacher trainees to practice classroom management techniques. Microsoft HoloLens enables science teachers to visualize human anatomy and physics experiments in 3D, making lessons more engaging.

Significance of the Study :- This study will provide insights into the digital readiness of future educators and suggest ways to bridge the digital divide through targeted intervention in teacher education programs. Many teacher education programs still follow traditional teaching methods, with limited focus on the integration of AI-driven assessment tools, learning management systems (LMS), gamification, and virtual/augmented reality in education. The European Commission’s DigCompEdu framework highlights the need for educators to develop competencies in digital pedagogy,

collaboration, assessment, and content creation. Evaluating the status of digital proficiency among prospective teachers will help in redesigning teacher training curricula to meet the demands of a technology-enhanced educational landscape. Despite the emphasis on digital transformation in education, teachers often face barriers such as lack of infrastructure, inadequate technical support, resistance to change, and limited digital literacy (Ertmer & Ottenbreit-Leftwich, 2019). Understanding the challenges faced by prospective teachers in developing digital proficiency will enable stakeholders to design policies and training programs that promote a culture of digital innovation in education.

Review of Literature

Digital Proficiency and ICT Skills of Prospective Teachers :- A study conducted by Chen, Lia, and Tan (2010) reported that pre-service teachers have less access to and are less comfortable with specialized technologies and that there is a gap between their everyday ICT skills and skills of ICT for teaching and learning. Kumar (2015) found that the ICT skills of school teachers are relatively low in India but they believe that it is helpful to sustain the interest of the students. Another study from Odisha by Mohalik (2019) stated that many trainees do not know about learning management system, podcasts, and web design applications. They were aware about storage, junk mails, and password security. Only few participants used digital devices for using PPT in class. Teacher educators must encourage trainees to use ICT in regular classroom. A study from Tamil Nadu, India by Padmini and Ramani (2023) reported that pre-service teachers mostly prefer video lectures. They recommended an exposure of diverse e-learning ways to meet the diverse learning styles and interest of students. A comparative study by Gupta and Awasthi (2024) from Uttar Pradesh reported that most of the pre-service teachers possessed moderate level of competence, none of them perceived themselves as experts or advanced level in any of the digital competence areas. Varghese and Arya (2024) found out that prospective teachers have an average level of digital literacy skills and the present curriculum for teacher education does not provide enough opportunity for developing digital literacy skills. Yadav (2025) conducted a study on enhancing digital competencies of teachers and stated that digital literacy encompasses not only technical proficiency but also the ability to critically evaluate and use digital tools ethically and creatively. It discusses the challenges faced by educators, including varying levels of digital competency and the need for continuous professional development. Additionally, it examines how digital storytelling and other innovative practices can engage students and improve learning experiences.

Attitude and Perception towards ICT & E-Learning :- A study by Behera (2016) from West Bengal stated that the attitude of pre-service teachers towards e-learning is moderate or average. Nasreen and Chaudhary (2018) mentioned in their study that the pre-service teachers perceived a lack of infrastructural facilities for ICT integration in teacher education programs in India. Chauhan (2024) conducted a study in Uttar Pradesh, India, and found out there was insufficient awareness regarding quality assurance and technological constraints. The study suggested targeted booster programs to enrich trainees' technological skills. Ezhilselvi (2024) reported that the pre-service teachers use AI tools in a limited way due to high cost. They recommended integrating AI more effectively into teacher training programs.

Teachers' Awareness and Competency in Emerging Technologies :- Arfandi et al. (2020) found out that many vocational teachers lacked the knowledge of artificial intelligence but they were familiar with search engines, hotspots, e-mail, etc. Sari and Wilujeng (2020) performed research on science teachers and stated that they showed a positive attitude towards educational change in industry 4.0. A study on STEM education by Akgunduz and Mesutoglu (2021) stated that the competencies and content knowledge of teachers regarding Industry 4.0 have improved, and they also showed a positive attitude towards the implementation of STEM. They also stated in another study that training should be given regarding the design of lesson plans, including the integration of mobile programming, robotic programming, and virtual reality. A study carried out on students' perceptions of integrating education

4.0 by Halili and Sulaiman (2021) found out that students show positive responses in integrating education 4.0 for technological sustainable development. Kozuh, Maksimovic, and Osmanovic (2021) from Serbia stated in their study that science and technology teachers apply digital tools while teaching more frequently than social science and humanities teachers. Puwanto, Hartono, and Wahyuni (2023) executed a study on essential skills challenges for the 21st-century graduate and reported that a teacher's role is to build a generation with competence, character, and new literacy skills, focusing on creative aspects, critical thinking, communication, and collaboration.

Objectives of the Study

1. To find out the level of Digital Proficiency among prospective teachers in the context of Industry 4.0
2. To find out the difference in Digital Proficiency between the 4-year Integrated Teacher Education Program and those in 2-year Bachelor of Education Program (B.Ed.) in the context of Industry 4.0
3. To find out the difference in digital proficiency of prospective teachers concerning gender (male & female), locality (urban & rural), and their stream (science & humanities).

Hypotheses of the Study :-

1. There is no significant difference between the digital proficiency of 4-year integrated teacher education programs and the 2-year Bachelor of Education Program (B.Ed.) prospective teachers in the context of Industry 4.0.
2. There is no significant difference in digital proficiency of prospective teachers in the context of Industry 4.0 with respect to their gender (male & female), locality (urban & rural), and their stream (science & humanities).

Methodology :- The descriptive survey method was utilized to investigate the status of digital proficiency concerning Industry 4.0 among prospective teachers. The study was conducted within government teacher education institutes in Ajmer, Rajasthan. To ensure a representative and balanced sample that adequately captures the diverse subgroups essential to the study's objectives, specifically the 4-year Integrated Teacher Education Program and the 2-year Bachelor of Education (B.Ed.) program, as well as variations in gender, locality, and academic stream, a purposive sampling technique was employed. This method allowed the investigator to deliberately select participants who met these pre-defined demographic and academic criteria, ensuring that each subgroup was sufficiently represented to allow for robust comparative analysis. A total of 120 prospective teachers were selected as the final sample, with the distribution detailed in Table 1.

Table -1: Distribution of Sample

Variable		N	Total
Program	4-year Integrated	60	120
	2-year (B.Ed.)	60	
Gender	Male	64	120
	Female	56	
Locality	Urban	65	120
	Rural	55	
Stream	Science	62	120
	Humanities	58	

The investigators constructed the Digital Proficiency Scale (DPS) to assess the digital proficiency of prospective teachers in the context of Industry 4.0. The tool was built by taking into consideration the ICT-CFT framework by UNESCO and the European Digital Competence Framework for Educators. The tool was constructed using five dimensions and 40 statements. The dimensions were digital literacy (8 items), digital communication and collaboration (8 items), digital content creation (8 items), digital problem solving and cybersecurity (8 items), and adaptability and lifelong learning (8 items). Every item was in a statement with five choices, such as Strongly Agree, Agree, Neutral,

Disagree, and Strongly Disagree. Every domain has two negative statements in between positive statements. Each statement tries to investigate a certain level of skill and mastery in the domain. In the scoring procedure, the score of 5 is for Strongly Agree, 4 for Agree, 3 for Neutral, 2 for Disagree, and 1 for Strongly Disagree, and for negative items, 5 is for Strongly Disagree, 4 for Disagree, 3 for Neutral, 2 for Agree, and 1 for Strongly Agree. The internal consistency of the tool is measured by computing Cronbach's alpha, which yielded a value of 0.88, and the test-retest reliability of the scale was found to be 0.85 with a time gap of 12 days. Content validity has been established for the scale by referring to experts in the field of education technology. Psychology and Language. The prospective teachers submitted their responses via Google Forms. After collecting responses from prospective teachers, to check the normality of data, the Kolmogorov-Smirnov test is applied, and the significance value (p-value) is 0.20, indicating that the data does not significantly deviate from a normal distribution; hence, parametric tests such as the t-test are used to analyze the collected data and test the hypothesis.

Data Analysis and Findings :- The data collected from the Digital Proficiency Scale were analysed as per the objectives and hypothesis of the study by using parametric tests, which are presented as follows:

Level of Digital Proficiency in Industry 4.0 of Prospective Teachers

Table 2: The Level of Digital Proficiency in Industry 4.0 of Prospective Teachers

Percentile	Raw Scores Range	No. of Sample	Percentage (%) of Sample	Level of Digital Proficiency
Above 75	Above 113	32	26.6 %	High
25 - 75	97-113	71	59.1 %	Moderate
Below 25	Below 97	17	14.1 %	Low

From the above Table No. 2, it is found that 17 (14.1 percent) prospective teachers had low levels of digital proficiency in Industry 4.0, 71 (59.1 percent) prospective teachers had moderate levels of digital proficiency, and 32 (26.6 percent) prospective teachers had high levels of digital proficiency in the context of Industry 4.0. By analyzing the results of this study, researchers concluded that the level of digital proficiency in prospective teachers with respect to Industry 4.0 is neither high nor low but average.

Figure-1: Domain-wise Mean of Digital Proficiency Score of Prospective Teachers

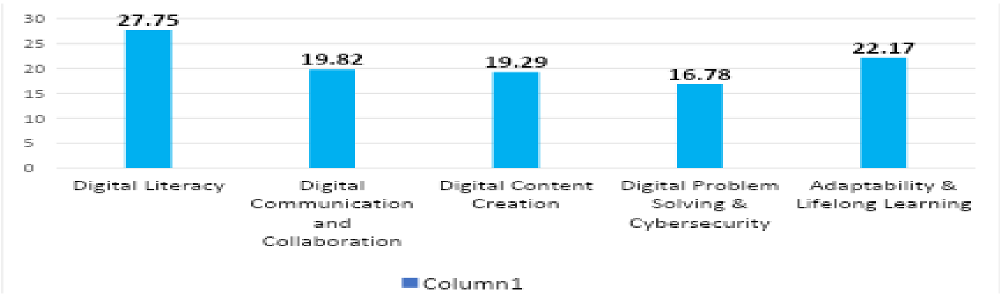

It is evident from Figure 1 that digital literacy, adaptability, and lifelong learning have comparatively higher scores than other domains of digital proficiency, and digital problem-solving and cybersecurity domains of prospective teachers show relatively lower scores than the other domains.

Comparison of Digital Proficiency with reference to Industry 4.0 between 4-year Integrated Teacher Education Program and 2-year B.Ed. program prospective teachers.

Table 3: t-test table of courses

Course	N	Mean	SD	t-value	p-value	Remark
4-year Integrated Teacher Education Program	60	107.37	7.07	2.02	0.046	P<0.05 Significant
2-year B.Ed. program	60	104.28	9.45			

It is observable from the above table 3 that t(118) = 2.02 and the p-value is 0.046, which is significant at a 0.05 level of significance ($p<0.05$). It shows that the mean score of the digital proficiency of prospective teachers of a 4-yearintegrated program differs significantly from that of 2-year B.Ed. program. Thus, the null hypothesis that there is no significant difference between the digital proficiency of the 4-year integrated program and the 2-year B.Ed. program is rejected. It may, therefore, be said that the prospective teachers of the 4-year integrated program are more digitally proficient and effective in digital skills than the 2-year B.Ed. program.

Comparison of Digital Proficiency with Reference to Industry 4.0 between Male and Female Prospective Teachers.

Table 4: t-test table for Gender

Gender	N	Mean	SD	t-value	p-value	Remark
Male Prospective Teachers	64	104.84	8.13	1.36	0.17	$P>0.05$ Not Significant
Female Prospective Teachers	56	106.95	8.74			

From Table 4, it it is evident that t(118) = 1.364, for which the p-value is 0.175, which is not significant at a 0.05 level of significance. It shows that the mean score of digital proficiency of male prospective teachers is 104.84 and female prospective teachers is 106.95 and did not differ significantly. Thus, the null hypothesis that there is no significant difference between the digital proficiencies of male and female prospective teachers is not rejected. It may, therefore, be said that male and female prospective teachers are proficient in digital skills to the same extent.

Comparison of Digital Proficiency concerning Industry 4.0 between Prospective Teachers from Urban and Rural Localities.

Table 5: t-test table of Locality and Stream

Variable		N	Mean	SD	t-value	p-value	Remark
Locality	Urban prospective teachers	65	105.77	8.72	0.079	0.93	$P>0.05$ Not Significant
	Rural prospective teachers	55	105.89	8.21			
Stream	Science prospective teachers	62	107.47	8.44	2.23	0.02	$P<0.05$ Significant
	Humanities prospective teachers	58	104.07	8.18			

From Table 5, it it is observed that t(118) = 0.079, for which the p-value is 0.93, which is not significant at a 0.05 level of significance. The mean score of digital proficiency of prospective teachers from urban localities is 105.77, and from rural localities is 105.89. This shows that there is no statistically significant difference between the urban and rural groups, thus, teachers from urban and rural localities are proficient in digital skills to the same extent. It is also evident that t(118) = 2.23 and the p-value is 0.02, which is significant at a 0.05 level of significance. It shows that the mean score of digital proficiency of prospective teachers from the science stream differs significantly from that of the humanities stream. Thus, the null hypothesis that there is no significant difference between the digital proficiency of the science and humanities stream prospective teachers is rejected. Therefore, it is evident that the prospective teachers of the science stream are more digitally proficient and effective in integrating and using digital skills than the prospective teachers from the humanities stream.

Discussion of Results :- The study delves into examining the status of digital proficiency among prospective teachers, providing a detailed analysis of their current levels of digital skills and

competencies in the context of Industry 4.0. Investigators found that the digital competencies of prospective teachers are moderate to high in level, considering Industry 4.0. It is observed that structured exposure to technology-enhanced curricula in teacher training programs has significantly improved digital readiness. However, the persistence of a low proficiency in prospective teachers underscores the adoption of digital skills, a concern echoed by Adebola & Cias 2022, who noted disparities in resource access and training quality of prospective teachers.

It is found that the digital proficiency of prospective teachers who are enrolled in a 4-year integrated teacher education program is comparatively more proficient than that of the prospective teachers who are enrolled in a 2-year B.Ed. program, likely due to the longer duration and more comprehensive curriculum of the integrated program. It is also found that there is no significant difference between male and female prospective teachers' digital proficiency concerning Industry 4.0, suggesting equitable access to digital resources and training opportunities for both genders. The teacher education program implements comprehensive digital literacy and ICT training without bias of gender in most institutes of India. The present study also exposed that there is likely no difference in digital competencies between prospective teachers from urban and rural localities due to improved access to technology and initiatives like the Digital India campaign, which have expanded internet connectivity and digital tools to rural areas, reducing the gap between urban and rural teachers, which is supported by Varghese, J., & Arya, A. (2024). However, the study also reveals that prospective teachers from the science stream exhibited greater digital proficiency than those from the humanities stream, reflecting the technical nature of science education and its emphasis on technology integration. These findings are consistent with prior research showing that STEM disciplines foster higher digital literacy and that program structure plays a significant role in shaping digital readiness.

Educational Implications :- Digital proficiency is a crucial component of prospective teachers in the 21st century, making learning and teaching more interactive and effective. NEP 2020 also suggests integrating technology in every domain of education where possible.

- Digital proficiency is a combination of skills and confidence to use digital tools and technology that is needed to develop during the training of teachers, and to provide the relevant training, the curriculum must be updated regularly, and technology integration should be encouraged in the curriculum.
- Teacher educators must use instructional strategies that are technology-oriented and are equipped with the latest digital tools in the class that foster technology integration and develop the digital proficiency of teachers.
- Technology integration should be tested in all teacher recruitment, and policymakers should make it a mandatory point to include digital literacy / blended courses as a necessary component of teacher education.
- Continuous training programs, workshops, and digital proficiency modules can be arranged for prospective teachers to understand and update their digital proficiency.
- NCTE should make provisions for institutes that maintain a minimum level of digital infrastructure required for teacher training, such as the Internet, smartboards, and computers.

Conclusion :- Prospective teachers exhibit a generally moderate to high level of digital proficiency in accordance with the mandates of Industry 4.0. Those who are enrolled in integrated programs develop greater competence, which is attributed to structured and extended training. Digital access and training opportunities appear largely equitable across gender and locality. However, variations across academic streams highlight the need for more balanced digital integration in teacher education.

Ultimately, while the current state of digital proficiency among prospective teachers is promising, it requires targeted intervention to bridge identified disparities. The significant gap between Science and Humanities streams, alongside the proficiency variance between program durations, suggests that teacher education curricula must evolve toward a specialized, technology-integrated

framework. To realize the vision of "Teacher 4.0," teacher training institutes must prioritize not only infrastructural support but also the diversification of training modules that cater to the specific pedagogical needs of all disciplines. Future research could further explore the longitudinal impact of these digital competencies on classroom outcomes, ensuring that prospective teachers are not just equipped with tools but are empowered to foster innovation in the evolving landscape of global education.

References :-

1. Abdelrazeq, A., Janssen, D., Tummel, C., Richert, A., & Jeschke, S. (2016). Teacher 4.0: Requirements of the teacher of the future in context of the fourth industrial revolution. ICERI2016 Proceedings, 8221–8226. https://doi.org/10.21125/iceri.2016.0880
2. Adebola, O. O., & Cias, T. (2022). Challenges of pre-service teachers' classroom participation in a rurally located university in South Africa. Journal of Educational and Social Research, 12(5), 210. https://doi.org/10.36941/jesr-2022-0135
3. Akgunduz, D., & Mesutoglu, C. (2021). Science, technology, engineering, and mathematics education for industry 4.0 in technical and vocational high schools: Investigation of teacher professional development. Science Education International, 32, 172–181.
4. Arfandi, A., et al. (2020). Teachers' ability on information and communication technology in industry 4.0 era. 3rd International Conference on Education, Science, and Technology (ICEST 2019), 161–164.
5. Chauhan, D. (2025). Open educational practices and virtual learning readiness among B.Ed. trainees. *Forum for Education Studies, 3*, 1527–1527.
6. Chen, W., Lim, C., & Tan, A. (2010). Pre-service teachers' ICT experiences and competencies: New generation of teachers in digital age. *Proceedings of the 18th International Conference on Computers in Education*, 631–638.
7. Ezhilselvi, R. I. (2024). An analytical study on usage of AI during B.Ed. internship. *Shodhnubravalley: Advancing Multidisciplinary Research on a Global Scale, 39*.
8. García, E., et al. (2021). Recommendations for teacher training in digital competencies: The need for a socio-educational approach. *Education Sciences, 11*(8), 1–14.
9. Halili, S. H., & Sulaiman, S. (2021). Students' perception to integrate education 4.0 in science program. *Multidisciplinary Journal for Education, Social and Technological Sciences, 8*, 45–56.
10. Kožuh, A., Maksimovic, J., & Osmanovic Zajic, J. (2021). Fourth industrial revolution and digital competences of teachers. *World Journal on Educational Technology: Current Issues, 13*, 160–177.
11. Kumar, R., & Sharma, S. (2022). Impact of program duration on digital proficiency in teacher education. *Journal of Educational Technology, 15*(3), 45–60.
12. Mohalik, R. (2019). Digital skills of prospective teachers. *Education India Journal, 8*(2).
13. National Council for Teacher Education. (2021). *Teacher education curriculum framework*. http://www.ncte-india.org
14. Padmini, S., & Ramani, P. (2023). Opinions of B.Ed. students in the Cuddalore District of Tamil Nadu about e-learning materials for the course of understanding disciplines and school subjects in B.Ed. *Asian Journal of Advanced Research and Reports, 17*, 320–343.
15. Purwanto, M. B., Hartono, R., & Wahyuni, S. (2023). Essential skills challenges for the 21st century graduates: Creating a generation of high-level competence in the industrial revolution 4.0 era. *Asian Journal of Applied Education, 2*, 279–292.
16. Rosenberg, J. M., et al. (2020). A framework for technological pedagogical content knowledge in teacher education. *Journal of Technology and Teacher Education, 28*(3), 431–460.
17. Sari, W. K., & Wilujeng, I. (2020). Education change in the industry 4.0: Candidate science teacher perspective. *Journal of Physics: Conference Series, 1440*, 012090.
18. Varghese, J., & Arya, A. (2024). Exploring 21st century digital literacy skills among the prospective teachers for holistic learning. *Journal of Education, 6*, 282–291.
19. Yadav, S. (2025). Enhancing digital competencies of teachers: A roadmap for modern educators in the digital era. In *Fostering teacher skills and critical thinking in modern education* (pp. 109–134). IGI Global Scientific Publishing.

<u>पत्रिका में शोध-लेख प्रकाशन की अनिवार्य शर्तें</u>

1. आपके द्वारा प्रेषित शोध–लेख मौलिक, स्तरीय, प्रकाशन के योग्य एवं अप्रकाशित हो, तथा आपके द्वारा **आलोचन दृष्टि** द्वारा जारी किया गया **लेखक का घोषणा–पत्र** फार्म अवश्य भरा होना चाहिए।

2. अपने शोध–लेख (हिन्दी व संस्कृत के Kruti Dev 10 में और अंग्रेजी के Times New Roman Font में) की वर्ड एवं पी.डी.एफ. फाइल बनाकर सी.डी. या डी.वी.डी. में हार्ड कॉपी के साथ **आलोचन दृष्टि,** कार्यालय के पते में प्रेषित करें। आपको यदि अपने शोध–लेख का **स्वीकृत पत्र** चाहिए तो एक लिफाफे में अपना नाम, पता पिन कोड सहित लिखकर, आवश्यक स्पीड पोस्ट की डाक टिकट लगाकर भेजें और 3–4 महीने तक अनावश्यक कोई कॉल किसी भी **आलोचन दृष्टि** के प्राधिकारी से न करें। यदि किसी पदाधिकारी से बात करने की जरूरत पड़ेतो शाम 6.00–8.00 के बीच संपर्क करें।

3. **शोध–लेख / आलेख में मोबाइल नंबर, ई–मेल एवं पता अंकित होना चाहिए।**

4. शोध–लेख / आलेख की जांच **संपादक मंडल** एवं **आलोचन–दृष्टि–परिवार** के द्वारा की जाएगी उसके उपरांत ही शोध–लेखों / आलेखों को प्रकाशित किया जायेगा, जिसमें **संपादक मंडल** का **निर्णय** अंतिम और सर्वमान्य रहेगा।

5. शोध लेख **यूजीसी** के मानक के अनुरूप होने चाहिए और **संदर्भ–सूची** में पुस्तक का नाम, लेखक का नाम, प्रकाशन का नाम, संस्करण–वर्ष एवं पृष्ठ संख्या तथा पत्रिका के संदर्भ हेतु, उसका अंक, वर्ष, पृष्ठ संख्या आदि–निश्चित रूप से अंकित होने चाहिए। ऐसा न होने पर लेख की **संदर्भ–सूची** को भ्रामकमाना जाएगा।

6. पत्रिका के प्रकाशन हेतु लेखकों, पाठकों एवं आलोच कों से सदस्यता भी अपेक्षित रह सकती है, क्योंकि पत्रिका को कोई अनुदान या अंशदान नहीं प्राप्त हो रहा।

7. शोध–लेख के लिए 2000–3000 शब्द–सीमा निर्धारित की गई है, अतः शब्द–सीमा का ध्यान रखें, लेकिन लेख की पूर्णता होनी ही चाहिए।

8. पत्रिका में सर्वेक्षणात्मक की अपेक्षा वैचारिक शोध–लेखों / आलेखों को वरीयता प्रदान की जायेगी।

–संपादक

आलोचन दृष्टि,
आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद-फतेहपुर, उ0प्र0-212635
ई-मेल : aalochan.p@gmail.com
वेबसाइट : **https://aalochandrishti.org/**

Website QR Code